कहानी खत्म होगई

आचार्य चतुरसेन

चतुरसेन का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य-५

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली ६

मूल्य	:	चार रुपये
प्रथम संस्करण	:	अप्रैल, १९६१
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

प्रकाशकीय

आचार्य चतुरसेन का कहानी-साहित्य में जो विशिष्ट स्थान है उससे हिन्दी के पाठक भली भांति परिचित हैं। उन्होंने १६०६ से लिखना आरम्भ किया था और अन्त तक लिखते रहे। आधी सदी के दीर्घकाल में उन्होंने लगभग साढ़े चार सौ कहानियां लिखीं, जिनमें अधिकांश अपने कला-वैशिष्ट्य के लिए सुविख्यात हो गईं। शैली की दृष्टि से तो आपका नाम हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में आदर से लिया जाता है।

आचार्यजी की कहानियों के दो-तीन संग्रह बहुत पहले निकले थे, परन्तु उनका सारा कहानी-साहित्य एक जगह संकलित नहीं हो पाया था। यह एक बहुत बड़ा अभाव था, जिसकी पूर्ति के लिए आचार्यजी के ही जीवन-काल में उनके समग्र कहानी-साहित्य को पुस्तकमाला के रूप में प्रकाशित करने की एक रूपरेखा हमने बनाई थी। इतना ही नहीं, कहानियों का संकलन-सम्पादन भी उनकी देख-रेख में शुरू हो गया था और इस माला के लिए उन्होंने स्वयं 'कहानीकार का वक्तव्य' भी लिखा था (जो इस पुस्तकमाला के पहले खण्ड में दे दिया गया है), किन्तु दुर्भाग्य-वश इस बीच उनका देहावसान हो गया।

सम्प्रति, हमारे सामने पहली आवश्यकता यह थी कि लेखक का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य, प्रामाणिक रूप से, एक जगह उपलब्ध हो सके, जिससे हिन्दी कथा-साहित्य के पाठक आचार्यजी की कहानी-कला का रसास्वादन और यथेष्ट अध्ययन कर सकें। इसके लिए आचार्यजी के निर्देशों के अनुसार, उनके छोटे भाई श्री चन्द्रसेन-जी ने अथक परिश्रम से इस महान लेखक की, पत्र-पत्रिकाओं व पाण्डुलिपियों में बिखरी हुई सामग्री को संकलित तथा सम्पादित किया है, जिसे हम क्रमशः पुस्तक-माला के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं।

हरेक कहानी के ऊपर संक्षिप्त टिप्पणी दी गई है, आशा है इससे पाठकों को

कहानी की पृष्ठभूमि जानने में सुविधा होगी।

आचार्यजी की कहानियों को साधारणतया इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—मुगल-कालीन, बौद्ध-कालीन, ऐतिहासिक, राजपूती, सामाजिक, समस्या-प्रधान, राजनीतिक, वीरता-प्रधान, भाव-प्रधान, प्रेम-प्रधान, कौतुक-प्रधान और पारिवारिक।

हमारा विश्वास है कि यह पुस्तकमाला हिन्दी-साहित्य के एक अभाव का पूरक होगी एवं विद्वानों, कथा-साहित्य के विद्यार्थियों तथा रस के इच्छुक पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

क्रम

कहानी खत्म हो गई

एक असहाय विधवा के पतन की दर्दनाक कथा, जिसे नीचे धकेलने की समाज ने चेष्टा की परन्तु पाप और अपराध की गठरी उसीके सिर बंधी।

चाय आने में देर हो रही थी। और मेरा मिज़ाज गर्म होता जा रहा था! आप तो जानते ही हैं, मैं इन्तज़ार का आदी नहीं। फिर, चाय का इन्तज़ार।

मेजर वर्मा ने यह बात भांप ली, उन्होंने एक हिंट दिया। बोले—चौधरी, उस औरत का फिर क्या हुआ?

क्षण-भर के लिए चाय पर से मेरा ध्यान हट गया, एक सिहरन-सी सारे शरीर में दौड़ गई, जैसे बिजली का तार छू गया हो। मैंने चौंककर मेजर की ओर देखा। पर जवाब देते न बना, बात मुंह से न फूटी। एक अजीब-सी बेचैनी मैं महसूस करने लगा।

लेकिन मेजर वर्मा जैसे अपने प्रश्न का उत्तर लेने पर तुले हुए थे। वे एकटक मेरी ओर देख रहे थे। प्रश्न का मेरे ऊपर जो असर हुआ था, उसे मित्र-मण्डली ने भी भांप लिया। वे लोग अपनी गपशप में लगे थे, पर विंग कमांडर भारद्वाज ने हंसकर कहा—कौन औरत भई, उसमें हमारा भी शेअर है।

भारद्वाज की हंसी में न मैंने साथ दिया न मेजर वर्मा ने। वर्मा की उत्सुकता उनकी आंखों से प्रकट हो रही थी। मैं उनकी आंखों से आंख न मिला सका। आप ही मेरी आंखें नीचे को झुक गईं। मैंने धीरे से कहा—मर गई।

मेजर की छाती में जैसे किसीने घूंसा मारा। उन्होंने एकदम कुर्सी से उछलकर कहा—अरे, कब?

'कल सुबह'—मैंने धीरे से कहा।

मित्र-मण्डली की गपशप एकदम बन्द हो गई। वे सब मेरी ओर देखने लगे। वातावरण एकदम गम्भीर हो गया। मेरे चेहरे पर जो वेदना की रेखाएं उभर आई थीं, उन्होंने सभीको अभिभूत कर दिया। सबसे अधिक फील किया मिसेज़ शर्मा

ने। उन्होंने मेरी ओर खिसककर अपने नंगे कंधे मेरे कंधों से छुआ दिए, फिर धीरे से पूछा—कौन थी?

'थी एक', एक गहरी सांस लेकर मैंने कहा।

'क्या बीमार थी?'

'बीमार कोई और था, लेकिन मर गई वह।' मेरा जवाब असाधारण था, और मैं एकाएक उत्तेजित और असंयत हो उठा था। मेजर भी जैसे मेरे जवाब से जड़ बन गए थे। इसीसे इस औरत के सम्बन्ध में सभी की जिज्ञासा जाग गई।

वेटर कब चाय रख गया, इसका ज्ञान भी हममें से किसीको नहीं हुआ। भारद्वाज ने कहा—यह तो कोई बहुत ही सीरियस केस मालूम पड़ता है।

मेजर वर्मा ने बीच ही में बात पकड़ ली। उन्होंने कहा—सीरियस होने में क्या शक है। लेकिन हुआ क्या?

'क्या पूरा ही क़िस्सा सुना दूं?' मैंने कुछ दर्द-भरे स्वर में कहा। मेरे कहने का ढंग शायद कुछ प्रभावशाली था। सभी मेरे मुंह की ओर देखने लगे। भारद्वाज ने कहा—ज़रूर, ज़रूर। पूरा ही क़िस्सा सुनाइए।

मिसेज़ शर्मा ने चा' का प्याला तैयार किया, मेरी ओर बढ़ाया, कहा—लीजिए, एक सिप लीजिए।

मैंने दो सिप लिए और प्याला एक ओर टेबुल पर रख दिया। फिर मैंने कहा—आप लोग समझते होंगे, ज्यादातर ट्रेजेडी शहरों में होती है, क्योंकि वहां संघर्ष है, दिमाग है, कानून है, रुपया है, शान है।

सब चुपचाप सुनते रहे। मैं आगे क्या कहना चाहता हूं इसीपर सबका ध्यान केन्द्रित था। मैंने कहा—लेकिन हमारे देहातों में भी कभी ऐसी ट्रेजेडी हो जाती है जो मनुष्यता और सभ्यता को एक करारा चैलेंज देती है। वहां रुपया नहीं है, दिमाग नहीं है, कानून नहीं है, शान नहीं है, केवल दिल है।

कमांडर भारद्वाज उछल पड़े। ज़ोर-ज़ोर से बोले—अरे यार, तो यह कोई दिल-वाला मामला है। तब मैं ज़रूर सुनूंगा।—उन्होंने सिगरेट का एक गहरा कश लिया। भारद्वाज का यह गुंडा जैसा टोन मुझे पसन्द न आया। वास्तव में मेरा मूड कुछ दूसरा ही था। मैंने एक व्यंग्यबाण छोड़ा, कहा—क्यों नहीं, आप दिलफेंक जो ठहरे। पर यह कहानी दिलवालों की है।

दिलवाले भी बैठे हैं।

और एक सिप चा' का लिया। फिर मेजर वर्मा की ओर मुखातिब होकर कहा—आपने तो उसे पुलिस की हिरासत में ही देखा था न ?

मेजर ने कहा—जी हां, ओह, उस दिल हिला देनेवाले वाकये को तो मैं ज़िन्दगी-भर नहीं भूल सकता। खासकर वह घटना जब पुलिस के अफ़सर ने तरबूज़ की मिसाल देकर वह झोला मेरे सामने उलट दिया था। तोबा-तोबा!!

मिसेज़ शर्मा एकदम बौखला उठीं, बोलीं—अजी, पहेली न बुझाइए, किस्सा सुनाइए। हुआ क्या ?

मेजर की आंखें भय से फटी-फटी हो रही थीं। जैसे अभी भी वे उस झोले से बाहर निकली हुई चीज़ को देख रहे थे। मैंने उन्हींको लक्ष्य कर कहा—उस वक्त तक भी पूरा किस्सा मुझे मालूम न था, सारी बातें तो पीछे मुझे मालूम हुईं। पर तब तो वह मर ही चुकी थी। अपने पर शर्मिन्दा होने और अफसोस करने के अलावा हम कर ही क्या सकते थे ?

बहुत देर तक मेरे मुंह से बात न फूटी। कितनी ही बातें—कल्पना और सत्य की—मेरे मानस-नेत्रों में नाच उठीं, सच पूछिए तो मैं अभी तक उस घटना से मर्माहत न था, अभी—एक दिन पहले ही की तो वह घटना थी। घाव ताज़ा था। इस क्षण उसकी वे आंखें, आंखों की वह वेदना, निराशा और सारी ही मानव-सभ्यता को धिक्कार का संदेश, जो मृत्यु के समय उसके निस्पन्द होंठ दे रहे थे, मेरे नेत्रों में आ खड़े हुए। मेरा कण्ठ रुक गया।

मिसेज़ शर्मा बहुत विचलित हो गईं। उन्होंने कहा—जाने दीजिए, यदि आपको वह किस्सा सुनाने में तकलीफ हो रही है तो मत कहिए। आप चा' लीजिए। उन्होंने एक ताज़ा प्याला तैयार कर मेरे आगे बढ़ाया। उनकी उंगलियां कांप रही थीं और उद्वेग तथा भावावेश से उनका हृदय आन्दोलित हो रहा है, यह स्पष्ट दीख पड़ता था।

प्याले की ओर मैंने आंख उठाकर भी न देखा और मैंने किस्सा कहना शुरू किया :

वह हमारे ही गांव की लड़की थी। उसका बाप हमारी ज़मींदारी में सर्वराहकार था। बूढ़ा और भला आदमी था। हमारा ग्रामीण जीवन शहर के जीवन से

सर्वथा भिन्न होता है। आप कदाचित् उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। गांव में हम सब छोटे-बड़े, ऊंच-नीच एक पारिवारिक भावना से रहते हैं। न जाने कब से, सम्भवतः आदियुग की यह परिवार-भावना हमारे गांवों में अब तक चली आ रही है। सुनते हैं कि प्राचीन काल में, जब नगर नहीं थे, सभ्यता नहीं थी, जीवन अपने ही में केन्द्रित था और मनुष्य जीवन-संघर्ष को सबसे बड़ा मानता था। आदर्शों की, समाज की, सभ्यता की, धर्म-मर्यादा की तब तक उत्पत्ति भी न हुई थी तभी से मनुष्य ने ग्राम-संस्था स्थापित की। सामाजिक जीवन का वह प्रथम अध्याय था। उसीसे मनुष्य ने सामूहिक हितों का सर्जन करके समाज-संस्था की नींव डाली। 'ग्राम' का अर्थ था—समूह। कुछ लोग एकत्र होकर जहां बसते वह ग्राम कहाता था। आवश्यक नहीं था कि यह ग्रामवास स्थायी हो। वह तो चलग्राम था। ग्राम का अर्थ स्थानसूचक न था, समूहसूचक था; अतः उस काल मनुष्यों के ये ग्राम जीवन-यापन के संघर्ष से प्रताड़ित घूमा करते थे—यहां से वहां, वहां से यहां। परिस्थितियों ने उनमें सामूहिक हितों की सृष्टि कर दी। सुख-दुःख, लाभ-हानि सभी में उनके स्वार्थ एकत्र हो गए और एक ग्राम-समूह एक परिवार की भांति रहने लगा। इस परिवार में जाति-भेद को स्थान न था। सब वृद्ध पितृतुल्य थे, सब वृद्धाएं माता, और सब युवक-युवतियां परस्पर भाई-बहिन। उनका सबका एक ग्राम था, एक गोत्र था। गोत्र का अर्थ था चरागाह, जहां उनके पशु चरते थे। एक ग्राम का परिचय दूसरे ग्राम के मनुष्यों से इसी ग्राम-गोत्र के द्वारा होता था। प्रत्येक ग्राम और गोत्र का एक कुलपति होता था। उसीके नाम से वह ग्राम-गोत्र प्रसिद्ध होता था।

शताब्दियां बीतीं, सहस्राब्दियां बीतीं। नगर बसे, सभ्यता का विकास हुआ। जीवन के आदर्श बदले, क्रम बदला, समाज बदला, बदलता चला गया।

गांवों में भी यह परिवर्तन पहुंचा। सहस्राब्दियों के प्रभाव से गांव भला अछूते कैसे रह सकते थे! अब 'गांव' स्थान के अर्थ में था—समूह के अर्थ में नहीं। अब लोगों की बस्ती को गांव कहते थे। समाज में अनेक जातियां हो गई थीं। गंगो गांव में भी अनेक जातियां बसती थीं; हिन्दू थे, मुसलमान थे। हिन्दुओं में भी ब्राह्मण थे, क्षत्रिय थे, जाट थे, अहीर थे, लुहार थे, भंगी थे, चमार थे, धोबी थे, नाई थे। समाज की व्यवस्था के अनुसार वे अपना-अपना काम करते थे। गांवों में किसानों की ही बस्ती अधिक होती है। जो लोग किसान और किसानों के उपजीवी नहीं होते वे शहरों में, कस्बों में बसते हैं। जो लोग वहां बसते हैं उनकी वहां

सम्पत्ति भी है। ज़मींदार हैं, किसान हैं, उनके खेत हैं, घरबार हैं। किसीके कम, किसीके अधिक। कोई रईस है, कोई अमीर। इस प्रकार समाज के संगठन का, व्यवस्था का, राजसत्ता का, कानून का, धर्म का—सभी का युगवर्ती प्रभाव गांवों पर पड़ा है। उनसे उनमें परिवर्तन भी आया है, पर एक प्राचीनतम बात अभी तक गांवों में चली आ रही है। वह है परिवार-भावना। गांव की बूढ़ी भंगन को भी गांव के ब्राह्मण की पतोहू सास कहकर पांव पड़ती है। गांव की प्रत्येक लड़की गांव के प्रत्येक लड़के की बहिन और प्रत्येक प्रौढ़ की लड़की है। गांव में सब छोटे-बड़ों का सम्बन्ध—चाचा, ताऊ, भाई, भतीजा, देवर, भाभी, काकी, ताई आदि पारिवारिक सम्बन्ध हैं। यहां तक कि गांव की लड़की जिस दूसरे गांव में ब्याही जाती है, उस गांव का पानी भी न पीनेवाले वृद्ध पुरुष अब भी गांवों में जीवित हैं। यह है हमारे गांवों की परिवार-परम्परा—शताब्दियों, सहस्राब्दियों से चली आती हुई।

हां, तो मैं उस लड़की की बात कह रहा था। वह हमारे गांव की लड़की थी, और हमारी ज़मींदारी की सर्वराहदार की बेटी थी। हमारा घर ज़मींदार का घर था। गांव के सारे ही स्त्री-पुरुष हमारी रैयत थे। वे हमारे घर आते-जाते रहते थे, स्त्रियां भी, पुरुष भी। काम से भी और बेकाम से भी। बाहर पिताजी का दीवानखाना और भीतर ज़नाने में माताजी का कमरा आने-जाने वाले स्त्री-पुरुषों से भरा ही रहता था। हवेली हमारी बहुत भारी थी। सत्तावन के गदर में अंग्रेज़ सरकार ने हमारे दादा को इक्कीस गांव इनाम दिए थे और तभी हमारे दादा ने अपनी हवेली के लिए इतनी जगह घेर ली थी कि उसमें आधा गांव समा जाता था। सस्ते का ज़माना था। राज, बढ़ई उन दिनों दो-ढाई आना रोज़ मज़दूरी लेते, मज़दूर एक आना। बड़े-बड़े महराव, मोटी-मोटी दीवारें, लम्बे-लम्बे दालान भी आज भला बन सकते हैं? अब तो हम उनकी मरम्मत भी नहीं कर सकते। हवेली वीरान होती जा रही है। अब तो न हाथी, न घोड़े, न रथ, न बहली। इनके सब थान वीरान पड़े हैं। अब तो सिर्फ यह मोटर है और हम हैं।

मैं असल बात से दूर होकर बहकता जा रहा था। भीतर मेरे रक्त में एक गर्मी-सी आ रही थी और जोश में ये सब बातें मैं कहे जा रहा था—एकाएक मुझे ध्यान आया। असल मुद्दे की बात तो पीछे ही रह गई।

परन्तु सब सन्नाटा बांधे सुन रहे थे। सब जैसे किसी अतीत उदारचित्त वातावरण में पहुंच चुके थे। मैंने ज़रा रुककर कहना शुरू किया :

उन दिनों मैं कालेज में लॉ का फाइनल दे रहा था। दशहरे की छुट्टियों में जब मैं घर आया तो पहली बार उसे देखा—'देखा' कहना ठीक न होगा। मुझे कहना चाहिए : पहली बार मेरा ध्यान उसकी ओर गया। इससे पहले बहुत बार देख चुका था—रूखे-बिखरे बाल, मैला मोटा ओढ़ना, पुराना घाघरा, नंगे धूल-भरे पैर, पर रंग गोरा। लेकिन गांव में ऐसी बहुत लड़कियां थीं, राह-वाह में, खेत में बहुधा मिल जाती थीं। मैं तो ज़मींदार का लड़का था। शहर में पढ़ता था। सूट-बूट पहनकर ठसक से गांव में निकलता था। सो किसी लड़की-लड़के की क्या मजाल जो मुझसे बात करे। मुझे देखते ही वे सहमकर पीछे हट जाते थे। जो समझदार होते थे वे सलाम करते थे। सयानी लड़कियां ओट में छिप जाती थीं, छोटी कौतुक से मुझे देखती थीं। इसीसे इस लड़की पर भी पहले कभी मेरा ध्यान नहीं गया।

पर इस बार की बात जुदा थी। मैं घर कोई डेढ़ साल में आया था। पिछली गर्मी की छुट्टियों में यूनिवर्सिटी की टीम कश्मीर चली गई थी। मैं भी उसमें चला गया था, अतः छुट्टियों में घर नहीं आया था। घर में दशहरे की सफाई-सजावट की धूम-धाम थी। भाभियां घर सजाने में व्यस्त थीं और वह उनकी सहायता कर रही थी। अब उसके बाल बिखरे न थे। ठीक-ठीक बालों की मांग निकली थी, कपड़े सलीके के शहरी ढंग के बारीक और बढ़िया थे। स्वस्थ तारुण्य उसकी एड़ियों में झांक रहा था। जीवन की ताज़गी से वह लहलहा रही थी। जीवन में पहली ही बार किसी लड़की को मैंने ऐसी रुचि से देखा था। उसका चेहरा गुलाब के समान रंगीन और आंखें तारों के समान चमकीली थीं। वह हंसती नहीं थी, फूल बखेरती थी, चलती न थी, धरती को डगमग करती थी। मैं क्या कहूं ? मुझे एक ही क्षण में ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे दस-पांच अंगीठियां मेरे अंग में धधक रही हैं और मैं तपकर लाल हो रहा हूं। आग की लपटें मेरी आंखों से निकलने लगीं और मैं वहां से लड़खड़ाता हुआ ऊपर कमरे में आकर औंधे मुंह पलंग पर पड़ रहा। मैंने समझा मुझे बुखार चढ़ गया है।

इतना कहकर मैं ज़रा चुप हुआ। बीते हुए दिन एक-एक करके मेरे नेत्रों में आने लगे।

लेकिन कमांडर भार्गव बेचैन हो रहे थे। उन्होंने इतमीनान से कुर्सी पर आसन जमाते हुए कहा—कहे जाओ, कहे जाओ दोस्त ; मामला ठण्डा मत होने दो।—उन्होंने नई सिगरेट सुलगाई।

मैंने आगे कहना आरम्भ किया :

वह मुझे देखकर लजाई थी, मुस्कराई थी, भाभी की ओट में छिप गई थी, छिपकर उसने फिर मुझे देखा था। वह सब—देखना, मुस्कराना, छिपना, लजाना अब सिनेमा की तस्वीर की भांति अनेक बार, सौ बार, हज़ार बार तेज़ी से मेरी आंखों में घूम रहे थे। मेरा सिर घूम रहा था। धरती-आसमान भी सब शायद घूम रहे थे।

बहुत देर तक मेरी यही हालत रही। पर फिर मुझे ज़रा-सी नींद आ गई। जगने पर मेरा मन कुछ शान्त था। मुझमें समझ आ गई थी। अभी हृदय मेरा कोरा था, तारुण्य मेरा निर्दोष था। इस प्रथम विकार पर मुझे लज्जा आई। मुझे लगा, यह खराब बात है। गांव की सभी बहू-बेटियां मेरी बहनें हैं। पिताजी ने कई बार यह कहा है : हम ज़मींदार हैं, इससे और भी हमारा गौरव बढ़ जाता है। मुझे ऐसा न सोचना चाहिए। यह मेरी प्रतिष्ठा-मर्यादा के सर्वथा विपरीत है। मैं मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा और एकबारगी ही उसे मन से निकाल फेंका।

लेकिन कहां ? पलंग से उठते ही मैं खिड़की में आ खड़ा हुआ, और नीचे आंगन में चारों ओर देखने लगा, जैसे कुछ खो गया हो। किसे भला ? यह मैंने अपने मन से पूछा। और जब मन ने कहा—'उसीको' तो मैं अपने पर बहुत झुंझलाया। वैसे ही कमीज़ पहने मैं नीचे उतरा और सीधा बाग की तरफ चल दिया। देर तक बाग में और नहर की पटरी पर फिरता रहा। माली से बातें कीं। मुझे प्रसन्नता हुई कि वह तूफान खत्म हो गया। अब उसकी कभी याद न करूंगा। वाहियात बात पर रात को बहुत देर तक नींद न आई। उसका वह मुस्कराना, लजाकर भाभी की ओट में छिपकर देखना ! वाहियात ! वाहियात ! ये सब खुराफात, गंदी बातें हैं। भला इनसे मुझे क्या सरोकार !

लेकिन नींद नहीं आ रही थी। मैंने एक मोटी-सी कानून की किताब उठा ली, और एक कठिन कानूनी नुक्ते पर कुछ रूलिंग्स पढ़ने लगा। लेकिन वहां तो प्रत्येक अक्षर की ओट से वह झांक रही थी, मुस्करा रही थी। धुत् !

भारद्वाज ज़ोर से हंस पड़े।

मैंने कहा—ठीक है, आप हंस सकते हैं। मेरे दुश्चरित्र और दुराचार का यह प्रमाण जो आपको मिल गया!!

मैं चुप हो गया, और मैंने आंखें बन्द कर लीं। लेकिन वही तरबूज़! एक प्रकार से मैं चीख उठा।

मेजर वर्मा ने कहा—रहने दीजिए। बाकी कहानी फिर कभी सुन ली जाएगी। अभी आपकी तबियत दुरुस्त नहीं है। लेकिन मैंने कहना आरम्भ कर दिया :

दूसरे दिन मैंने उसे नहीं देखा। यह नहीं कह सकता कि देखना नहीं चाहा। पर मैंने अपने मन को रोकने में कोई कोर-कसर नहीं रखी। पर बेकार। उसकी छिपी हुई नज़रें झांकती ही रहीं। उसके होंठ मुस्कराते ही रहे। मैंने सुना : उसकी सगाई हो गई है, और इसी साहलग में उसका ब्याह होगा।

दशहरे के दिन मेरा तिलक चढ़ा। बहुत धूमधाम हुई। गाजे-बाजे, जशन-दावत, कहां तक कहूं। पिता का सबसे छोटा बेटा था। वे सबसे अधिक मुझको प्यार करते थे। भीड़-भाड़ में एक होकर मैंने देखा, हर बार मुझे प्रतीत हुआ, वह मुझको देख रही है।

छुट्टियां समाप्त होने पर मैं होस्टल में लौट आया। धीरे-धीरे वह उन्माद बीत गया। स्मृति अवश्य बनी रही, वह भी धुंधली होते-होते छिप गई। अगले वर्ष मेरी शादी हुई। सुषमा ने आकर मेरे जीवन को एक नया मोड़ दिया। सुषमा जैसी पत्नी पाकर मैं कृतार्थ हो गया। वह जैसी सुशिक्षिता है, वैसी ही शीलवती, परिश्रमी और हंसमुख स्वभाव की है। उसके प्रेम, सेवा और विनय से मैं उसमें लीन हो गया। उस लड़की की याद करके और अपनी हिमाकत का विचार करके कभी-कभी मुझे हंसी आ जाती थी, पर कभी मैंने किसीसे अपने मन का यह कलुष कहा नहीं। परीक्षा पास करके मैं घर पर रहकर ज़मींदारी की देखभाल करने लगा। खेती और बागबानी का मुझे शौक था। उसमें मैंने मन लगाया। बड़े भाई डिप्टी-कलक्टर होकर बिहार चले गए थे। पिताजी का स्वर्गवास हो गया। मंझले भाई भी केन्द्र के शिक्षा-विभाग में अंडर सेक्रेटरी हो गए। घर पर केवल मैं अकेला रह गया। दिन बीतते चले गए। तीन बरस बीत गए और ईश्वर की कृपा से सुषमा की कोख भरी। मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा।

एक दिन बूढ़े सर्वराहकार रोते हुए मेरे पास आए। चौधारे आंसू बहाते हुए उन्होंने कहा—बर्बाद हो गया, छोटे सरकार ! लुट गया ! लड़की मेरी विधवा हो गई, उसकी तकदीर फूट गई। मेरी इकलौती बेटी थी सरकार, उसे बेटा बना-कर पाला था। उसपर यह गाज गिरी।

बूढ़ा बहुत देर तक रोता रहा। यद्यपि वे सब बातें मैं भूल चुका था, पर स्मृति के चिह्न तो बाकी ही थे। सुनकर मुझे दुःख हुआ। बूढ़े को तसल्ली दी। और जब वह चला गया, एक बूंद आंसू मेरी आंख से भी टपक पड़ा। वाहियात बात थी। लेकिन मन का सच्चा तो सदा से हूं। मेरा मन द्रवित हो गया। बूढ़े ने कहा था कि वह उसे यहां ले आया है, तब एक बार उसे देखने की भी लालसा हो गई। पर वह सब बात मन की थी, मन में रही। महीनों वीत गए। कभी-कभी उसका ध्यान आता, दया आती, पर कुछ विशेष आकर्षण न था। सुषमा धीरे-धीरे कमज़ोर और पीली पड़ती जा रही थी। मुझे उसकी चिन्ता थी। ज्यों-ज्यों डिली-वरी का समय निकट आ रहा था, मेरी उद्विग्नता वढ़ती जाती थी—इन सब कारणों से मैं उस बिचारी विधवा को भूल ही गया। सुषमा के प्यार ने मुझे अभिभूत कर लिया था। सुषमा मेरे जीवन का आधार थी। और अब मैं इस प्रकार के विचारों को भी मन में रखना पाप समझता था। मुझे पाकर सुषमा भी खुश थी। वह देवता की भांति मेरी पूजा करती थी।

मिसेज़ शर्मा एकदम द्रवित हो उठीं। उन्होंने कहा—भई बंद करो। आप सचमुच देवता हैं। आप जैसा पति पाने के कारण मैं तो सुषमा वहिन से ईर्ष्या करती हूं।

मैं जैसे चीख पड़ा। मेरे गले की नसें तन गईं और मुट्ठियां भिच गईं। मैंने कहा—श्रीमतीजी, जल्दी अपनी राय कायम न कीजिए, पूरी कहानी सुन लीजिए।

मेरी वहशत और भावभंगी देख मिसेज़ शर्मा डर गईं। वे फटी-फटी आंखों से मेरी ओर टुकुर-टुकुर देखने लगीं। मैं इस योग्य न था कि इस समय उनसे अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा मांगूं। मैंने कहानी आगे बढ़ाई :

एक दिन देखता क्या हूं कि वह सुषमा के पास बैठी है। इस समय वह यौवन से भरपूर थी। उस समय यदि वह खिलती कली थी तो आज पूर्ण विकसित पुष्प। परिधान उसका साधारण था। पर स्वच्छता और सलीका, जो बहुधा देहात में नहीं देखा जाता, उसकी हर अदा से प्रकट होता था। उसका रंग अब ज़रा और

निखर गया था, अंग भर गए थे और रूप की दुपहरी उसपर चढ़ी थी। अथवा एक ही शब्द में कहूं तो वह इस समय वसन्त की फुलवारी हो रही थी। एकाएक मैंने उसे पहचाना नहीं, पर दूसरे ही क्षण जब उसने उठकर हाथ जोड़कर मुस्करा-कर मुझे प्रणाम किया, मैंने उसे पहचान लिया। हाय री तकदीर! वही मुस्करा-हट, वही चितवन! क्षण-भर को मेरे शरीर में रक्त की गति रुक गई और मेरे पैर कांपने लगे। साहस करके मैंने पूछा, 'अच्छी हो' तो उसने लाज से सिर झुका-कर सिर्फ 'जी' कह दिया।

छीं, छी! फिर वह भूली हुई बातें न जाने कहां से जीवित हो उठीं। वही मुस्कराना, छिपना और आंखें···मैं तेज़ी से वहां से भाग आया। सीधा ऊपर जा दरवाज़ा बन्दकर अपने शयनागार में आ पड़ा। एक आहत हिरन की भांति, जिसे अभी-अभी शिकारी ने तीर मारा हो।

उस दिन मैंने खाना नहीं खाया। सिरदर्द का बहाना करके पड़ा रहा। सुषमा की परेशानी ने मुझे और भी पागल बना दिया। कभी यूडीकोलोन सिर पर डालती, कभी नर्म-गर्म हथेलियों से सिर दबाती, कभी बाल सहलाती, कभी डाक्टर बुलाने का आग्रह करती। मुझ बेईमान, पाखण्डी, मक्कार के लिए वह उस एक ही दिन में आधी रह गई।

मैंने जलती हुई आंखों से मिसेज़ शर्मा की ओर देखा और कहा—कहिए, कहिए, अब भी आपको सुषमा पर ईर्ष्या होती है, परन्तु अभी ज़रा और ठहर जाइए!

एकाएक मेरी आवाज़ मुर्दे की जैसी मरी हुई हो गई। खूब ज़ोर लगाकर मैं कहने लगा :

दूसरे दिन सुबह होते ही मैं ज़मींदारी के ज़रूरी काम का बहाना करके इलाके पर चला गया। छः-सात दिन तक मैं घर नहीं लौटा। आप दाद दीजिए मेरे जानवरपन की, जबकि सुषमा की यह हालत थी, इस कदर नाज़ुक; कोई उसे देखने-वाला न था। पहली ही डिलीवरी थी उसे, और मैं नफ्स का गुलाम कहां, किस हालत में फिर रहा था। मैं आपसे नहीं छिपाना चाहता कि मुझे न खाना भाता था, न नींद आती थी; न दिन में चैन पड़ता था, न रात को कल पड़ती थी। वही शैतान आंखें, वही मुंह छिपाकर मुस्कराना, वही गहरे गुलाबी गाल, कम्बख्त न जाने कहां से उभरे चले आते थे, मेरी बदनसीब नज़रों में? जैसे मेरे रक्त की

प्रत्येक बूंद में उन आंखों का खेत उग आया था। उस चितवन की, उस मुस्कान की रिमझिम बरसात हो रही थी। जी हां, एक क्षण को भी मैं उसे न भूल सका, एक क्षण को भी मैंने सुषमा को याद नहीं किया, एक क्षण को भी मैंने उसकी असहायावस्था पर गौर न किया। अन्त में मैंने अपने-आपको धिक्कारा, मन में पक्का इरादा किया, उस शैतान को मैं गांव से निकाल दूंगा, एक क्षण भी न रहने दूंगा।

सातवें दिन मैं घर लौटा। अभी दहलीज़ पार करके मैं सुषमा के कमरे में जा ही रहा था कि देखता क्या हूं, सामने से वह आ रही है। मुझे देखकर वह ठिठक रही। निकट आने पर उसने मुस्कराकर और हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार किया। फिर वह मुस्कराती हुई ही चली गई। अजी, मुस्कराती हुई नहीं, मेरे मन में छिपी समूची वासना का सांगोपांग विवरण पढ़ती हुई। वह गहरे लाल रंग का लहंगा और उसपर चिलकेदार दुपट्टा लिए हुई थी।

भाड़ में जाए यह ! गुस्से से होंठ चबाता हुआ मैं सुषमा के कमरे में पहुंचा। कल ही से उसे ज्वर था। मुझे देख वह मुस्कराई और मैं उसकी जलती हुई हथेलियों को मुट्ठी में दबाए देर तक चुपचाप बैठा रहा। कुछ बोलने की ताव ही न रही। सुषमा ही बोली। उसने कहा :

'गुमसुम क्यों हो ?'

'कुछ नहीं। बहुत थक गया हूं, बहुत दौड़-धूप की है।'

सुषमा एकदम व्यस्त हो उठी। वह लेटी न रह सकी। उसने अधीर स्वर में कहा—मुंह कैसा सूख गया है ! बिस्तर लगवाती हूं, ज़रा सो रहो।—उसने आवाज़ दी—अरी···और वह आ खड़ी हुई। मैंने उसकी ओर नहीं देखा। सुषमा ने कहा—ज़रा झटपट यहीं बिस्तर लगा दे। बाबू की तबियत ठीक नहीं है।

मैंने बहुत ना-नूं की। वहां सुषमा के सामने मैं अपनी दुर्बलता प्रकट नहीं करना चाहता था। मैंने कहा—नहीं, नहीं, ऐसा ही है तो मैं ऊपर अपने कमरे में जा सोऊंगा। मगर तुम आराम करो। तुम्हें ज्वर है।

पर उस साध्वी पतिप्राणा को अपने ज्वर की क्या चिन्ता थी ! या उसे उस पाखण्डी के मन का ही हाल मालूम था ? उसने कहा—तो जा बहिन, ऊपर ही, जाकर बिस्तर लगा दे।

मेरा निषेध सुषमा ने माना नहीं। उसे भेज दिया। मैं जड़ बना वहीं बैठा रहा।

वह लौटकर आई। उसी तरह मुस्कराकर उसने कहा—भैयाजी का बिछौना

बिछा है।

'भैयाजी', यह शब्द जैसे बन्दूक की गोली की भांति मेरे मस्तिष्क में घुस गया। लेकिन मुझे तो गांव की सभी लड़कियां भैयाजी ही कहती हैं। वही गांव का प्राचीन पारिवारिक सम्बन्ध। परन्तु इस समय तो यह शब्द मेरे मुंह पर एक तमाचा था। मैं वहां न ठहर सका। तेज़ी से उठकर ऊपर अपने कमरे में बिस्तर पर आ पड़ा। कमरे की चटखनी भीतर से चढ़ा ली। क्यों ? मैं कह नहीं सकता।

बहुत देर तक मैं सोता रहा। जब उठा तो शाम हो चुकी थी। उठकर मैं सीधा सुषमा के पास जा बैठा। क्षण-भर बाद ही वह चा' लेकर आई। चा' टेबुल पर रखकर चली गई। सुषमा जानती थी कि मैं इन्तज़ार नहीं कर सकता, खास-क़र चाय का। पर यह बात क्या वह भी जानती है ?

उसके जाने के बाद मैंने सुषमा से कहा—क्या इसे तुमने नौकर रख लिया है?

उसने हंसकर कहा—नहीं, नहीं ! बहुत अच्छी लड़की है। मुझे अकेली और बीमार देखा तो आप ही मेरे पास आ गई। तभी से घर के काम-काज में जुटी है। तुम्हारे जाने के बाद से रोज ही दिन-भर यहीं रहती रही है। कितना सहारा मिला मुझे इससे ! तुम्हारे ऊपर जाने के बाद ही मैंने इससे कह दिया था कि तुम चा' का इन्तज़ार नहीं कर सकते। चा' तैयार कर देना। सब बातें मुझसे पूछकर यह न जाने कब से बैठी इन्तज़ार कर रही थी।—सुषमा हंस दी। और मैंने मन का उद्वेग छिपाने को एक बिस्कुट समूचा ही मुंह में ठूंस लिया।

अब मेरे जीवन का नया अध्याय आरम्भ होने में देर न थी। मुझे सुषमा शीघ्र ही कुसुम-कोमल पुत्र देगी, जो हम दोनों के प्रेम का जीता-जागता प्रमाण होगा। अब मुझे इस शैतानी विचार को मन में नहीं लाना चाहिए। फिर मेरा अपना चरित्र है, प्रतिष्ठा है, उसका भी तो खयाल रखना चाहिए। जैसे मेरे भीतर एक नये बल का संचार हुआ, मेरे ओठों पर हंसी खेल गई, मैंने बड़े आनन्द से चाय का एक प्याला अपने हाथ से बनाकर सुषमा को दिया। सुषमा आनन्द से विभोर हो गई। कुछ तो अपनी अस्वस्थता के कारण, और कुछ मुझे अस्त-व्यस्त देखकर वह बहुत परेशान हो गई थी। अब मेरे हाथ से प्याला लेकर वह खुश हो गई। उसने कहा—अब तो कुछ ही दिनों की बात है।—उसकी आंखें हंस रही थीं। और मैं आनन्द-सागर में गोते लगा रहा था। अपनी मूर्खता पर मैं मन ही मन हंसने लगा।

चुड़ैल कहीं की। धुत्! धुत्!

सुषमा ने कहा—जाओ, ज़रा घूम आओ, तबियत ठीक हो जाएगी। खाओगे क्या, मिसरानी से कह दो।

मैंने कहा—सुषमा, आज तो मैं तुम्हारे साथ ही खाऊंगा! जो चाहे बनवा लो। लेकिन, उठना नहीं, तुम्हें ज्वर है। ज़रा शरीर का ध्यान रखो।

स्त्रियां कितनी भावुक और कोमल होती हैं। मेरी इतनी ही सी बात पर सुषमा गद्गद हो गई। और मैं अपने को तीसमारखां समझने लगा था। अपनी समझ में तो मैंने मन का सारा ही मैल धो डाला था। अब तो दिल में कहीं किसी कोने में भी न वह हंसी थी, न चितवन। इसे कहते हैं मार पर विजय। मदनदहन शिव ने इसी भांति किया था। बुद्ध ने भी मार पर इसी भांति विजय पाई थी।

मैं कपड़े बदलकर ज्योंही सीढ़ियों से उतरा, देखता क्या हूं, वह सुषमा के लिए एक कटोरा दूध लेकर उसके कमरे में जा रही है। मैंने मन में कहा, इसकी ओर देखना ही न चाहिए।—मैं आंखें नीची किए दस कदम बढ़ गया। वह भी उसी भांति आंखें नीची किए आगे बढ़ गई। लेकिन न जाने क्यों मैंने ठिठकर मुंह फेर-कर उसकी ओर देखा! छी, छी, वह भी मुंह फेरकर मेरी ओर देख रही थी। मुझे उचटकर देखते देख वह चल दी। गुस्से से मेरा शरीर कांपने लगा, और मैं तीर की भांति वहां से बाहर निकल गया।

कमांडर भारद्वाज ज़ब्त न कर सके। ठठाकर हंस पड़े। बोले—यह गुस्सा किसपर था, उसपर या अपने पर?

क्षण-भर को सभी के चेहरों पर मुस्कान दौड़ गई। पर मिसेज़ शर्मा बहुत गम्भीर थीं। मेरे ऊपर घड़ों पानी गिर गया। मेरी वाणी रुक गई। बहुत देर तक कोई न बोला।

मेजर वर्मा एकाएक बहुत उत्तेजित हो उठे। वे कुर्सी से उछलकर खड़े हो गए। हाथ की सिगरेट उन्होंने फेंक दी और तेज़ नज़र से मेरी ओर ताकने लगे। मैं समझ गया, मेजर वर्मा कहानी के दूसरे छोर तक पहुंच चुके हैं। और अब उनके मस्तिष्क में वह तरबूज़······

मेरे होंठ नीले पड़ गए। और आंखें पथरा गईं। मैंने एक असहाय मूक पशु की भांति, जिसकी गर्दन पर छूरी चलनेवाली हो, करुण-कातर दृष्टि से मेजर वर्मा

की ओर देखा। मिसेज़ शर्मा घबरा गईं। उन्होंने कहा—आपकी तबियत तो एक-दम बहुत खराब हो गई है, चौधरी साहब।

'नहीं, मैं ठीक हूं।' कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए मैंने कहा। मेजर वर्मा चुपचाप कुर्सी पर बैठकर मेरी ओर ताकते रहे। मरे हुए स्वर में मैंने कहा—मेजर, सारी बातें मैं न बता सकूंगा। आप और ये सब सज्जन मुझे क्षमा करें।

डिलीवरी की खटपट में मैं फंस गया। सुषमा बहुत बीमार हो गई थी। उसे मसूरी ले जाना पड़ा। पुत्र-जन्म का उत्सव धूम-धाम, शोर-गुल, बाजे-गाजे से हुआ, ये सब बातें क्या कहूं। चार-पांच महीने इन सब बातों को बीत गए।

एक दिन शाम को जब मैं घूमकर लौट रहा था, गांव की जनशून्य राह पर मैंने देखा : चादर में लिपटा हुआ कोई खड़ा है। वही थी। और मेरी ही प्रतीक्षा में खड़ी थी। निकट पहुंचने पर उसने कहा—बड़ी देर से खड़ी हूं ज़रा उधर चलिए, मुझे आपसे कुछ कहना है।

सच पूछिए तो मैं अब उससे सचमुच ही कतराने लगा था। वह नशा तो काफूर हो चुका था। और इधर महीनों से उससे मुलाकात ही नहीं हुई थी। मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी कि मुझे एकान्त में उससे बात करते कोई देख ले। पर मैं उसका अनुरोध न टाल सका। मैंने कहा—क्या बहुत ज़रूरी बात है?

उसकी आंखें भर आईं। उसने धीरे से कहा—जी हां।

और जब हम रास्ते से हटकर उस बड़े बरगद की छांह में गए तब चारों ओर अंधेरा फैल चुका था। उसने एक ही वाक्य में वह बात कह दी। सुनकर मैं ठण्डा पड़ गया। मेरे मुंह से बात न निकली।

बहुत देर वह मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करती रही। फिर उसने धीरे से कहा—आपको मैं न किसी झंझट में डालना चाहती हूं, न आपपर मैं कोई बोझ लादना चाहती हूं। सब कुछ मैं स्वयं भुगत लूंगी। परन्तु पिताजी का देहांत हो चुका। मेरा अब पृथ्वी पर कोई नहीं है। आप गांव के राजा हैं; रियाया के माई-बाप हैं। मैं और किसी अधिकार की बात नहीं कहती, किसी बदनामी के भय से आप डरें नहीं। मर जाऊंगी, पर आपका नाम न लूंगी। परन्तु, मैं औरत हूं, असहाय हूं। मेरा कोई हमदर्द नहीं, आप ही अब मुझे राह बताइए।

मैं शर्म से गड़ा जा रहा था। समझ रहा था कि यह औरत मुझे कितना कायर

समझ रही है। यह कुछ झूठ भी न था। मैंने अन्त में कहा—मुझसे तुम क्या चाहती हो ? मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं ? आखिर मैं एक इज़्ज़तदार आदमी हूं। तुम्हें यह सोचना चाहिए।

'सोचकर ही तो कह रही हूं।'

'क्या तुम कुछ रुपया-पैसा चाहती हो ?'

'नहीं।'

'तब क्या चाहती हो ?'

'अपनी इज़्ज़त बचाना। आप राजा-रईस हैं, मैं गरीब, अनाथ, विधवा, रांड स्त्री हूं। जिस परिस्थिति में मैं फंस गई हूं उसके लिए मैं अकेले आपको ज़िम्मेवार नहीं ठहरा सकती। दुर्बलता मेरी भी थी। फिर, मैं तुच्छ स्त्री हूं। सभी भोग मैं भोग लूंगी पर इज़्ज़त-आबरू मेरी भी है। मेरे पिता आपके एक ईमानदार सेवक थे। मैं आपके गांव की बेटी हूं, मेरी बदनामी गांव की बदनामी है। वह मैं न होने दूंगी, इसमें आप मेरी मदद कीजिए।'

'लेकिन कैसी मदद ? रुपया-पैसा तो तुम चाहतीं ही नहीं।'

'जी नहीं।'

'तब मैं क्या करूं ?'

'गांव के किसी इज़्ज़तदार गरीब ठाकुर से मेरा ब्याह करा दीजिए।'

'इज़्ज़तदार ठाकुर क्यों ब्याह करने को राज़ी होगा ?'

'आप कहेंगे तो होगा। मेरा सहारा हो जाएगा। मेरा कलंक ढका रह जाएगा। और मैं अपनी सेवा से उसे प्रसन्न कर लूंगी।'

अब आप मेरे दिल की बात भी सुन लीजिए। मेरे आंखों में अब मेरे पुत्र का निर्मल हास्य खेल रहा था। सुषमा प्रसव के बाद मसूरी से लौटने पर अधिक आकर्षक हो गई थी। मैं अपनी लम्पट वृत्ति पर खीझ रहा था। न जाने मुझे क्या हो गया था उस समय। यही मैं सोचता रहता था। और अब वह आग तो सर्वथा बुझ चुकी थी। पर उससे जलकर जो फफोला पड़ गया था, वह इतना भारी जंजाल हो उठेगा, यह मैंने कभी न सोचा था। और अब मुझे इस औरत में कोई दिलचस्पी भी न थी। इससे सब भांति पीछा छुड़ाने और भविष्य में अपने दाम्पत्य का पूरा आनन्द लेने को मैं बेचैन था। कुछ रुपये-पैसे की बात होती तो मैं उसे दे देता। पर उसका ब्याह रचाना, यह तो एक नया सिरदर्द था। अब भला मैं किसको कहूं ?

कैसे कहूं ? सुनकर कोई क्या समझेगा, क्या कहेगा ? इन्हीं सब बातों पर मैं देर तक विचार करता रहा। कुछ देर बाद मैंने धीमे स्वर में कहा--क्या तुमने किसी आदमी को पसन्द किया है ?

'नहीं, पसन्द-नापसन्द की बात ही नहीं है, मुझे आप काना, अन्धा, बहरा, कोढ़ी, अपाहिज, बूढ़ा, किसीके पल्ले बांध दीजिए। उज्र न होगा। बस, मेरी लाज ढकी रह जाए। मेरे पिता का कुल न कलंकित हो।'

उस समय मैं उस एकान्त में उससे अधिक बात करने को सर्वथा अनिच्छुक था। मैंने केवल टालने की दृष्टि से कह दिया—अच्छा देखूंगा।

मैं चलने लगा। उसने कहा—ज़रा रुकिए। एक बात और है।

'क्या ?'

'वह कल गढ़ी में आकर सबके सामने कहूंगी। यहां कहना ठीक नहीं है।'

'अच्छा' कहकर मैं चल दिया।

दूसरे दिन पहर दिन चढ़े वह गढ़ी में आई। आकर सीधी कचहरी में जाकर दीवानजी के पास जा खड़ी हुई। उसने कहा, छोटे सरकार से अर्ज़ करने आई हूं।—दीवानजी उसे मेरे पास ले आए। धड़कते हृदय से मैं सोच रहा था, अब यह यहां किसलिए आई है। परन्तु, उसने एक साधारण रैयत की भांति अधीनता दिखाकर कहा—सरकार, मैं असहाय विधवा स्त्री हूं, मेरे पिता ने मरते दम तक रियासत की ईमानदारी से सेवा की है, अब न मेरे मां-बाप हैं, न कोई हित-सम्बन्धी। आप गांव के राजा है, इसीसे मैं आपकी शरण आई हूं।

मेरा दम घुट रहा था। पर मैंने मन पर काबू रखकर पूछा—क्या चाहिए तुम्हें !

'सरकार, एक भैंस यदि मुझे खरीद दें तो उसका दूध-घी बेचकर अपना भी पेट पाल लूंगी, सरकार का भी कर्ज़ा चुका दूंगी।'

मैंने बिना किसी आपत्ति के उसे भैंस खरीदवा दी। वह कहती तो मैं उसे दो-चार हज़ार रुपये भी दे सकता था। मैं जानता था कि यह उसका अधिकार था। पर उसने तो मुझसे केवल वही मांगा जो कोई एक साधारण रैयत ज़मींदार से मांगती है। अब यह कैसे कहूं कि उसकी यह मांग मेरी प्रतिष्ठा के लिए ही थी या उसकी प्रतिष्ठा के लिए।

उसके बाद वह और दो-चार बार मुझसे एकान्त से मिली। और ब्याह की बात पर उसने ज़ोर दिया। मैंने टालटूल की और अन्त में मैंने साफ इन्कार कर दिया।

उस दिन अकस्मात् पुलिस दलबल-सहित उसे लेकर गढ़ी में आ गई। मामला क्या है, इसे जानने के लिए उसके साथ बहुत लोगों की भीड़ थी। सब भांति-भांति की बातें कर रहे थे। पुलिसवालों ने उसे मारा-पीटा भी था। चोट के निशान उसके मुंह और शरीर पर थे। उसके वस्त्र जगह-जगह फट गए थे। बाल उसके बिखरे थे और चेहरे पर मुर्दनी छाई थी। आंखें उसकी फटी-फटी-सी हो रही थीं। शरीर में जगह-जगह खून लगा था। ओठों से भी खून बह रहा था।

पुलिस का अफसर सुशिक्षित तरुण था। वह मुझे जानता था। कहना चाहिए, मेरा मित्र था। पुलिस ने एक औरत के साथ मारपीट की है मेरे गांव में आकर?—यह बात जानकर गुस्से से मैं लाल हो गया। मेजर वर्मा उस दिन वहीं थे। गुस्सा इन्हें भी बहुत हुआ। हम लोगों ने पुलिस को खूब खोटी-खरी सुनाई। मैंने कहा—उसने क्या जुर्म किया है, क्या नहीं,—इसकी बात मैं नहीं कहता। पर आपको इसे मारने-पीटने का कोई अधिकार न था।

पुलिस-अफसर ने शांतिपूर्वक हमारा—मेरा और मेजर साहब का—गुस्सा सहन किया। फिर उसने कहा—चौधरी साहब, मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है। यदि गांव आपका न होता तो मैं यहां आता भी नहीं। इसे थाने में ले जाता। पर आपका मुझे बहुत लिहाज़ था—इसीसे।

मैंने कहा—आखिर मामला क्या है?

'आप ज़रा दूसरे कमरे में चलिए।'

मैं, मेजर वर्मा, वह और पुलिस-अफसर दूसरे कमरे में चले आए। अफसर के कहने से मैंने भीतर से चटखनी चढ़ा दी। किसी अज्ञात भय से मेरी अन्तरात्मा कांप उठी। मैं एकाएक पुलिस-अफसर के मुंह की ओर देखने लगा। और तब उसने तरबूज़ की मिसाल दी। और मैं अब बयान नहीं कर सकता। मेजर वर्मा कहेंगे, इन्होंने वह सब देखा है।

'बेशक मैंने देखा था। ऐसा खौफनाक, दिल हिला देनेवाला वाकया जिंदगी-भर मैंने नहीं देखा था।' कुछ ठहरकर मेजर वर्मा बोले—अफसर ने मेरी तरफ

देखकर, क्योंकि मैं ही ज़्यादा गर्म हो रहा था, व्यंग्यपूर्ण भाषा में कहा—जनाब, आप एक तरबूज़ लेकर उसे सिर से ऊपर उठाकर पटक दें तो कह सकते हैं कि उसका क्या परिणाम होगा ?

उस नौजवान पुलिस-अफसर की यह दिल्लगी मुझे न भाई। मैंने ज़रा गर्म लहजे में कहा—तरबूज़ फट जाएगा। लेकिन आपका मतलब क्या है ? इस औरत ने तरबूज़ की चोरी की है ?

'जी नहीं ! क्या किया है देखिए।' उसने कान्स्टेबिल को संकेत किया। और उसने हाथ में लटकते हुए झोले को ज़मीन पर उलट दिया। एक वज़नी-सी चीज़ धमाके के साथ ज़मीन पर आ गिरी। वह एक ताज़ा बच्चे की लाश थी।

मिसेज़ शर्मा के मुंह से चीख निकल गई। भारद्वाज हाथ की सिगरेट फेंककर खड़े हो गए, दूसरे लोग भी अवाक् रह गए। भारद्वाज ने कहा—क्या ताज़ा बच्चे की लाश ? हौरेबल—माई गॉड !

लेकिन मेजर वर्मा ने आगे कहना जारी रखा—बच्चे को शायद पत्थर पर या किसी सख्त चीज़ पर पटका गया था, जिससे उसका सिर उसी तरह फट गया था जैसे ऊंचे से फेंक देने से तरबूज़ फट जाता है। और उसके भीतर से लाल-लाल लोहू—तोबा-तोबा ! मेजर वर्मा वाक्य पूरा किए बिना ही सिर पकड़कर बैठ गए।

फिर उन्होंने कहा—पुलिस-अफसर ने बताया कि यह औरत तस्लीम करती है कि पहले हमल गिराया गया, लेकिन बच्चा ज़िन्दा पैदा हुआ। उसका गला घोंट-कर मार डालने की चेष्टा की गई, पर बच्चा मरा नहीं। तब उसे चक्की के पत्थर पर सिर के बल पटक दिया गया। उससे उसका सिर फट गया। पुलिस वालों ने बताया कि मार खाने पर ही इन सब बातों का पता इसने बताया है। पर बच्चा किसका है यह किसी हालत में बताती नहीं है। इसीसे हम निरुपाय इसे यहां लाए हैं। उसने चौधरी साहब से आग्रह किया था कि वह इस औरत से उस आदमी का पता पूछें और कानून की मदद करें। चौधरी तब बहुत परेशान हो उठे थे, इसका कारण मैं तब नहीं समझा था—अब समझा कि······

अब फिर मैं कहने लगा—कचहरी में मैं पागल की भांति चीख उठा कि उस बालक का पिता मैं था। जी हां, उस बालक का पिता मैं था। वह मेरा बच्चा था,

वैसा ही जैसा सुषमा की गोद में हंस-खेल रहा है। लेकिन……

मिसेज़ शर्मा भी एकदम उठ खड़ी हुईं। उन्होंने कहा—बस-बस, चौधरी, अब खत्म कीजिए। और वे बिना कुछ कहे चल खड़ी हुईं। परन्तु मैंने कहा :

'अब तो थोड़ी ही सी बात रह गई है। मेजर तो तुरन्त वहां से चल दिए थे। मेरे लिए मामला रफा-दफा करना लाज़िमी हो गया। पुलिस को विदा कर, और अपराध का खोज-पता मिटाकर उसे मैंने उसके घर भिजवा दिया। थोड़ी ही देर बाद एक पड़ौसी के हाथ उसने भैंस मेरे पास भिजवा दी और इसके कुछ ही देर बाद मुझे सूचना मिली कि वह मर गई।'

कहानी खत्म हो गई और सन्नाटा छा गया। चाय प्यालों में भरी हुई ठण्डी हो गई थी पर किसीने उसे छुआ भी नहीं! एक-एक करके चुपचाप सब लोग उठकर चल दिए : मुझे प्रतीत हुआ जैसे एक लानत की नज़र मेरे ऊपर फेंककर। मैं खामोश बैठा था। मेरा सिर घूम रहा था। आंखों में उस झोले में से निकली हुई चीज़ और सुषमा की गोद में खेलता-हंसता हुआ मेरा पुत्र! होंठों से खून बहाती फटे कपड़ों में लांछिता वह नारी और गृहिणी-गौरव-मण्डिता सुषमा, सब मूर्तियां जैसे घुल-मिलकर मेरे चारों ओर तेज़ी से चक्कर काट रही थीं। भय और आवेश से मैं चिल्ला उठा। मुझे इतना ही होश है, मेजर वर्मा ने किस तरह मुझे घसीटकर अपनी मोटर में डाला था। इसके बाद तो मैं बेहोश हो गया।

ककड़ी की कीमत

यह दिल्ली के बीते हुए दिनों के एक रईस की इज़्ज़त की हृदयग्राही कहानी है।

आज तो दिल्ली का सब रंग-ढंग ही बिगड़ गया है। बाज़ार में, मकानों में, चाल-ढाल में, सड़कों में, सबमें विलायतीपन आ गया है। जब से दिल्ली भारत की राजधानी बनी है और नई दिल्ली की चकाबू को मात करनेवाली विचित्र नगरी बसी है, तब से दिल्ली यद्यपि पंजाब से पृथक् अलग सूबा बन गया है, फिर भी उसमें बुरी तरह से पंजाबीपन भर गया है। नई दिल्ली जब बस रही थी, तब ढेर के ढेर पंजाबी सिख और सभी उत्साही लोग, जिन्होंने पंजाब के गेहूं और उर्द एवं चने खाकर अपने शरीर-बल को खूब वृद्धि दी है, नई दिल्ली पर चढ़ दौड़े। ठेकेदार से लेकर साधारण मज़दूर तक पंजाब के साहसी पुरुष भर गए। उन्होंने नई दिल्ली में आरम्भ में कौड़ियों के मोल ज़मीन ली और बस गए। अब नई दिल्ली में वे सरदारजी होकर मोटर में दौड़ते हैं; वीरभोग्या वसुन्धरा। दिल्ली के महीन आदमी न जाने कहां खो गए। अब जगह-जगह होटल खुल गए। लाइन की लाइन खालसा होटलों की दुकानें आप दिल्ली के बाज़ारों में देख सकते हैं, जहां झटका पकने का साइनबोर्ड लगा होगा। और वहां अनगिनत सरदारगण बड़े-बड़े साफे बांधे, लम्बी दाढ़ी फटकारे, कोट, पैंट, बूट डाटे, खाट या टेबुल पर बैठे रोटियां खाते दीख पड़ते हैं। छुआछूत को तो इन्होंने डंडे मारकर दिल्ली से नज़ाकत के साथ दूर ही कर दिया है। शाम को आप ज़रा चांदनीचौक में एक चक्कर लगाइए। पंजाबी युवतियां और प्रौढ़ाएं बारीक दुपट्टा माथे पर डाले, सलवार डाटे, मुंह खोले बेफिक्री से कचालू वाले के इर्द-गिर्द बैठकर कचालू-आलू खाती नज़र आएंगी।

कभी-कभी ब्याह-शादी के जलूसों में जौहरियों की वह देहलवी नुक्केदार पगड़ियां कुछ पुराने सिरों पर नज़र आ जाती थीं। परन्तु वह नीमास्तीन अंग-रखे, वसली के जूते, दुपल्ली दो माशे की टोपी, बगल में महीन शर्बती का दुपट्टा तो बिलकुल हवा हो गए हैं। सरदे के दामन और सफेद शर्बती की चादरें लपेटे अब

दिल्ली की ललनाएं नहीं दीख पड़तीं। न अब वे जड़ाऊ ज़ेवर ही उनके बदन पर दीख पड़ते हैं जिनकी बदौलत दो हज़ार जड़िए और पांच हज़ार सुनार दिल्ली से अपनी रोज़ी चलाते थे। अब तो बारीक क्रेप की फैशनेबिल साड़ियां, उनपर नफासत से कढ़ी हुई बेलें, बिना आस्तीन के जम्पर, जिनमें से आधी छाती और समूची मृणाल-भुजाएं खुला खेल खेलती हैं, साथ में ऊंची एड़ी के रंग-बिरंगे सैंडिल-जूते, चांदनीचौक में देखते-देखते आंखें थक जाती हैं। देश की इन पर्दाफाश बहिनों में सुशिक्षिताएं तो बहुत ही कम हैं। ज़्यादातर मोर का पंख खोंसकर मोर बनने-वाले कौए जैसी हैं। इसका पता उनके चेहरे पर पुते हुए फूहड़ ढंग के पाउडर से, होंठों में खूब गहरे लगे गुलाबी रंग से, तीव्र सेंट से, तराबोर चटकीले रेशमी रूमाल से, बालों में चमचमाते नकली जड़ाऊ पिनों से अनायास ही लग जाता है। कभी-कभी तो इन अधकचरी मेमसाहिबा की कोमल कलाइयों में दिल्ली फैशन के सोने के दस्तबन्दों और अनगिनत चूड़ियों के बीच फैन्सी रिस्टवाच तथा पैरों के ज़ेवरों पर ऊंची एड़ी का सैंडिल शू मन में अजब हास्यरस उत्पन्न करता है; खासकर उस हालत में जबकि उनके पालतू पति महाशय पतलून पर लापरवाही से स्वेटर पर कोट डाले उनके पीछे-पीछे उनकी खरीदी चीज़ों का बंडल लिए बड़े उल्लास से चलते-फिरते और मुसाहिबी करते नज़र आते हैं।

३८ वर्ष हुए। उस समय दिल्ली के चांदनीचौक में, अब जहां अगल-बगल पैदल चलनेवालों के लिए पटरियां बनी हैं, वहां सड़कें थीं। सड़कें कंकड़ की थीं। उनमें बहली, मझोलियां, इक्के सरपट दौड़ा करते थे। दोनों समय उन सड़कों पर छिड़काव हुआ करता था। बीचोंबीच अब जहां चमचमाती सीमेंट की पुख्ता सड़क है, नहर पर पटरी बनी थी। उसके दोनों ओर खूब घने वृक्षों की छाया थी। ज्येष्ठ-बैसाख की दोपहरी में भी वहां शीतल वायु के झोंके आया करते थे। उस पटरी पर बड़ी-बड़ी भीमकाय बेतों की छतरियां लगाए खोंचेवाले अपनी-अपनी छोटी-छोटी दुकानें लिए बैठे रहते थे। उनमें बिसाती टोपीवाले, टुकड़ीवाले, घी के सौदेवाले, दहीबड़ेवाले, चने की चाटवाले, कचालूवाले, मेवाफरोश तथा फल-वाले सभी होते थे। उनसे भी छोटे दुकानदार अपनी छोटी-सी दुकान को किसी टोकरी में सजाए गले में लटकाए घूम-फिरकर सौदा बेचा करते थे। सैकड़ों आदमी उन वृक्षों की घनी छाया में पड़े हुए थकान उतारा करते थे। घंटाघर के सामने

कमेटी की संगीन इमारत के आगे अब जहां महारानी विक्टोरिया की मूर्ति रखी हुई है, वहां काले पत्थर का एक विशालकाय हाथी खड़ा था, जिसे जयमल फत्ते का हाथी कहकर बूढ़े आदमी उस पटरी पर वृक्षों की ठंडी छाया में लेटे उनींदी आंखों में खमीरी तम्बाखू का मद भरे भांति-भांति के किस्से-कहानी कहा करते थे। दिल्ली के निवासियों की बोली में एक अजीब लोच था। खोंचेवालों की आवाज़ें भी एक से एक बढ़कर होती थीं। सब्ज़ी-तरकारियों में जो पहले चलती, वही दिल्ली के रईस खाते थे। भिंडी और करेले जब तक रुपये सेर बिकते थे, कच्ची आम की कैरियां जब तक बारह आने सेर बिकती थीं, तभी तक वे दिल्लीवालों के खाने की चीज़ समझी जाती थीं। सस्ती होने पर उन्हें कोई नहीं पूछता था। वेर के मौसम में लोग बेरों को चाकू से छीलकर उनपर चांदी का वर्क लपेटकर खाते थे। लताफत और नज़ाकत हर एक बात में थी। जैसे वे महीन आदमी थे, वैसे ही उनका रहन-सहन भी था।

फागुन लग गया था। वसन्त पुज चुका था। सर्दी कम हो गई थी। वासन्ती हवा मन को हरा कर रही थी। वाज़ार में नर्म-नर्म पतली ककड़ियों के कूजे विकने आने लगे थे। पर उनके दाम काफी महंगे थे इसलिए यह रईसों का ककड़ी खाने का मौसम था। एक जवान कुंजड़ा सिर पर नारंगी साफा बेपरवाही से बांध, वदन पर तंजेब का ढीला कुरता पहने, गले में सोने की छोटी-सी तावीज़ काले डोरे में लटकाए, आंखों में सुरमा और मुंह में पानों की गिलौरियां दबाए कमर में चौखाने का तहमत और पैर में फूलदार सलेमशाही आधी छटांक का जूता पहने ककड़ियां बेचता पटरी पर मस्तानी अदा से घूम रहा था। उसके हाथ में झाऊं की एक सूफि-यानी चौड़ी टोकरी थी। उसपर केले के हरे पत्तों पर गुलाब के फूलों के बीच ककड़ी के दो रवे रखे थे। टोकरी उसके दाहिने हाथ में अधर धरी थी। वह अपनी मस्त आंखों से इधर-उधर घूरता झूमती-झूमती ललकती भाषा में आवाज़ लगाता था, नाज़ुक ये ककड़ियां ले लो···लैला की उंगलियां ले लो···मजनूं की पसलियां ले लो। नाज़ुक ये ककड़ियां ले लो।

पीछे से आवाज़ आई, ककड़ीवाले, ज़रा वरे को आना। उसी भांति मस्तानी अदा से पुकारता हुआ ककड़ीवाला पीछे को फिरा। पुकारनेवाला कहार था। वह एक बुड्ढा आदमी था। उसकी सफेद-सफेद बड़ी मूंछें, पक्का रंग, लट्ठे की मिर्ज़ई.

दुपल्ली टोपी और चौखाने का अंगोछा कंधे पर पड़ा हुआ था।

ककड़ियों को देखकर उसने कहा—सिर्फ दो ही रवे हैं ?

'अभी ककड़ियां कहां ? वह तो कहो, मैं चार रवे लाया था। दो बिक गए, दो ये हैं। लेना हो तो लो, मोलभाव का काम नहीं, चवन्नी लूंगा।'

बूढ़ा कहार अभी नहीं बोला था। एक युवक ने तीव्र आवाज़ में कहा—अठन्नी लो जी, ककड़ियां हमें दो।

पहलवान युवक भी कहार था। उसकी मसें अभी भीगी थीं। भुजदण्डों में मछलियां उभर रही थीं। उसने हेरती हुई आंखों से बूढ़े कहार की ओर देखा और अठन्नी ठन से झाबे में फेंक दी।

'सौदा हमसे हुआ है जी, ककड़ियां हम लेंगे। यह लो एक रुपया। ककड़ियां हमें दो।'

कुंजड़ा क्षण-भर स्तम्भित रहा। उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से युवक की ओर देखा। युवक ने कहा—कुछ परवाह नहीं, हम दो रुपये देंगे।

'हम पांच रुपए देते हैं।'

'हम दस देते हैं।'

'यह लो बीस रुपये। ककड़ी तो हम खरीद चुके।'

'पच्चीस हैं यह, ककड़ी हमने ले ली।'

'हमने तीस दिए।'

युवक के माथे पर बल पड़ गए। उसने कहा—हम पचास में खरीदते हैं। लाओ ककड़ियां इधर दो।

बूढ़े कहार ने हंस दिया और आज्ञा की दृष्टि से युवक की ओर देखकर ज़रा सीधा खड़ा होकर उसने तेज़ स्वर में कहा—मैंने सौ रुपये में दोनों ककड़ियां खरीद लीं।

युवक कहार क्षण-भर घबराई दृष्टि से बूढ़े की ओर देखता रहा। बूढ़े ने विजय-गर्वित दृष्टि से उसे घूरते हुए कहा—दम हो तो बढ़ो आगे। ककड़ियां पांच हज़ार तक मेरे यहां जाएंगी।

सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गए थे। युवक लज्जा और क्रोध से भरकर चुपचाप चल दिया। सैकड़ों कण्ठों से नारा बुलन्द हुआ—वाह भाई, महरा, क्यों न हो ? आखिर तू है किस घराने का नौकर, जो इस समय दिल्ली की नाक है। शाबाश !

बूढ़े ने कमर से रुपये खोलकर गिन दिए। ककड़ियां लीं और इस भांति अपने मालिक के घर को चला, जैसे वह एक राज्य विजय कर लाया हो।

बूढ़े ने अपने मालिक लाला जगतनारायणजी के सामने जाकर फूलों और केले के पत्तों में लिपटी हुई ककड़ियां रख दीं। शाम हो चली थी।

लालाजी ने पूछा—क्या दो ही मिलीं ?

'जी हां, बाजार-भर में सिर्फ दो ही ककड़ियां थीं। जिन्हें आपका सेवक सौ रुपये में खरीद लाया है।'

इसके बाद कहार ने जो घटना बाज़ार में घटी थी, सब कह सुनाई। लाला ने सब सुना। क्षण-भर वे स्तम्भित रहे। क्षण-भर बाद उन्होंने अपने गले से सोने का तोड़ा उतारकर बूढ़े के गले में डाल दिया और उसके बदन को दुशाले में लपेटकर स्वयं भी उससे लिपट गए। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। उन्होंने गद्गद कण्ठ से कहा—शाबाश मेरे प्यारे रामदीन, तुमने बाज़ार में मेरी प्रतिष्ठा बचा ली। इसके बाद उन्होंने चांदी की तश्तरी में ककड़ियों को उन्हीं गुलाब के फूलों में रखकर ऊपर कमख्वाब का एक रूमाल ढांककर कहा—जाओ, लाला शिवप्रसादजी से मेरा जयगोपाल कहना, और कहना कि आपके सेवक ने यह प्रेम की सौगात भेजी है और हाथ जोड़कर अर्ज़ की है कि स्वीकार करके इज़्ज़त अफ़-ज़ाई करें।

युवक से सब घटना सुनकर शिवप्रसादजी चुपचाप मसनद पर लुढ़क गए। मुंह की गिलौरी उन्होंने थूक दी। नौकर-चाकर चिन्तित हुए। पर कोई कुछ नहीं कह सकता था। थोड़ी ही देर में बूढ़े रामदीन ने आकर अदब से आगे बढ़कर तश्तरी लाला शिवप्रसादजी के सामने रख दी और हाथ जोड़कर अपने मालिक का संदेश भी निवेदन कर दिया। लाला शिवप्रसादजी चुपचाप एकटक तश्तरी में रखी दोनों ककड़ियों को देखते रहे। कुछ देर बाद उन्होंने ककड़ियां भीतर भिजवा दीं और तश्तरी अशर्फियों से भरकर कहा—यह तुम्हारा इनाम है। लाला जगतनारायणजी से हमारा जयगोपाल कहना।

बूढ़े रामदीन ने झुककर सलाम किया और चला आया।

दूसरे दिन सूर्योदय के साथ ही सारे शहर में खबर फैल गई कि नगर के प्रसिद्ध रईस लाला शिवप्रसादजी ने रात ज़हर खाकर जान दे दी। वे एक पुर्जे पर यह लिखकर रख गए कि बाज़ार में मेरी इज़्ज़त किरकिरी हो गई। अब मैं दुनिया में मुंह नहीं दिखा सकता।

ऊपर जिन दो प्रतिष्ठित रईसों के नाम दिए गए हैं, वे काल्पनिक हैं। आज भी ये दोनों घराने दिल्ली में उसी भांति प्रतिष्ठित हैं। हां, जिनका नाम जगत-नारायण कल्पित किया है, उनके घर से लक्ष्मी रूठ गई है। आज वह विशाल हवेली टूट-फूटकर खण्डहर हो गई है। उसमें जो एकाध कमरा बचा है उसमें उनके उत्तरा-धिकारी बड़े कष्ट से काल-यापन करते हैं। नीचे के खण्ड के खण्डहरों में छोटे दर्जे के किरायेदार रहते हैं। जिनकी आमदनी पर ही उनका निर्वाह निर्भर है।

बड़नककी

प्राचीन वेश्याओं का जीवन आधुनिक वेश्या-जीवन से सर्वथा भिन्न था। उस जीवन में वेश्याएं अपने ग्राहकों को आत्मिक, शारीरिक एवं पारिवारिक सुख की सभी चेष्टाओं में सक्रिय थीं। स्वार्थान्धता की दुष्ट प्रकृति से वे दूर थीं। उनकी सत्प्रवृत्तियां अपने प्रेमियों के लिए उन्मुख रहती थीं। बड़नककी एक ऐसा ही चरित्र है। यह कहानी १९२८ में लिखी गई थी। और इसके प्रकाशित होने पर लेखक के पास जिज्ञासु पत्रों का तांता लग गया था।

अजमेर तो बहुतों ने देखा होगा, उसके जैसी ऊबड़-खाबड़ गन्दी गलियां और सड़कें और किस शहर को नसीब हैं। वैसे मैले तोंदल, थलथल, हलवाई मिट्टी के रंग की धोती कमर में बांधे, लोहे के थालों में तेल और गुड़ की मिठाइयां, भुंजे सेव लिए किस तरह चुन्धी आंखों से ग्राहक के ऊपर शुभ दृष्टि डालते हैं, इसे बताकर कैसे कहा जाए। अजी वैसी कुंजड़नें धरती के छोर पर कहीं मिल जाएं, तो नाम। मदारगेट के शैतान की आंत की तरह ऊंची-नीची और रेखागणित की तमाम शक्लों की मुरक्कब गली को पार करते ही फिर कुंजड़न ही कुंजड़न हैं। सभी नमूनों की देख लीजिए। नवेलियां महीन झिलमिल घूंघट से और प्रौढ़ाएं कटाक्ष की खुली दुधारी तलवार से एवं वृद्धाएं अधनंगे सिर, हाथ-भर लम्बी जुबान से जिस खुशी से सौदा पटाती हैं और उनके मर्दुए जिस सन्तोष से इस सौदे को नयन भरकर देखते हुए मीठी तमाखू का दम पर दम चुपचाप लगाया करते हैं, इसे जिसने न देखा, उसकी आंखें, चाहे जैसे बढ़िया चश्मे से ढकी रहें, व्यर्थ हैं। इन कुंजड़ों की उर्दू-मारवाड़ी मिश्रित तीखी मीठी बोली, ठठोली, कलेजे के आर-पार जानेवाले व्यंग्य-बाण झेलने की अपेक्षा लोग चार पैसे झाड़ देने में जो स्वाद पाते हैं, उसे अजमेर के भाग्यवान ही जान सकते हैं।

इतना होने पर भी आज अजमेर में कुछ तत्त्व नहीं है। सेठों के नये-नये बंगलों ने शून्य पहाड़ी टेकरियों को एक शोभा जरूर प्रदान की है। चीफ कमिश्नर साहेब

का फरफराता झण्डा जब अभागे आना सागर के हिलोरें मारते जल में प्रतिबिम्बित होता है और स्वच्छ खालिस संगमरमर की बनी शाहजहां की विधवा बारादरी पर खड़े होकर जब दो-चार भद्रजन उसे निहारते हैं तो समझिए अजमेर में सब कुछ है। गलियां गन्दी हैं, तो हुआ करें। महल, मकानात, हवेलियां किस शान की बनी हैं। दुःख तो यही है कि उनमें रहनेवाला आज नहीं है। अजमेर में नर हैं, नारी हैं, बाज़ार हैं, गलियां हैं, मुहल्ले हैं, पर नहीं है प्राण। वह प्राण, जिसके लिए अजमेर से महामायावी अंग्रेज़ों ने विवाह किया था। अजमेर मुर्दा है, वह राजपूताना की एक महानगरी का श्मशान है।

पर सदा ही ऐसा न था। एक समय था जबकि अजमेर में ढड्ढा परिवार ओज पर था। सारे राजपूताने में इसकी तूती बोल रही थी। सूरत की आढ़त के द्वारा योरोप तक उनकी हुंडी चलती थी। चांदी के बाज़ार में अमेरिका तक उनकी प्रामाणिकता थी। सेठ चांदमल छगनमल का नाम समस्त भारत के प्रमुख सेठों में था। सोनियों का आज-जैसा दौर-दौरा न था। अलबत्ता लढ़ा-परिवार तब भी ओज पर था। सोनियों और लढ़ाओं में लाग-डाट चलती रहती थी। गोटा और जवाहरात एवं हुंडी-पर्चे की अजमेर एक भारत-प्रसिद्ध मण्डी थी। उस समय आठ सौ दुकानें तो सिर्फ गोटे की थीं।

सन् '५७ के गदर के बाद अंग्रेज़ों ने अनुभव किया कि राजपूताना हमारी सबसे बड़ी ढाल है। साधारण प्रजा की अपेक्षा रईस और रजवाड़े अधिक आसानी से हमारी गुलामी पसन्द करेंगे ; इसके सिवा इन्हें सर्वथा बधिया बनाए रखने ही में कल्याण है। इसलिए उन्होंने राजपूताने के लिए अपनी खास नीति निर्धारित की ; खास-खास सभी ठिकानों ने अंग्रेज़ों से सन्धियां कर ली थीं। मारवाड़ ने नवीन सन्धि द्वारा अपने-आपको ब्रिटेन की कृपा पर छोड़ दिया था। निदान अजमेर में अंग्रेज़ी साम्राज्य का सौभाग्य-सिंदूर लालबिन्दु लगा दिया गया। अजमेर-सा सम्पन्न नगर उस समय था नहीं। इसके सिवा यदि वर्षा ठीक हो जाए तो कश्मीर को छोड़कर अजमेर की सुषमा को धारण करनेवाला नगर भारत में नहीं।

अजमेर कमिश्नरी बन गया। आज तक वह भारत के रजवाड़ों के प्रभु का स्थान है। छोटी-छोटी शक्तियां, जिनका सम्बन्ध राठौर से अधिक है, अजमेर के चारों तरफ छाई हुई हैं। इसके सिवा मेवाड़ का प्रतापी नाम उस समय तक सर्वथा

निस्तेज न हुआ था, मेवाड़ का मानो अजमेर सिंहद्वार है। उधर गुजरात का फाटक भी यहां से ही खुलता है।

उन्हीं दिनों की बात है। लाखन कोठरी के इस तरफ जहां आजकल धान-मण्डी का मोड़ है और इस समय जहां सड़े हुए अन्न की दुर्गन्ध सदा बनी रहती है तथा टूटी हुई सड़क और टूटी-सी एक दुमंज़िला इमारत खड़ी है, वहां एक तिखण्डा आलीशान महल था, जिसके द्वार पर सदैव श्रीमन्तों और उमरावों की सवारियों का तांता बंधा रहता था। यह आलीशान महल एक वेश्या का था। और उसका नाम था—बड़नककी।

बड़नककी अपने ज़माने में समस्त राजपूताने में प्रख्यात वेश्या थी। उस समय वेश्याओं से सम्बन्ध रखना रईसों और उमराओं के लिए एक शान की बात समझी जाती थी। जातीय सुधारक युवक-दल तब कहां था, खद्दर और स्वराज्य के नारे सोए पड़े थे। उत्थान और नव्य जीवन राजपूताने को त्याग चुका था। तब थी एक मूर्च्छा की बदमस्ती। उसमें समस्त मारवाड़ सो रहा था और प्रतापी ब्रिटेन का यूनियन जैक हवा में लहराकर उस बदमस्त सोते हुए मारवाड़ रसिया को ठंडे थपेड़ों से सुला रहा था।

वेश्या और मद्य उस समय के जीवन की आवश्यक सामग्री थी। घर-घर भट्टियां थीं और अनेक जाति की सुवासित मदिरा घरों में ही तैयार होती और पानी की तरह पी जाती थी।

बड़नककी की आयु चालीस को पार कर गई थी, उसकी नाक अपेक्षाकृत कुछ बड़ी था, उसीने उसे इस नाम से प्रसिद्ध भी किया था। चालीस वर्ष की आयु तक उसने बड़े-बड़े घरवाले, बड़े-बड़े मार्के जीते, बड़े-बड़े मूंछ-मरोड़ों को ढीला किया। सरदारों को भिखारी बनाना और सेठों के दिवाले निकलवाना बड़नककी के बाएं हाथ का खेल था। प्रतिवर्ष सुन्दर बालिकाएं देहात से संग्रह करके उन्हें पहनने, ओढ़ने, अदब-कायदे की तालीम देकर रईसों और सेठों को बेचना उसके व्यापार का एक खास अङ्ग था। श्रीमन्त, साहूकार और सरदारों को दूसरे धन-पति मित्रों से कर्ज़ा दिलाना, जायदाद गिरवी रखाना, सुलह और विग्रह कराना, बड़े घराने की बहू-बेटियों को अनायास ही उड़ा लेना बड़नककी के व्यवसाय का विस्तार था। उसकी शाखाएं—बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, कोटा, बूंदी, ज़ोधपुर

आदि सर्वत्र फैली हुई थीं। इन सब धन्धों में लाखों रुपयों की सम्पत्ति उसके पास उमड़ी चली आती थी। इस सघन व्यापार को करते बड़नककी अपने यौवन का पूरा मोल-तोल ले-लिवाकर प्रौढ़ा बनी थी। पर उसका धंधा वैसे ही ज़ोरों पर था। दस-बारह अनिंद्य सुन्दरियां सभी नमूनों की उसके महल में सजीव पुतलियों की भांति बनी रहती थीं—मारवाड़ का कोई भी रईस छैला उन ड्योढ़ियों में घुसकर बिना दिए और बिना छके बाहर न निकल सकता था।

शीतकाल की सन्ध्या थी। सात बज चुके थे। धुंधला अंधकार सर्वत्र व्याप्त हो गया था। बड़नककी स्नान-उबटन करके बन-ठनकर बैठी थी। उसका रंग गौरवर्ण, शरीर मांसल, त्वचा साफ और चमकीली, आंखें अनीदार, होठ उत्फुल्ल और खड़ी होने की धज निराली थी। स्वास्थ्य भी उसका खूब था, चालीस वर्ष की उम्र होने पर भी उसमें सिवा कुछ स्थूलता उत्पन्न हो जाने के उसके रूप में अन्तर नहीं पड़ा था। वह एक हलकी दुलाई ओढ़े हुक्के की नली मुंह में दबाए, गद्दे पर मसनद के सहारे बैठी थी। नौकर-चाकर बड़े यत्न से कमरे को सजा रहे थे। रंगीन हांडियों में काफूरी बत्तियां जल रही थीं। धीमी और सुगन्धित वायु से कमरा महक रहा था। सब कुछ ठीक-ठाक करके उसने नौकर को आवाज़ देकर कहा—वसन्ती यदि कपड़े बदल चुकी हो तो उसे ज़रा यहां भेज दो।

वसन्ती ने सहमते-सहमते कमरे में प्रवेश किया। बड़े दुलार से बड़नककी ने कहा—बेटी, देखो, इस पोशाक में तुम कितनी अच्छी लगती हो। पर देखो, बण्डी इस तरह नहीं पहना करते। तुमने तमाम गर्दन और कान ही ढक लिया। वाह, यह कैसा भद्दापन है। सिर का पल्ला ज़रा पीछे रखा करो। घूंघट का इस घर में काम नहीं। और हां देखो, वह मेरा कश्मीरी नया शाल निकाल लो। वह तुम्हारा हुआ। पर इतनी सुस्त क्यों हो? क्या पराए घर हो? घर तो तुम्हारा है। खुश रहो, खाओ, खेलो, मौज करो। औरों को नहीं देखतीं क्या? अच्छा देखो, उस मसनद पर बैठो तो सही। नहीं, इस तरह नहीं, सिकुड़ती क्यों हो? हां, अब ठीक है। अच्छा ज़रा इस बोतल और गिलास को तो उठा लाओ।

बालिका ने विनम्र भाव से बोतल-गिलास बड़नककी के सामने धर दिए। बड़नककी ने अधिकार के स्वर में कहा—गिलास भरो बेटी!

बालिका ने गिलास भरा। बड़नककी ने उसे हाथ में लेकर पी लिया और

कहा—एक गिलास तुम भीपियो ।

'जी नहीं, मैं नहीं पिया करती ।'

'यह क्यों, तुम्हारे ठाकुर साहब तो सदा पीते हैं ।'

'जी हां, पर मैं नहीं पीती ।'

'पगली बेटी, ऐसी नियामत पिए विना रहा जा सकता है ।'

बड़नकको ने गिलास भरा । बालिका के होंठों से लगा दिया, बालिका पी गई। इसके बाद बालिका को प्यार से चूमकर बड़नकको ने कहा—वसन्ती, तुम किसी दिन बड़ा नाम कमाओगी । अच्छा, अब काम की बात सुनो । देखो यह कसबन का घर है । अपना-अपना कर्म अपना-अपना धर्म । मैं चाहती हूं कि किसी लखपती को तुम्हें सौंपकर तुम्हें खुश देखूं । अभी जो सरदार आनेवाले हैं, अजमेर तो क्या, मारवाड़ में उनके सा सुन्दर जवान नहीं है । कैसे बांके जवान हैं कि वाह ! उम्र भी बीस-इक्कीस के इतनी ही है । रंग जैसा कुन्दन का, वाणी जैसे फूल बरसते हैं, दांत जैसे मोती, छरहरा बदन, कैसा प्यारा जवान है । तुझे बेटी, उनकी सब तरह खातिर करनी होगी । लजाने-शर्माने से काम नहीं चलेगा । समझीं ? अच्छा, ऊपर जाकर जरा देख आओ, नाश्ता और खाने-पीने का सब सामान तैयार है न ? पर देखना, जो वे बहुत इसरार करें तो पी लेना । ज़्यादा ना नूं इन रईसों को पसन्द नहीं । जाओ, उस कमरे में शराब, गिलास और नाश्ता सब ठीक-ठीक चुनवा दो ।

बालिका नीची गर्दन किए सुनती रही और फिर धीरे से चली गई ।

बड़नकको ने उसकी ओर देखा और धीरे-धीरे सिर हिलाकर मुस्कराई। इतने में एक सेवक ने चिट्ठी लाकर दी । उसमें लिखा था :

प्रिये !

खेद है, मैं न आ सकूंगा । आज तुम्हारी बात रखना असम्भव है । ऐसा भी विश्वास नहीं होता कि फिर कभी तुमसे मुलाकात होगी । बहूजी आ गई हैं, और उनकी पवित्रता, भोलापन और सौंदर्य देखकर मैंने मन में कुकर्म त्यागने और चरित्र सुधारने का दृढ़ संकल्प कर लिया है । कृपाकर अब उस भोली मूर्ति को दिखाकर ही मुझे लालच में न फंसाना । मैं तुम्हारा प्रतिपालन वैसे ही करता रहूंगा। पर देखना, ऐसा काम कोई न करना कि मेरा नाम तुम्हारे घर के साथ लिया जा सके ।

यह स्वप्न में भी न सोचना कि मैं तुमसे नाराज हूं। तुम्हारे द्वारा जीवन में जो सुख मिला है, वह जीवन में कभी भूलने की वस्तु नहीं। अब से हम दोनों विशुद्ध मित्र रहे। प्रिये विदा !

पत्र बड़नककी के हाथ से गिर गया। उसने पत्र से ज्योंही दृष्टि उठाई, दासी ने सेठ···को सम्मुख ला खड़ा किया। बड़नककी हड़बड़ाकर उठ बैठी और बोली—ओफ, आज इतने दिन बाद अचानक पधारे, हमारे अहोभाग्य ! मैं तो समझी, हुजूर ने मुझे भुला दिया। कमला ने कितनी बार याद किया। मैंने कहा, बेटी, सब्र कर। रईस कब किसके होते हैं ! यहां तो एक आते और एक जाते हैं। पर सुनती ही नहीं, तभी से उदास रहती है। मैंने सोचा कि आपको लिखूं, पर कुछ सोचकर रह गई। हां, यह तो कहिए, हुजूर का मिजाज तो अच्छा है ?

'बहुत अच्छा हूं। मैं जोधपुर चला गया था। एक गंभीर मामला हो रहा है। अब तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है।······खानदान को तुम जानती ही हो, अब या तो अजमेर में वे नहीं या मैं नहीं। मैंने वह हाथ धरा है कि कल दस बजे दुनिया जानेगी कि सेठ······का टाट उलट गया।'

बड़नककी ने पास खसककर कहा—आखिर तुमने ऐसी कारस्तानी क्यों की है ? कुछ सुनूं भी। मुझसे क्या छिपा रहे हो, सभी धन्धे तो मेरी मार्फत होते हैं।

'पर यह धन्धा कुछ और ही है। (धीरे से) कल पचास लाख की हुंडियों का भुगतान सेठजी को करना पड़ेगा। (मुस्कराकर) हुंडियां ये जेब में पड़ी हैं, वहां रुपया है नहीं। मैं जोधपुर, बीकानेर, जयपुर सभी जगह से उनकी हुंडियां खरीद लाया हूं।'

बड़नककी ने मन का भाव दबाकर कहा—गज़ब करोगे। खैर, तो यह कहिए कि सैकड़ों वर्ष के पुराने घराने को बर्बाद कर देंगे ? आपने बड़ा भारी परिश्रम किया।

'क्या पूछती हो ? कई महीने दौड़धूप करनी पड़ी है। नहीं तो क्या मैं बिना आपके और कमला के रह सकता था ? हां, कमला कहां है ?"

'आठ दिन के लिए जयपुर भेज दिया है। बड़ी उदास रहने लगी थी।'

'वाह, यह तो बुरी सुनाई।'

'क्यों कमला न सही, मैं तो हाज़िर हूं।'

'आप अपनी जगह और कमला कमला की जगह है।'

'मेरे पास एक ही कमला नहीं है।'

क्षण-भर में वसन्ती ने कमरे में प्रवेश किया। एक अपरिचित अधेड़ व्यक्ति को देख वह ठिठक रही। ओस के भीगे हुए गुलाब की कान्ति के समान लज्जा की लाली और सौन्दर्य के निखार का साथ-साथ उद्गम देखकर कामुक सेठ सकते की हालत में हो गए।

बड़नकक्की ने कहा—बेटी संकोच न करो। अभी तो मैं तुमसे इनका जिक्र कर रही थी। आपको ऊपर ले जाओ, खातिर-तवाजा करो।

बालिका चुपचाप खड़ी रही। इसी अधेड़ पुरुष की रूपरेखा क्या उस तरह बयान की गई थी? पर अभागिन वेश्या की लड़की को यह सोचने का क्या अधिकार? उसने एक ही क्षण में देख लिया कि यह पुरुष न सुन्दर है, न सुडौल, बल्कि एक चालीस-साला अधेड़ मोटा बदरंग आदमी है।

उसके होंठ घृणा से सिकुड़ गए। सेठजी ने उस सौन्दर्य-मूर्ति को पाकर मानो आसमान छुआ। वे बड़े चाव से उठे और उसका हाथ पकड़ ऊपर ले चले। बालिका मन्त्रबद्ध की तरह चुपचाप चल दी।

अंधेरी रात में सिर्फ तारों की परछाईं थी। उसमें काले वस्त्र से शरीर को ढके एक व्यक्ति टेढ़ी-मेढ़ी गलियों को पार करता तेज़ी से जा रहा था। एक विशाल अट्टालिका पर जाकर उसने ऊंघते हुए द्वारपाल का कंधा पकड़कर हिला-कर कहा—सुनो, ज़रा देखो, सेठजी सोते हैं या जाग रहे हैं। सोते हों तो भी उन्हें जगा दो, काम बहुत ज़रूरी है।

द्वारपाल ने हड़बड़ाकर सावधान होकर कहा—पर तुम हो कौन?

आगन्तुक ने मुख पर का आवरण उतार डाला। टिमटिमाते दीपक के धुंधले प्रकाश में द्वारपाल ने देखा। वह अकचका गया और शीघ्र ही भीतर ड्योढ़ियों में चला गया।

सेठजी की उम्र साठ को पार कर गई थी। वे घबड़ाकर बोले—बड़नकक्की, तुम इस वक्त?

'दिल न माना, सेठजी, बुढ़ापे में दिल ज़्यादा बेकाबू हो जाता है।'

'हंसी रहने दो, खैर तो है?'

'खैर होती तो इस वक्त मुझे आना पड़ता?'

'बात क्या है, सो तो कहो।'
'घर में रुपया कितना है ?'
'तुम्हें कितना चाहिए ?'
'पचास लाख नकद।'
'पचास लाख और इस वक्त ? पागल हो गई हो क्या ?'
'बिना पागल हुए घर से निकल सकती थी ?'
'आखिर मामला तो बताओ, क्या है ?'
'कह दिया न, रुपये की ज़रूरत है। घर में कितना होगा ?'
'दो-तीन लाख।'
'कल कुछ देना है ?'
'कुछ नहीं।'

बड़नकको क्षण-भर खड़ी रही। उसने एकाएक सेठजी का हाथ पकड़ लिया, और कहा—मेरे साथ अभी आदमी भेज दीजिए, जो कुछ भी होगा, भेज दूंगी। आपको कल पचास लाख की हुण्डी भुगतान करनी पड़ेगी। तैयार रहिए, सर्वनाश की दुश्मनों ने पूरी तैयारी कर ली है। इतना कहकर बड़नकको ने कान में कुछ कहा।

सेठजी ने एक भेद-भरी दृष्टि से वेश्या को देखा। उन्होंने बड़े ज़ोर से उसका हाथ दबाकर कहा—बड़नकको, तुम्हारा एहसान अब इस बुढ़ापे में नहीं उतार सकता। जाओ, उस जन्म में उतारूंगा। तुम आराम करो, मैं सब भुगत लूंगा। तुम्हें रुपये के लिए तकलीफ करने की ज़रूरत नहीं।

सेठजी ने एक नौकर को पुकारकर बड़नकको को उसके मकान तक छोड़ आने का अदेश किया।

बड़नकको विशेष आग्रह न कर एक दृष्टि सेठ के वृद्ध, किन्तु स्निग्ध नेत्रों में फेंककर चल दी।

'अभी साहेब सोते हैं, मुलाकात नहीं होगी।'
'मगर मेरा काम बहुत ज़रूरी है।'
'मुझे जगाने का हुक्म नहीं है।'
'मैं बिना मिले जा नहीं सकता।'

गुस्से से लाल मुंह किए चीफ कमिश्नर साहब ने बराण्डे में आकर गुर्रा कर कहा :

'वेल बेरा, क्या गुल है ?'

'हुज़ूर, सेठ साहब……'

'ओह, रायबहादुर……आप इस वक्त कैसे ?'

'हुज़ूर ! बहुत ज़रूरत होने पर आया हूं ।'

'क्या बात है ?'

'भीतर चलिए तो कहूं ।'

भीतर आकर सेठजी ने पगड़ी साहब के पैरों पर धर दी और सारा मामला सुनाकर कहा—कल भुगतान करना या मरना—एक काम मुझे करना होगा । सिर्फ तीन दिन के लिए दस लाख रुपया सरकारी खज़ाने से मिलना चाहिए ।

साहब ने गम्भीर होकर कहा—मगर यह तो कानून नहीं है ।

'साहब, मैं कानून नहीं जानता । सरकार के लिए हम जान देने के लिए तैयार हैं । क्या सरकार हमारी इतनी मदद भी न करेगी ?'

साहब ने पुर्ज़ा लिख दिया ।

अंग्रेज़ी अमलदारी के प्रारम्भिक दिन थे । कानून आवश्यकतानुसार काम में आता था । रातोंरात सेठजी के घर में रुपया पहुंच गया । रातोंरात कोठे में भर दिया गया । रातोंरात दीवार चुन दी गई और सफेदी कर दी गई ।

दस बज गए थे । सेठजी गम्भीर मुद्रा में गद्दी पर बैठे थे । मुनीम-गुमाश्ते अपने-अपने धन्धे में लगे थे । सेठ…अपना भारी शरीर गाड़ी से उतारकर मुस्कराते हुए भीतर चले आए । सेठजी ने हंसकर आदरपूर्वक उन्हें बैठाया, कुशल पूछी और आने का कारण पूछा । सेठजी ने ज़रा हंसकर कहा—सेठ साहब, आपपर थोड़ी-सी हुंडियां हैं, इन्हें सकार दें । रुपये की इस वक्त ज़रूरत आ पड़ी है ।

सेठजी से संकेत पाकर मुनीमजी ने हुंडियां लेने को हाथ बढ़ाया ।

हुंडियां देखते ही मुनीमजी का मुंह पीला पड़ गया ।

सेठजी ने कहा—क्या बात है मुनीमजी ?

'रुपया नकद घर में है नहीं । हुंडियों की रकम बहुत है ।' मुनीमजी ने धीरे से कहा ।

सेठजी ने ज़रा उच्च स्वर में कहा—तो क्या हर्ज है, सेठ साहब कोई गैर थोड़े ही हैं। दो-चार दिन के आगे-पीछे रुपये भेज देना।

'सेठ साहेब, आज रुपया मिल जाता तो ठीक था। आज रुपये की ज़रूरत है। वरना वैसे तो कोई बात न थी।'

'आप जानते हैं, रुपया नकद रोककर हमेशा रखा नहीं जाता। हां, दो-चार दिन में मिल जाएगा, यह तो व्यवहार की बात है।'

'व्यवहार की बात तो यह है कि हुंडी फौरन सकार दी जाएं।'

'पर हमारा-आपका वैसे भी तो एक मामला है।'

'यह तो ठीक है, पर रुपया तो आज ही चाहिए।'

'आज रुपया नहीं दिया जा सकता।'

'रुपया आज ही मिलना चाहिए।'

'आज रुपया नहीं मिलेगा।'

'तब हुंडियां नहीं सकारी जाएंगी ?'

'क्यों नहीं !'

'तब रुपया अभी दीजिए।'

'अभी ?'

'जी हां, अभी।'

'दो-चार दिन भी न ठहरेंगे ?'

'दो-चार मिनट भी नहीं !'

सेठजी हंस दिए। मुनीमजी का मुंह फीका हो रहा था। वे थरथर कांप रहे थे। सेठजी की हंसी का रहस्य नहीं समझे। मुंह ताकने लगे।

सेठजी ने कहा—मुनीमजी, बेलदारों को तो बुलाओ।

बेलदारों के आने पर सेठजी ने हुक्म दिया, इस दीवार को तोड़ तो दो।

दीवार पर घन पड़ने लगे। ईंटों के गिरते ही छनाछन रुपयों का ढेर आ पड़ा। लोग हैरान थे। सेठजी ने गरजकर कहा—मुनीमजी, कह दो इस कंगले से, अपने हाथ से रुपया गिनकर ले जाए।

आगन्तुक सेठ धरती में गड़ गए। वे हुंडियां वहीं छोड़कर चुपचाप चल दिए।

उसी दिन रात्रि को बड़नकक्की के पास उसके सच्चे प्रेम का उपयुक्त उपहार

भेज दिया गया।

हीरे के उस हार को, जो सेठजी ने उपहार भेजा था, बड़नककी पहनकर कद्दे-आदम आईने में अपने ढलते यौवन को निहारकर सेठजी की कुछ मधुर स्मृतियों में लीन हो रही थी। एक दूसरे बड़े रईस की उसके यहां आज आमद थी। वह सजधजकर बैठी थी। दासी सफाई कर रही थी, करीने से सामान सजाया जा रहा था। एक व्यक्ति धीरे-धीरे चुपचाप ऊपर चढ़ गया। बड़नककी को अपने ध्यान में कुछ सुध न थी। जब उसने एकाएक गर्दन उठाकर उसके भयानक मुख को देखा तो वह सहम गई।

आगन्तुक ने कहा—बी साहबा, घबराओ नहीं, उम्मीद है मुझे पहचान गई होंगी। नजफखां पठान हूं। यहां के अमीरों से मैं खिदमत ले चुका हूं, अब उन्हें सताना नहीं चाहता। अब मैं आपकी खिदमत में आया हूं, दस हज़ार रुपयों की सख्त ज़रूरत है। कल रात को आठ बजे लूङ्गिया मसाणावाले पीपल के नीचे दक्षिण की तरफ गड़ा हुआ मिले। वरना खैर न होगी। अच्छी तरह समझ लो, लूङ्गिया मसाणा के पीपल के नीचे दक्षिण की तरफ रात को आठ बजे तक—समझीं। मैं तुम्हें हरगिज़ तकलीफ न देता। पर क्या करूं, बात ही ऐसी आ पड़ी है। अब ज़्यादा बातचीत की फ़ुर्सत नहीं। मैं जा रहा हूं। यह कहकर वह बिना उत्तर पाए ही गद-गद करके ज़ीने से उतर गया। बड़नककी सहमी रह गई।

नजफखां पठान कौन था। वास्तव में यह कोई न जानता था, पर उसकी धाक बड़ी थी। छोटे-छोटे सभी अमीर उसका लोहा मानते थे। वह बहुत डाके वगैरह न डालता था और न चोरी करता था। जब उसे ज़रूरत पड़ती, वह किसी अमीर से कहता—देखो जी, दस या पांच हज़ार रुपये उस दरख्त के नीचे गाड़ आना। अमुक समय तक। यदि वहां रुपये न हुए तो याद रखो, जहन्नुम रसीद कर दिए जाओगे।

अगर ठीक समय पर वहां रुपया गड़ा मिल गया तो ठीक, वरना अगले ही दिन वह रईस सचमुच जहन्नुम रसीद कर दिया जाता था। या तो उसका कहीं पता ही न लगता था या पलंग पर सिर धड़ से अलग, या कहीं जंगल में कुचली खोपड़ी, फटा सीना, कटा पेट कुत्ते और कौवों के जमघट में पड़ा मिलता। ये नक्शे

देखकर लोग नजफखां पठान की ताकत को समझ गए थे और जब हुक्म होता, जितने रुपयों के लिए होता, जिस दरख्त या मुकाम का पता होता, रुपया वहां गड़ा हुआ तैयार मिलता। इस तरह नजफखां मुद्दतों अमीरों के रुपयों पर आनन्द करता रहा। उसे पकड़ने में कोई समर्थ न था। पुलिस सिर फोड़कर मर गई। सिपाहियों और इंस्पेक्टरों की तो बात ही क्या, पुलिस-सुपरिंटेण्डेण्ट तक उससे पिट चुके थे। और बन्दूक तथा घोड़ा छिनवा चुके थे।

बड़नकको गाल पर हाथ धरे बड़ी देर तक इस मामले पर विचार करती रही। अन्त में उसने निश्चय किया कि पुलिस-सुपरिंटेंडेंट से इस घटना की इत्तिला करनी चाहिए। भला वेश्या का माल एक डाकू गुण्डा इस तरह हज़म कर जाए—जैसे कि बनियों का खाता है। दुनिया को हम लूटती हैं और यह हमें लूटने चल पड़ा। यह कदापि न हो सकेगा। यह इरादा पक्का करके जैसे-तैसे बड़नकको ने रात काटी। सुबह वह मुलाकात की पोशाक पहन गाड़ी मंगा साहब के बंगले को रवाना हो गई।

डिप्टी सुपरिंटेंडेंट भी उसके चेले थे। जूतियां सीधी कर चुके थे। खबर पाते ही फौरन बाहर निकल आए। मुलाकात के कमरे में ले गए और खैरियत पूछने लगे।

बड़नकको—हुज़ूर, खैरियत कहां ? वह मुआ नजफखां कल आया था। कह गया है कि या तो दस हज़ार कल मसाणिया पीपल के नीचे रख आओ नहीं तो खैर नहीं। और उस बदमाश से कुछ बईद भी नहीं है। वह ज़रूर मुझे मार डालेगा, अगर रुपये न गए तो। और आप देखते हैं, रुपये मुझ गरीब के पास कहां हैं। गनीमत है, खुदा का शुक्र है, तिस पर……।

बीच ही में डिप्टी साहब बोल उठे—बी साहबा, रुपये-पैसे की तो आपके पास कुछ कमी नहीं है। मगर वह क्या ऐसे बदमाशों के लिए है ? आखिर आपने भी तो उसे अपना तन-बदन दिखाकर किन-किन मुश्किलात से पैदा किया है। वह क्या इस तरह बर्बाद करने के लिए ? ऐसा हर्गिज़ नहीं हो सकता।

बड़नकको ने ज़रा झेंपकर कहा—हां, हां, हुज़ूर परवर। यही तो—यही तो मैं अर्ज़ कर रही थी। मगर हमारी ऐसी कमाई, अगर वह कुछ भी हो, तो क्या इन बदमाशों के लिए है ? हर्गिज़ नहीं। हुज़ूर, इसका कुछ बन्दोबस्त तो होना ही चाहिए, वरना मैं मारी जाऊंगी।

डिप्टी साहब कुछ सोचकर बोले—बेशक, अच्छा आप मेरे साथ सुपरिंटेंडेंट साहब के बंगले पर चलिए। उनकी जैसी राय होगी, वैसा बन्दोबस्त कर दिया जाएगा। वह बदमाश मुद्दत से पुलिस को झांसा दे रहा है। अच्छी बात है, देखा जाएगा। चलिए, आपकी गाड़ी तो बाहर है न ?

डिप्टी साहब कोट-पेंट से लैस होकर और हैट सिर पर रखकर सुपरिंटेंडेंट साहब के बंगले की तरफ चले। चपरासी ने फौरन खबर दी और साहब ने डिप्टी साहब को भीतर बुला लिया।

साहब—हलो मिस्टर सिन्हा, आज क्या खबर है ?

डिप्टी—हुज़ूर, और तो सब ठीक है, मगर आज वह मशहूर बदमाश नजफखां फंसनेवाला है।

साहब—अच्छा, अच्छा, वह कैसे फंसाया जाएगा ? क्या तरकीब सोची है आपने ?

डिप्टी साहब ने बड़नककी का सब किस्सा सुनाकर कहा—हुजूर, वह वेश्या भी गाड़ी में है, उसके मुंह से सब दास्तान सुन लीजिए।

साहब—हां, अच्छा उसे बुला लो।

बड़नककी ने भीतर प्रवेश करके साहब को फर्शी सलाम झुकाया।

साहब—(नीचे से ऊपर तक देखकर) तुम्हारा ही नाम बड़नककी है ?

बड़नककी—हुजूर, गरीब-परवर, इसी नाचीज़ को बड़नककी कहते हैं।

'क्या तुम्हारे यहां वह बदमाश डाकू कल आया था ?'

'जी हां हुज़ूर।'

'क्या मांगता था ?'

'हुज़ूर, दस हज़ार रुपये लूङ्गिया मसाणा के पीपल के नीचे आज रात को आठ बजे तक दबा देने के लिए कह गया है। अगर उस वक्त तक वे रुपये वहां नहीं पहुंचे तो वह ज़रूर-बिल-ज़रूर मेरा खून कर देगा। कल ही मेरे मकान में घुस जाएगा, ज़िन्दा न छोड़ेगा।'

'हां, ऐसा ?'

बड़नककी—हां हुज़ूर, गरीब-परवर !

साहब—अच्छा, डरने की कोई बात नहीं। वेल डिप्टी साहब, अभी पुलिस का पूरा दस्ता इसके मकान पर चुपचाप लगा दो और मैं कमांडिंग आफिसर अज-

मेर और ए० जी० जी० को लिखकर कुछ फौजी सिपाही भिजवाए देता हूं। पांच सौ की जमात काफी होगी, क्यों ?

डिप्टी—बेशक हुजूर, पांच सौ काफी है। मैं सब ठीक कर लूंगा।

साहब—मगर देखो, मकान पर घेरा उस वक्त डाला जाए, जबकि वह मकान में घुस जाए।

डिप्टी—जो हुक्म

साहब—वेल डिप्टी साहब, सलाम।

ढड्ढों के घर में आज बहार थी। कंवर साहेब की सगाई चढ़ रही थी। हाथी, घोड़े, रथ, मझोलियों का तांता लग रहा था, शहनाई बज रही थी। बड़नककी की तबीयत ठीक न थी, उसने बहुत-बहुत माफी मांगी थी। मगर उसकी अप्सरा वसंती महफिल में दिप रही थी। हीरों और मोतियों से खचाखच पेशबाज़ पहनकर वह अतुलनीय सुन्दरी दीख रही थी, फिर भी वेश्या की दृष्टि अभी उसमें नहीं पैदा हुई थी। वह इतनी भीड़ में संकोच के मारे मरी जा रही थी। कुछ गाने के बाद ज्योंही वह बैठने लगी, एक नौकर ने उसके कान में कुछ कहा। वसन्ती वहां से दूसरे कमरे में चली गई। कमरे में एक सुन्दर युवक अकेला बैठा था। उसने दौड़कर वसन्ती का आलिगन किया।

उसने गद्गद कण्ठ से कहा—वसन्ती, मैं नहीं जानता, तुम्हें मेरा यह व्यवहार पसन्द होगा या नहीं। सुना है, वेश्याओं को धन पाकर अपना शरीर चाहे भी जिसे अर्पण करने में ज़रा भी संकोच नहीं होता। पर उस तरह नहीं, मैं सच्चे दिल से तुमपर मुग्ध हूं। अगर मेरा वश होता तो मैं तुमसे ब्याह करता। पर क्या परमेश्वर के सम्मुख तुम मुझे पति समझ सकती हो ? ठहरो, मैं शपथ खाता हूं कि मैं ऐसा समझूंगा। मगर तुम, तुम कह दो। फिर मैं लोक-लाज की परवाह नहीं करूंगा।

वसन्ती विह्वल हो गई। इस एकाएक आक्रमण को वह सह गई। उसने मदभरी आंखों से एक बार युवक को देखा, फिर खेद और विषाद ने उसे अवनतमुखी बना दिया।

युवक ने उसे बैठाकर पूछा—वसन्ती, मैंने सुना है कि तुम वेश्या की पुत्री नहीं हो, क्या यह सच है ?

'कंवर साहब, मैं वेश्या हूं। आप दिल-बहलाव चाहे जिस तरह मेरे साथ कर

लें; मुझे उज्र नहीं। मेरा वेश्या-शरीर उज्र कर ही नहीं सकता, फिर आपके प्रति तो मन भी खिंचता है परन्तु कृपाकर प्रेम की बात न कहें। भगवान आपकी उम्र बढ़ावे, आपका विवाह अभी हुआ है। आप बड़े घर के नौनिहाल हैं। बहूजी देवी हैं, वे आपके लिए पुत्र-रत्न जनेंगी। आप मेरी जैसी अपवित्र नारी के लिए यह सब सौभाग्य छोड़ देंगे ? आप जैसा विवेकी...'

वसन्ती कह रही थी, युवक भौंचक सुन रहा था। वह सोच रहा था, यह वेश्या है या कोई महान देवी। उसने उसका हाथ पकड़कर कहा—वसन्ती, मैं अपना सन्देश कितनी ही बार भेज चुका हूं। आज मैंने मिलने का सुयोग पाया। तुम यदि मुझे वचन न दोगी तो मैं मर जाऊंगा। जल्दी करने को मैं नहीं कहता, मैं कल तुमसे उत्तर लेने को आऊंगा। ओह, अब तुम बाहर जाकर मेरे लिए सितार पर एक गत तो बजा देना। और देखो, कुछ और न समझकर, केवल यादगार के तौर पर ये तो तुम्हें लेनी पड़ेंगी।—यह कहकर युवक ने चार मोहरें उसके हाथ पर धर दीं और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही बाहर निकल गया।

वसन्ती अपने छोटे-से एकान्त कमरे में बैठी उस कोमल सुन्दर युवक का चिन्तन कर रही थी। कैसी सुन्दर दन्त पंक्ति, कैसा गौर वर्ण, कैसी स्वच्छ आंखें। हे परमेश्वर, इस पापी जीवन में यह रस देना भी तेरा काम है ! क्या सचमुच वे आएंगे ? उनकी विवाहिता पत्नी क्या उन्हें आने देगी ? हाय री अधम नारी जाति, क्या मैं 'पत्नी' शब्द की अधिकारिणी बन सकती हूं ? परन्तु जाति, लोकमत और धर्म-बन्धन की अटूट दीवारें कैसे सामने खड़ी हैं। खैर जाने दो। मैं अधम वेश्या होकर भी यदि समाज के सामने न सही, परमेश्वर के सामने उनकी पत्नी हो सकूं, वे मुझे प्यार कर सकें, अपना सकें, कभी न त्यागें, तो बहुत है, मेरे लिए बहुत है। इतना कहकर उसने वक्षःस्थल पर यत्न से छिपाई हुई वे चारों मोहरें निकालकर हाथ में लीं। उन्हें बार-बार चूमा और फिर वह उनको छिपाने के यत्न में एक बार कमरे के चारों ओर देख गई। उसने उन्हें पलंग के चारों पायों के नीचे छिपा दिया।

अभी वह यह सब काम करके निश्चिन्त भी न हुई थी कि सीढ़ियों पर पद-ध्वनि सुनकर चौंकी। उसके रक्त की एक-एक बूंद नाचने लगी। वह मन ही मन बोली, अभी से आ गए ? अभी तो आधे घण्टे का समय हुआ है। क्या उन्हें भी मेरे समान चैन नहीं पड़ता। ओह !—वह आनन्द से विह्वल हो गई।

परन्तु यह क्या ! उसने दृष्टि उठाकर अन्दर प्रवेश करते हुए आगन्तुक को

देखा। एक भीमकाय, बलिष्ठ अधेड़ पुरुष सामने खड़ा है। खून के समान नेत्र जल रहे हैं। घनी काली दाढ़ी के भीतर कुटिल ओष्ठ स्तब्ध दांतों से चिपक रहे हैं। भय से वसन्ती की चीख निकल गई। वह उठ खड़ी हुई और दीवार से चिपक गई।

आगन्तुक ने आगे बढ़कर कहा—डरो मत, मैं तुमसे प्रेम करने आया हूं, तकलीफ देने नहीं। बैठ जाओ, शराब की बोतल और गिलास आ रहे होंगे, मैं नीचे तुम्हारी लायक अम्मा से कह आया हूं। वह सितार उठा लो, एकाध गत बजाओ, एकाध चीज़ इस सुरीले गले से गाओ। मैं कुछ देर यहां तफरीह करूंगा, क्योंकि आज मेरी तबियत नासाज़ है। तुम्हारी अम्माजान ने मेरे साथ सलूक तो बुरा किया है, मगर उसका बदला उसीको दिया जाएगा। तुमको नहीं। तुम्हारा जैसा सलूक मेरे साथ होगा, वैसा मेरा तुम्हारे साथ होगा। उसे भी मैं माफ कर दूंगा क्योंकि उसने आध घण्टे में वादा पूरा करने को कहा है। आध घण्टा मैं तुम्हारी सोहबत में सर्फ करूंगा। तुम्हारे गाने-बजाने और रूप की तारीफ वह साला बनिये का बच्चा करता था, जिसे मैंने कल हलाल कर दिया है। देखता हूं, देखने में बुरी नहीं हो।

इतना कहकर वह दुर्दान्त डाकू एकाकी वसन्ती के सिर पर आ खड़ा हुआ और उसकी कमर में हाथ डालकर उसे अधर उठा लिया। इसके बाद धीरे से फर्श पर रखकर खिलखिलाकर कहने लगा—खुदा की कसम, तुम फूल के बराबर हलकी हो, नाज़ुकी तुम पर खत्म है, ओह ! तुम वाकई एक प्यारी चीज़ हो। लो यह कबूल फरमाओ।

इतना कहकर उसने जेब से मुट्ठी-भर अशर्फियां उसके ऊपर उंड़ेल दीं। वसंती को होश न था। मानो किसी विषधर काल सर्प ने उसे जकड़ लिया हो। वह बेंत की तरह कांपने लगी। उसके होंठ नीले पड़ गए। उसने अशर्फियां छुईं भी नहीं, वह कुछ बोली भी नहीं।

डाकू बैठ गया और घूर-घूरकर उसे देखने लगा। वसन्ती का भय कुछ कम हुआ। वह साहस बटोरकर बोली—मेरी तबियत इस वक्त खराब हो गई है, अगर आप मुझे माफ कर दें तो बड़ा अहसान हो। वैसे मैं भी इस वक्त हुजूर की खिदमत के लायक नहीं।

'बेवकूफ, तू सिर्फ मुझसे डर गई है। मगर मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि तेरे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया जाएगा। तुम्हारा फर्ज़ है तुम मुझे खुश करो।

तुम्हारा नजराना मैं पहले ही दे चुका हूं। तुम रण्डी हो या और कुछ ? समझ लो, मैं ज़्यादा लल्लो-चप्पो नहीं पसन्द करता। या तो गाओ, वरना मैं तुम्हारे टुकड़े कर दूंगा।' यह कहकर उसने तलवार म्यान से खींच ली। वसन्ती पीली पड़ गई। उसके मुंह से बात न निकली। वह सकते की हालत में डाकू का मुंह देखती रही।

डाकू ने तलवार धरती पर फेंककर चीते की तरह झपटकर और उसे उठाकर भरपूर ज़ोर से पलंग पर फेंक दिया। उसका इरादा पाशविक था, परन्तु इसी समय बहुत-से मनुष्यों का शोर सुनकर वह चौंका। उसने खिड़की का पर्दा उठाकर देखा—सैकड़ों पुलिस के और फौज के सिपाहियों ने मकान घेर रखा है। उसने दांत मिसमिसाकर कहा—उफ, दगा-दगा ! —इतना कहकर उसने सिंह की तरह हुंकार भरी। बिजली की तरह लपककर उसने बालिका के शरीर पर के आभूषण उतार लिए, इसके बाद वह आंधी की तरह कोठरी से बाहर निकल गया। ज़ीना भीतर से बंद किया। बड़नकको उसे देखकर थरथर कांप रही थी। मीरासी और नौकर दीवारों से चिपक रहे थे। उसने रस्सी से सबको जकड़ दिया। और मकान की तलाशी लेनी शुरू की। रुपया-पैसा-ज़ेवर जो मिला गांठ बांधी। सब सन्दूक तोड़ डाले। जड़ाऊ ज़ेवर और जवाहरात कब्ज़े में किए। बांध-बूंधकर वह छत पर चढ़ गया।

इसके बाद उसने तेज़ आवाज़ में डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट को लक्ष्य करके कहा—आदाबर्ज़ है डिप्टी साहब !

डिप्टी साहब—अब आप नीचे तशरीफ ले आइए। आदाव-कोर्निश सब यहीं हो जाएगा।

डाकू—आप ही आए हैं या हमारे साले साहब बेजबर (मेजर वेजवुड, पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट) भी हाज़िर हैं ?

'वे भी हैं जनाब ! अब आप ज़रा जल्दी इधर तशरीफ ले आइए। सभी लोग आपकी तवाज़े के लिए मुन्तज़िर खड़े हैं।'

'बहुत अच्छा, यह लीजिए', यह कहकर उसने एक बड़ा-सा टोकरा जो कूड़ा-कचरा, राख, टूटी चिमनी आदि से भरा छत पर धरा था, झपाक से उठाकर सुपरिण्टेण्डेण्ट के सिर पर पटक दिया।

सिपाही लपके, परन्तु नजफखां सुयोग पाकर दूसरी तरफ कूदकर नौ-दो ग्यारह हुआ।

डिप्टी साहब ने मकान में घुसकर देखा, बड़नकक़ी मकान में टुकड़े-टुकड़े हुई पड़ी है। खून में घर डूब रहा है। नौकर-चाकर-दाई आदि बंधे खड़े हैं और नजफखां का पता नहीं।

आज तक वह बेपता है।

बड़नकक़ी के कुछ श्रीमान मित्र अभी ज़िन्दा हैं। वे जब अपनी जवानी के उन रसीले गुप्त दिनों की याद करते हैं तो उनकी सफेद मूंछों में हास्य की रेखा दौड़ जाती है और जब वे लाखन कोठरी में सड़क के नुक्कड़ पर पहुंचते हैं, जहां बड़नकक़ी की वह रहस्यमयी हवेली थी, तब एक ठण्डी सांस छोड़ते हैं। नजफखां सुना गया, अजमेर में ही उसके बाद शान्त जीवन व्यतीत करता रहा और हाल ही में उसकी मृत्यु हुई। वह दरगाह शरीफ के पीछे एक गली में तस्बीह लिए चुपचाप पड़ा रहता था।

प्रतिशोध

वेश्या जैसे पापलिप्त व्यक्तियों के हृदय भी आघात से एकाएक बदल सकते हैं। 'प्रतिशोध' एक ऐसी ही कहानी है।

मैं रेलगाड़ी द्वारा यात्रा करने के समय अपने सहयोगियों से बहुत कम बोलता हूं। आसपास के प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शन से जब जी उचटता है तो कोई पुस्तक पढ़ने लगता हूं या आंखें मूंदकर सो जाता हूं। इसलिए जब कलकत्ता से दिल्ली के लिए चलने लगा तो अलमारी से कुछ अच्छे उपन्यास और दो-तीन मासिक पत्र हैण्डबेग में रख लिए, ताकि कल सवेरे पटना से आगे की यात्रा आरम्भ होने पर साहित्य-चर्चा में ही समय बिता दूंगा। परन्तु मेरी यह भविष्य-चिन्ता बिलकुल बेकार साबित हुई। क्योंकि पटना जंकशन पर गाड़ी के डिब्बे का द्वार खोलकर अन्दर पैर रखते ही पंडित मुरलीधर ने उच्च स्वर से 'स्वागतम् महाभाग' कहने के पश्चात् प्रश्न किया—क्यों, कहां चले ?

मैंने हाथ जोड़कर पंडितजी को प्रणाम करने के बाद कहा—मैं तो दिल्ली जा रहा हूं और आप ?

'मैं भी कानपुर होकर मथुरा जाऊंगा। यमद्वितीया के अवसर पर विश्राम-घाट पर स्नान होंगे। यहां एक मित्र से मिलने आया था। आप खूब मिले, आनन्द से यात्रा होगी।'

इसके बाद विस्तरा खोलकर उन्होंने खाली बेंच पर फैला दिया और इत-मीनान से बैठकर सूंघनी सूंघने लगे। तीर्थ-स्थानों का प्रसंग छिड़ा। पंडितजी ने बाबा विश्वनाथ की पुरी का वर्णन आरम्भ किया। काशी तीन लोक से न्यारी है। कहने को तो लोग प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं, शास्त्रों ने उसकी महिमा का भी बहुत बखान किया है। परन्तु काशी-सी चहल-पहल वहां कहां ? काशी को देख लिया तो समझ लो कि सारे भारतवर्ष की सैर हो गई ! क्यों आपकी क्या राय है ?

मैंने मुस्कराते हुए कहा—इसमें क्या सन्देह।

इसके बाद मथुरा तो आपने देखा ही होगा। कानपुर कैसा शहर है? लखनऊ के नवाबों ने भी खूब ऐश किए। भई, सच पूछो तो नवाबी का आनन्द जैसे वाजिदअलीशाह ने लूटा वैसा शायद ही किसी बादशाह या नवाब को नसीब हुआ हो। इसके बाद स्वराज्य कब मिलेगा, आन्दोलन का क्या हाल है? कलकत्ता में क्या हो रहा है? इत्यादि।

तात्पर्य यह कि पण्डितजी का प्रत्येक प्रश्न एक विस्तृत विवरण का मुहताज था। मैं अपनी जानकारी के अनुसार उन प्रश्नों का उत्तर देता रहा। बीच-बीच में जिरह भी होती रही और प्रतिवाद भी।

दिल्ली एक्सप्रेस अपनी पूरी चाल से जा रहा था। मैं प्रकृति की शोभा देखता और पण्डितजी के गूढ़ प्रश्नों का यथासाध्य उत्तर भी देता जाता था। पण्डितजी ने पटना का वर्णन आरम्भ किया। उसका ऐतिहासिक विवरण भी सुनाने लगे और एक से एक कठिन प्रश्न भी करते जाते थे। अन्त में उनकी बातों और प्रश्नों से ऊबकर मैंने हैण्डबेग खोलकर 'विशाल भारत' की एक प्रति निकाली और पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी का लिखा हुआ 'श्रद्धेय गणेशजी' शीर्षक लेख पढ़ने लगा। अमर शहीद की पवित्र स्मृति ने हृदय में एक विचित्र स्पन्दन पैदा कर दिया। चतुर्वेदीजी के सीधे-सादे शब्दों में, आडम्बरहीन भाषा में एक गम्भीर वेदना भरी हुई थी। पढ़ते-पढ़ते मेरी आंखें छलछला उठीं। इतने में पण्डितजी ने पास ही पड़ी हुई 'माधुरी' की प्रति खींच ली और द्विजश्याम की 'गंङ्ग' शीर्षक कविता उच्च स्वर से गा-गाकर पढ़ने लगे। हमारी गाड़ी मुगलसराय की ओर दौड़ रही थी। उसकी घड़घड़ाहट और पण्डितजी के पंचम स्वर ने एक विचित्र ध्वनि पैदा कर दी और दो यात्री जो पास की बेंचों पर मुंह छिपाए सो रहे थे, कुलबुलाने लगे। पहले एक वृद्धा ने रज़ाई से मुंह निकाला। इसके बाद दूसरी बेंच में दुशाला से मुंह निकालकर एक युवती ने चकित दृष्टि से पहले पण्डितजी की ओर फिर मेरी ओर देखा। महिला की दृष्टि में स्वाभाविकता थी। वह अंगड़ाई लेकर उठ बैठी और मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके बोली—बाबूजी, क्षमा कीजिएगा। क्या पटना का स्टेशन निकल गया?

मैंने उत्तर दिया—हां, बड़ी देर हुई।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने पण्डितजी की ओर देखकर प्रश्न किया—

अब चाय कहां मिलेगी ?

परन्तु जब पण्डितजी ने उसके प्रश्न का कुछ उत्तर देने के बदले भ्रू कुञ्चित करके उसकी ओर से अपना मुंह फेर लिया तो मैंने कहा—मुगलसराय आ गया है, वहां आपको चाय मिल जाएगी।

उसने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा—आप कहां जा रहे हैं ?

मैंने उत्तर दिया—दिल्ली।

इसके बाद और कई प्रश्न हुए। जैसे वहां आप क्या करते हैं? निवास-स्थान कहां है ? आपका शुभ नाम ? इत्यादि।

मैं बहुत थोड़े शब्दों में उसके प्रश्नों का उत्तर देता जा रहा था। इतने में गाड़ी आकर मुगलसराय के स्टेशन पर खड़ी हो गई। स्त्री ने एक हिन्दू चायवाले से एक कुल्हड़ चाय लेकर पी। इसके बाद एक सिगरेट जलाकर पीते-पीते बोली—पण्डितजी, आपका गाना तो बड़ा सुन्दर हो रहा था, परन्तु आपने बन्द क्यों कर दिया ? गाइए !

बेचारे पण्डितजी तो पहले से ही उसकी लापरवाही और बातचीत करने का ढंग देखकर नाक-भौं सिकोड़ बैठे थे। उसपर से गाने की फरमाइश सुनी तो और भी अप्रसन्न हुए और घृणासूचक दृष्टि से उसकी ओर देखकर मुंह फेर लिया।

पण्डितजी का यह भाव देखकर बड़ी मुश्किल से मुझे अपनी हंसी रोकनी पड़ी। थोड़ी देर के बाद मैंने पण्डितजी से पूछा—आखिर आप नाराज़ क्यों हो रहे हैं ?

उन्होंने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—चुप भी रहो। एक भ्रष्टा, कुलटा से बातें करते तुम्हें लज्जा भी नहीं आती ! राम-राम !

पण्डितजी की इस बात पर मैं तो मुस्कराकर चुप हो गया। परन्तु बेचारी रमणी कुछ खिन्न-सी हो गई और वेदना-भरे स्वर में बोली—हां पण्डितजी, मैं एक कुलटा स्त्री हूं, रण्डी हूं। भगवान ने मुझे इस अवस्था में डाल दिया है।

अन्तिम बात कहते-कहते उसकी आंखों से दो बूंद आंसू निकलकर उसके गुलाबी गालों पर लुढ़क गए।

मेरे लिए वह दृश्य बड़ा ही मर्मवेधी था, परन्तु पण्डितजी ने घृणा-व्यंजक हंसी के साथ मुझसे कहा—ओहो, देखा यह ढोंग !

अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने किंचित् भर्त्सना के साथ पण्डितजी से कहा—

जाने दीजिए, क्यों बेचारी को तंग कर रहे हैं। कोई अच्छा हो या बुरा, आपका क्या लेता है ?

इसके बाद स्त्री को आश्वासन देता हुआ मैं बोला—आप नाहक दुखी हो रही हैं। यह तो संसार है। कोई किसीको अच्छा समझता है और कोई बुरा। वास्तविक अच्छाई या बुराई की परख करनेवाले यहां बहुत थोड़े हैं।

उसने एक दीर्घ निःश्वास के बाद कहा—वास्तव में मैं एक भ्रष्टा स्त्री हूं और आबरू बेचकर पेट पालती हूं। परन्तु मैंने क्यों इस निकृष्ट पथ का आश्रय लिया है, यह पूछनेवाला इस संसार में कोई नहीं है, मुझे यही दुःख है।

पण्डितजी एक विजयी वीर की तरह उसकी बातें सुनकर मुस्करा रहे थे। परन्तु मैंने उसके कष्ट का अनुभव किया और इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर देने की इच्छा से बोला—आप कितनी ही पथ-भ्रष्ट क्यों न हों, परन्तु आपके अन्दर एक पवित्र हृदय है।

'और नसों में रक्त भी !'

उसने उत्तेजित स्वर से मेरे अधूरे वाक्य को पूरा किया। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा था और गालों की लालिमा स्वाभाविकता की सीमा का उल्लंघन कर रही थी।

उसने एक बार तीव्र दृष्टि से पण्डितजी की ओर देखकर कहा—मुझे भ्रष्टा कहनेवाले भ्रष्ट हैं, नीच हैं। अपने को पवित्रता और भद्रता के बाह्याडम्बर में छिपानेवाले भ्रष्ट हैं। धर्म-ढोंगी, दूसरों को पवित्रता का उपदेश देनेवाले सब नीच हैं। सारा समाज नीच है। मैंने समाज को, विशेषकर हिन्दू समाज को, जहां पवित्रता की डींग मारनेवालों की भरमार है, अच्छी तरह देख लिया है। सारे समाज में 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' भरे पड़े हैं। वे दूसरे की आंखों की फूली देखते हैं, परन्तु अपनी आंखों का शहतीर नहीं देखते। यहां पण्डित के वेष में, धर्म-ध्वजी के वेष में, साधु और महात्मा के वेष में, हजारों नहीं, लाखों पापी, पाखण्डी मौजूद हैं। वे लोगों की आंखों में धूल झोंककर दुराचार करते हैं और मैं प्रत्यक्ष······

बोलते-बोलते उसकी आवाज़ लड़खड़ाने लगी, आंखें लाल हो गईं और शरीर थरथराने लगा। मुझे भय हुआ कि कहीं उसे गश न आ जाए। मैंने उसके साथ की बुढ़िया से कहा—देखती क्या हो, एक गिलास पानी पिलाकर इन्हें लिटा दो। इनका मस्तिष्क कुछ गरम हो गया है। अब अधिक बोलेंगी तो बेहोश हो

जाएंगी।

बुढ़िया ने मेरे आदेश का अक्षरश: पालन किया। पण्डितजी सन्नाटे में आ-कर मेरा मुंह ताक रहे थे। थोड़ी देर के बाद बोले—अगले स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हो तो हम लोगों को दूसरे डिब्बे में चले जाना चाहिए। इस स्त्री का मस्तिष्क कुछ विकृत मालूम पड़ता है। सम्भव है, कोई उत्पात कर बैठे।

मैंने पण्डितजी की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। मन में विचित्र प्रकार की भाव-तरंगें उठ रही थीं। हिन्दू-समाज पर रमणी ने जो आक्षेप किए थे, वे मानो कानों में गूंज रहे थे। मैं अपनी सामाजिक अवस्था पर विचार करने लगा। मेरी दृढ़ धारणा हो गई कि यह रमणी समाज की सताई हुई है। किसी सामा-जिक रूढ़ि ने ही इसे वेश्या-जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया है। यह कैसे वेश्या बनी, पहले कौन थी, यह जानने के लिए मैं उत्सुक होने लगा। गाड़ी वेत-हाशा भागी जा रही थी और मेरे मन-महाराज भी अपने खयाली घोड़ों पर चढ़े सरपट दौड़ रहे थे। अगला स्टेशन आया और निकल भी गया।

एक घण्टा योंही गुज़र गया। रमणी फिर उठ बैठी। उसके चेहरे पर स्वाभा-विक शान्ति विराज रही थी। भीषण तूफान के बाद मानो प्रकृति ने निस्तब्ध भाव धारण कर लिया हो। मैंने उससे पूछा—कहिए, आपकी तबियत अब कैसी है ?

उसने मुस्कराकर उत्तर दिया—मैं बीमार थोड़े ही हूं। मैं एक अत्याचार-पीड़िता स्त्री हूं। मेरी पवित्र भावना निर्दयतापूर्वक कुचल डाली गई है। मेरा हृदय पका फोड़ा बन गया है, इसीसे ज़रा भी ठेस लगते ही वह फूट पड़ता है।

मैंने संकुचित भाव से कहा—मुझे क्षमा कीजिएगा। आपका परिचय जानने के लिए मेरा मन बहुत उत्सुक हो रहा है। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो······

उसने बीच में ही बात काटकर कहा—मैं एक साधारण वेश्या हूं। बस यही मेरा परिचय है।

मैंने कहा—परिचय से मेरा मतलब आपके वर्तमान जीवन से पूर्व की कथा से था। परन्तु मैं आपको इसके लिए विशेष कष्ट नहीं देना चाहता।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—मेरी राम-कहानी सुनना चाहते हैं ? अच्छा ठहरिए, ज़रा हाथ-मुंह धोकर खा लूं तो सुनाती हूं। परन्तु मेरी पापपूर्ण राम-कहानी में कोई रोचकता न होगी।

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया।

वह कहने लगी—मैं कौन हूं, किसकी लड़की हूं और कहां की रहनेवाली हूं, यह न बताऊंगी। क्योंकि अपने पूज्य पिता-माता के नाम को कलंकित करना मुझे स्वीकार नहीं है और न उनका नाम-धाम जानने के लिए आपको ही कोई उत्सुकता होनी चाहिए।

मैंने कहा—अच्छी बात है, आप जो कुछ सुनाएंगी, वही काफी होगा। उससे अधिक कुछ जानने की मैं बिलकुल चेष्टा न करूंगा।

वह कहने लगी :

अच्छा तो सुनिए! मेरे पिता संयुक्त प्रान्त के एक शहर के प्रतिष्ठित हिन्दू थे। मैं और मेरी बड़ी बहिन के सिवा उनके और कोई सन्तान न थी। इसलिए वे हमें पुत्र की तरह मानते थे। यथासाध्य उन्होंने हमें कुछ पढ़ाया-लिखाया भी था। मेरी माता का देहान्त मेरे बचपन में ही हो गया था। घर में पिताजी की एक वृद्धा चाची थी, वही हम दोनों बहिनों की देख-रेख किया करती थीं। साथ ही पिताजी को दूसरा विवाह कर लेने का परामर्श दिया करती थीं। पहले तो पिताजी इसके लिए राज़ी नहीं होते थे, परन्तु अन्त में अपने चाची तथा अन्यान्य शुभचिन्तकों के बहुत समझाने-बुझाने पर राज़ी हो गए।

विवाह हो गया, हमारी सौतेली मां घर आ गईं। साथ ही हम लोगों के लिए दुर्भाग्य भी लेती आईं। क्योंकि उनके आने के कुछ दिनों बाद से ही पिताजी के स्वभाव में विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगा। अब वे पहले की तरह हम लोगों से स्नेह नहीं करते थे। हम लोगों के भरण-पोषण का भार भी सौतेली मां पर छोड़कर निश्चिन्त हो गए। दादी अर्थात् पिताजी की वृद्धा चाची की भी अब कुछ नहीं चलती थी। हम सभी एक तरह से माताजी के गुलाम बन गए। उनकी आज्ञाओं का पालन करना और उनकी जली-कटी बातें बर्दाश्त करना हम लोगों का परम कर्तव्य हो गया। पिताजी उनके विरुद्ध एक शब्द भी सुनना नहीं चाहते थे। सुनकर भी कुछ प्रतिकार करने की शक्ति उनमें न थी। क्योंकि हमारी नवीन मां समय-समय पर उन्हें भी फटकार दिया करती थीं।

अन्त में बहिन का विवाह हो गया। और वे अपनी ससुराल चली गईं। बुढ़िया दादी का देहान्त हो गया। उस समय मेरी उम्र चौदह-पन्द्रह साल की

थी। माता-पिता में कभी-कभी मेरे विवाह की भी चर्चा होने लगी। बहुधा इस विषय को लेकर दोनों में घण्टों तर्क-वितर्क भी हो जाता था। मैंने छिपकर कई बार उनकी बातें सुनने का प्रयत्न भी किया, पर कुछ समझ न सकी। अन्त में पता चला कि यह झगड़ा रुपये-पैसे को लेकर हुआ करता था। क्योंकि माताजी मेरे विवाह में अधिक रुपये खर्च करने का विरोध किया करती थीं और पिताजी को मेरे लिए ऐसा वर ढूंढ़ने का परामर्श देती थीं, जो साधारण स्थिति का हो और थोड़े तिलक-दहेज़ पर ही विवाह करने को राज़ी हो जाए।

मेरी सौतेली माता के नैहर का एक अधेड़ मनुष्य अक्सर हमारे घर आया करता था। माताजी उसे अपना भाई बताया करती थीं और न जाने क्यों उससे उनकी खूब बनती थी। उसके आने पर बड़ी तत्परता से उसकी आवभगत किया करती थीं। माताजी का धर्म-भाई होने के कारण मैं भी उसके सामने होती थी। सुनने में आया कि वह पुलिस का दारोगा है और बड़ा मालदार आदमी है।

एक दिन दाई की ज़बानी मालूम हुआ कि माताजी उसीके साथ मेरा विवाह कर देना चाहती हैं। पहले तो मुझे इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ।

परन्तु बाद में मालूम हुआ कि खबर सोलह आने सच थी। यद्यपि पिताजी इस बात पर राज़ी न थे, परन्तु माताजी के आदेश के विरुद्ध कुछ करना भी उनके लिए सम्भव न था।

मैंने यह हाल सुना तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। क्योंकि मैं उसे फूटी आंख भी नहीं देखना चाहती थी। उसकी सूरत-शक्ल भी अच्छी न थी। चेहरे पर और बातचीत में उद्दण्डता भरी थी। परन्तु माताजी मेरे सामने उसके रूप-रंग और विद्या-बुद्धि की बड़ी प्रशंसा किया करती थी। मानो मेरे लिए उससे बढ़कर उपयुक्त वर संसार में दूसरा कोई था ही नहीं।

एक दिन उसी दाई की ज़बानी मालूम हुआ कि दारोगाजी के साथ मेरे विवाह की बातचीत पक्की हो गई। मेरे सिर पर मानो वज्रपात हो गया। कलेजा धड़कने लगा। मैं घण्टों तक छिपकर रोती रही। अन्त में कई दिनों के बाद मैंने अपनी बहिन को एक पत्र लिखा। मुझे विश्वास था कि बहिन कदापि इस विवाह का समर्थन न करेगी। परन्तु मालूम नहीं, वह पत्र मेरी बहिन को मिला या नहीं क्योंकि उसका कोई उत्तर नहीं आया। परन्तु इस घटना के बाद से मेरी सौतेली मां मुझसे तनी-सी रहने लगी और समय-समय पर ताने देने लगी।

इतने में एक दिन सुना कि विवाह का दिन निर्धारित हो चुका है और शीघ्र ही तिलक भेजा जानेवाला है। अब तो मेरी बेचैनी और भी बढ़ गई। यहां तक कि चिन्ता के मारे मैंने कई दिन तक भोजन नहीं किया। दिन-रात एक कोठरी में पड़ी-पड़ी रोया करती थी। पिताजी को शायद यह मालूम हो गया था कि मैं इस विवाह से प्रसन्न नहीं हूं। क्योंकि एक दिन उनमें और माताजी में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। यहां तक कि अन्त में दोनों में झगड़ा भी हो गया। माता रूठ बैठीं और बार-बार नैहर चली जाने के लिए धमकी देने लगीं। परन्तु फिर सारा झगड़ा तय हो गया और सुनने में आया कि पिता को कोई कठिन रोग हो गया है, इसलिए दवा कराने के लिए कलकत्ता जानेवाले हैं। मुझे विश्वास हो गया कि विवाह कम से कम इस साल के लिए तो टल गया। परन्तु पिताजी के जाने के तीसरे रोज़ ही हमारी सौतेली मां के एक भाई आए और उन्होंने पुरोहितजी के मार्फत तिलक भेजवा दिया। आठ दिन के बाद ही विवाह का दिन निर्धारित हो गया।

मेरी तमाम आशा-भरोसा पर पानी फिर गया। रहस्य कुछ समझ में नहीं आया। पिताजी के हठात् रोगग्रस्त होकर चले जाने पर भी बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे लिए रोने के सिवा और कोई उपाय नहीं रह गया। विवाह की तैयारी खूब जल्दी-जल्दी होने लगी। इधर माताजी मेरे ऊपर सतर्क दृष्टि भी रखने लगीं। कोई मेरे पास नहीं आने पाता था। विवाह की नेवता भी शायद किसी रिश्तेदार को नहीं दिया गया। गांव में प्रचार कर दिया गया कि पिताजी की बीमारी के कारण विवाह में उत्सव आदि नहीं होगा। वर महोदय केवल पुरोहित और नाई के साथ आकर बिना आडम्बर के विवाह करके बहू को ले जाएंगे। ये बातें सुनकर मेरी चिन्ताग्नि और भी धधक उठी। दिन-रात रोते-रोते मेरी आंखें सूज गईं। माताजी ने पिता की बीमारी का जिक्र करके मुझे बहुत समझाया-बुझाया। उनके भाई ने भी मुझे समझाने-बुझाने और वर महोदय के धन-ऐश्वर्य का बखान करने में कोई बात उठा न रखी। परन्तु चिन्ता बढ़ती ही गई। जी में आता था कि आत्महत्या कर लूं। परन्तु माताजी सदैव सतर्क रहती थीं, अन्त में हल्दी-तेल चढ़ने का दिन आया। आंगन में मंगल-घट स्थापित हुआ। मैं ज़बर्दस्ती घसीटकर वहां लाई गई। अन्यान्य कृत्यों के बाद जब नाइन हल्दी-तेल लेकर आगे आई, मैंने उसके हाथ से पात्र लेकर दूर फेंक दिया। माताजी इसपर बहुत नाराज़ हुईं, और बलपूर्वक

मुझे गिराकर हल्दी-तेल चढ़ाने की रस्म अदा की गई। इसी तरह एक दिन विवाह की रस्म भी अदा हो गई। मैंने 'गौर गनेश' को तोड़ डाला, पैरों की ठोकर से मंगल-घट फोड़ दिया और जब वर महोदय सिन्दूर-दान करने आए तो उन्हें ऐसा धक्का दिया कि बेचारे चारों खाने चित ज़मीन पर भहरा पड़े। जब मैं किसी तरह काबू में न आई, तो मेरी सौतेली मां मेरे हाथ-पैर बांधकर मुझे एक कोठरी में ढ़केलकर किवाड़ बन्द करती हुई बोलीं—अब रोओ चाहे गाओ, जो होना था, वह हो गया।

मैं उस समय क्रोध, चिन्ता और ग्लानि से अधमरी-सी हो रही थी। कई दिनों तक भोजन आदि न करने के कारण मेरा शरीर अवसन्न हो गया था। मैं थोड़ी देर के बाद बेहोश हो गई। जब होश हुआ तब देखा बन्धन खुले हुए हैं।

घर में दिया जल रहा है और वर महोदय दरवाज़े की सिटकिनी बन्द कर रहे हैं। मैं देखते ही बड़े ज़ोरों से चीख उठी और वहां से निकल भागने के लिए दरवाज़े की ओर लपकी, परन्तु उन्होंने बीच में मुझे पकड़कर ज़बर्दस्ती घसीटते हुए ले जाकर पलंग पर लिटा दिया। मैं बहुतेरा चीखी-चिल्लाई, अपने आबरू की रक्षा के लिए कई जगह उन्हें दांतों से काट डाला। इस हाथा-पाई में मुझे भी चोटें आईं; परन्तु मैंने उनकी मनोकामना पूरी न होने दी। इसके बाद उन्होंने माताजी को बुलाया, मैं उनके पैरों पर गिर पड़ी और बड़ी आरज़ू-मिन्नत की कि मुझे यहां से निकल जाने दो, परन्तु उन्होंने एक न सुनी, मैं फिर बलपूर्वक ज़मीन पर गिरा दी गई और मेरे हाथ-पैर रस्सी से बांध दिए गए। माताजी ने मेरे मुंह में कपड़ा ठूंस दिया और मुझे वहीं छोड़ कमरे से बाहर चली गईं।

इसके बाद क्या हुआ, उसका वर्णन करना मेरी जैसी एक वेश्या के लिए भी सम्भव नहीं है।

यह कहते-कहते फिर उसका चेहरा तमतमा उठा। आंखों से मानो क्रोध की चिनगारियां निकलने लगीं। बेचारे पण्डितजी उसकी यह हालत देखकर सहम गए। मैं भी बड़े पशोपेश में पड़ गया और बुढ़िया से फिर एक गिलास पानी देने का इशारा करके बोला—बस, अब रहने दीजिए। फिर कभी आपकी कहानी सुन लूंगा। इस समय ज़रा-सा लेट जाइए।

उसने एक लम्बी सांस खींचकर उत्तर दिया—आप घबराइए नहीं, मेरी तबियत ठीक है।

इसके बाद उसने फिर एक पान खाया और मेरी ओर मुंह करके कहने लगी—जब आपने छेड़ा है तो पूरी कहानी सुनाकर ही दम लूंगी। इससे अनुताप की जो भीषण ज्वाला मेरे अन्दर धधक रही है, कुछ शान्त होगी।

मैंने भी एक ठण्डी सांस ली और एक सिगरेट जलाकर अबला की करुण कहानी सुनने को तैयार हो गया।

वह कहने लगी—उसके बाद मुझपर क्या बीती, मुझे मालूम नहीं क्योंकि मैं बेहोश थी और उसी दशा में छोड़ दी गई। सवेरे दरवाज़ा खुलने की आहट पाकर आंखें खुलीं तो देखा कि आगे-आगे माताजी और पीछे दारोगाजी कमरे में प्रवेश कर रहे हैं।

में कपड़े संभालकर उठ बैठी। माताजी मेरे पास बैठकर मुझे समझाने लगीं। दारोगाजी विजयी वीर की तरह बैठे मुस्करा रहे थे। उनकी ओर दृष्टि पड़ते ही मेरा सारा शरीर क्रोध से कांप गया। पास ही एक कांसे का लोटा पड़ा था, मैंने उसे उठाकर उनके मूंड़ पर दे मारा। सिर फूट गया और खून बहने लगा। इसके बाद वे उठकर वहां से चले गए और तब से आज तक मैंने उनकी सूरत नहीं देखी।

गाड़ी कानपुर के स्टेशन पर आकर ठहर गई। मुझे यहां उतरकर अपने एक मित्र से मिलना था। पण्डितजी भी कानपुर देखना चाहते थे। मैंने उठकर बिस्तर समेटते हुए रमणी से कहा—क्षमा कीजिएगा, मैंने आपको बड़ी तकलीफ दी। साथ ही आपकी पूरी कहानी भी न सुन सका।

इतने में पण्डितजी बोल उठे—इन्हें भी तो दिल्ली ही जाना है, अगर कोई क्षति न हो तो हम लोगों के साथ उतर पड़ें। कल फिर साथ ही चले चलेंगे।

मैंने कहा—प्रस्ताव तो आपका ठीक है, बशर्ते कि एक रोज़ यहां ठहर जाने में इनका कोई हर्ज न हो।

रमणी ने कहा—हर्ज क्या है। एक दिन ठहरकर ज़रा कानपुर भी देख लूंगी।—यह कहकर उसने भी अपनी संगिनी बुढ़िया को बिस्तर आदि उठाने का आदेश प्रदान किया।

दूसरे दिन गाड़ी पर सवार होकर हम लोग एकसाथ ही दिल्ली के लिए रवाना हुए। कुछ आगे चलकर मेरे अनुरोध करने पर उसने फिर अपनी राम-

कहानी आरम्भ की :

विवाह के पन्द्रहवें दिन पिताजी कलकत्ता से वापस आ गए। माताजी ने और शायद दारोगाजी ने भी उन्हें सब हाल पहले ही लिख दिया था। रात को उनसे और माताजी से बड़ी कहा-सुनी हुई। उन लोगों की बातचीत से यह भी मालूम हुआ कि दारोगाजी ने मुझे सदा के लिए परित्याग कर दिया है और मेरे भरण-पोषण के लिए दस रुपये मासिक देने को तैयार हैं। मैंने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया कि किसी तरह उस पशु से पिण्ड तो छूटा। परन्तु पिताजी को इससे बड़ा दुःख हुआ। वे उसी दिन से अन्न-जल त्यागकर खाट पर पड़े तो फिर नहीं उठे। कुछ लोगों का अनुमान है, उन्होंने ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली।

अस्तु, पिताजी के मरने पर माताजी अपने वैधव्य के दिन काटने के लिए अपने नैहर चली गईं। मुझे भी अपने साथ ले जाना चाहती थीं; परन्तु मैंने इन्कार कर दिया और एक दाई को साथ लेकर अपनी बहिन के यहां चली आई। बहिन ने सारा हाल सुना तो छाती पीटकर ज़मीन पर गिर गई। परन्तु मुझे पिताजी की मृत्यु के सिवा और किसी बात का अफसोस न था। बस, दिन-रात यही सोचा करती थी कि किस तरह दारोगाजी से अपने अपमान का बदला लूं। कुछ दिनों के बाद ही एक सुयोग मिला। मेरी बहिन का देवर मुझे बड़ी कुत्सित दृष्टि से देखा करता था। पहले तो मैं उससे घृणा करती थी और बहुत कम बोलती थी, परन्तु अन्त में मैंने उसीको बलिदान का बकरा बनाकर दारोगाजी से अपने अपमान का बदला लेने का विचार किया और धीरे-धीरे उससे घनिष्ठता बढ़ाने लगी। आखिर मैंने एक दिन उससे साफ-साफ कह दिया कि अगर तुम दारोगाजी का खून कर डालो तो जो कुछ तुम कहोगे, मैं करने को तैयार हूं। वह अनायास ही राज़ी हो गया। परन्तु अन्त में धोखा देकर निकल गया। साथ ही धीरे-धीरे यह बात सारे मुहल्ले में फैल गई कि बहिन के देवर के साथ मेरा अवैध सम्बन्ध है। एक दिन बहिन ने मुझे एकान्त में ले जाकर बहुत-कुछ बुरा-भला कहा और आगे के लिए सावधान भी कर दिया। मैंने उसे सब सच्ची बातें बता दीं और साथ ही यह भी बता दिया कि केवल दारोगाजी से अपने अपमान का बदला लेना ही मेरा इस कुत्सित और अपवित्र जीवन का उद्देश्य है, इसीलिए मैं जीवित हूं : अन्यथा अब तक आत्महत्या कर लेती।

बहिन ने मुझे बहुत समझाया और बदला लेने का भार ईश्वर को सौंपकर

विधवाओं की तरह पवित्र जीवन व्यतीत करने का परामर्श दिया। परन्तु मेरी प्रतिज्ञा अटल थी। दिन-रात मैं यही सोचा करती थी कि किस तरह पापी दारोगा से बदला लिया जाए। आखिर, एक दिन एक छोकरा मुझे एक पत्र दे गया। पत्र मुहल्ले के एक युवक ने लिखा था, जो कभी-कभी मेरी बहिन के घर आया करता था। उसने लिखा था कि अगर तुम मेरी होकर रहो तो मैं दारोगाजी से तुम्हारे अपमान का बदला ले सकता हूं। मैं फौरन राज़ी हो गई और एक दिन सुयोग पाकर उसके साथ चल निकली। उसने शहर से दूर एक गांव में मुझे ले जाकर रखा। चार-पांच महीने तक हम दोनों पति-पत्नी की तरह रहे। वह बराबर मुझे भरोसा देता रहा, मैं भी उसके विश्वास पर थी और दारोगा की मृत्यु-कामना किया करती थी। परन्तु ईश्वर को मेरी छीछालेदर ही मंजूर थी।

फलतः इस दूसरे युवक ने भी मुझे धोखा दिया और एक दिन बिना कुछ कहे-सुने न जाने कहां गायब हो गया। हाय ! अब मैं दीन-दुनिया कहीं की न रही। एक बार फिर बहिन की शरण में जाने का विचार किया, परन्तु साहस न हुआ। इसी उधेड़-बुन में कई दिन बीत गए।

मेरे पड़ोस में एक बुढ़िया रहती थी वह कभी-कभी मेरे पास आया करती थी और घण्टों बैठकर इधर-उधर की बातें किया करती थी। उसने युवक के धोखा देकर भाग जाने का समाचार सुना तो बड़ी सहानुभूति प्रकट की और फिर आश्वासन देकर बोली कि तुम्हें चिन्ता किस बात की है। भगवान ने तुम्हें रूप और जवानी दी है। तुम चाहो तो, खुद दस आदमियों को खिला सकती हो। पहले तो उसकी बात मेरी समझ में न आई। परन्तु अन्त में मेरे प्रश्न करने पर उसने साफ-साफ शब्दों में मुझे वेश्यावृत्ति करने की सलाह दी और साथ ही इस सम्बन्ध में मेरी सहायता करने का भी वचन दिया। यद्यपि मुझे पहले इस काम में बड़ी हिचकिचाहट मालूम हुई; परन्तु बुढ़िया ने मुझे समझा दिया कि इसके सिवा और कोई पथ नहीं है। अन्य उपाय न देखकर, मैं राज़ी हो ही गई।

शहर में उपयुक्त स्थान पर बुढ़िया ने किराये पर एक मकान ले दिया और आवश्यक सामान अपने पास दे दिया। मेरा रोज़गार चलने लगा और बुढ़िया भी मेरी अभिभाविका बनकर मेरे साथ ही रहने लगी। एक उस्तादजी को बुलाकर उसने मुझे गाने और नाचने की भी तालीम दिलाई।

बस बाबू जी, यही मेरी संक्षिप्त राम-कहानी है और यही वह बुढ़िया है। अब

स्वयं विचार कीजिए कि मैं पतिता हूं या मुझे पतित बनानेवाले पतित हैं ?

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। चित्त ग्लानि से भर गया था। कुछ पढ़ने की चेष्टा की परन्तु तबियत नहीं लगी।

शाम को दिल्ली स्टेशन पर उतरकर उससे विदा होने के समय मैंने उसका पता नोटकर लिया और फिर कभी मिलने का वादा करके उसे पवित्र जीवन व्यतीत करने का परामर्श दिया। पण्डितजी आगरा होकर पहले ही मथुरा चले गए थे।

इस बात को बहुत दिन बीत चुके थे। मैं दिल्ली से कलकत्ता लौट आया था। रविवार का दिन था और मई का महीना ; सख्त गरमी पड़ रही थी। शाम को भांग-बूटी छानकर हम लोग किले के मैदान की ओर टहलने जा रहे थे। रास्ते में एक पुराने मित्र मिल गए। जब मैं बनारस रहता था तो इनसे बड़ी घनिष्ठता थी।

कुशल-प्रश्न तथा अन्यान्य बातों के बाद पण्डित मुरलीधर का ज़िक्र आया तो आश्चर्य से बोल उठे—अरे तुम्हें मालूम नहीं ? वे तो एक खून के मामले में गिर-फ्तार हैं।

मैंने आश्चर्य से पूछा—खून के मामले में ?

वे बोले—हां भई, उन्होंने पुलिस के दारोगा को मार डाला है।

मैंने कहा—क्या बक रहे हो ? कहां पं० मुरलीधर और कहां दारोगा का खून।

उन्होंने कहा—बक नहीं रहा हूं, बिलकुल सच्ची बात बता रहा हूं।

'तो क्या किसी राजनीतिक उद्देश्य से पण्डितजी ने दारोगा को मार डाला है ?

'नहीं जी, राजनीति से उनका क्या वास्ता।'

'तो आखिर बेचारे दारोगा ने उनका बिगाड़ा ही क्या था ?'

'उनका नहीं, बल्कि किसी और का ही बिगाड़ा था।'

'अच्छा, तो अब पूरी कथा सुनाओ।'

—सुना तो रहा हूं, परन्तु तुम सुनते कहां हो ? बात यह है कि गत यमद्वितीया के अवसर पर पण्डितजी मथुरा जा रहे थे। रास्ते में एक वेश्या से मुलाकात हो गई, जो गाड़ी के उसी डिब्बे में बैठी थी। बातचीत के सिलसिले में उसने अपनी आत्मकथा सुनाना आरम्भ किया, जिससे मालूम हुआ कि वह कोई साधारण वेश्या नहीं, वरन किसी उच्चवंश की लड़की थी। दारोगाजी ने ढलती उम्र में ज़बर्दस्ती

उससे विवाह कर लिया था। इसलिए पहली ही रात को पति-पत्नी में कुछ ऐसी अनबन हो गई कि दारोगाजी को सदा के लिए परित्याग कर देना पड़ा। परन्तु पत्नी ने दारोगाजी से अपने सतीत्वापहरण का बदला लेने की ठान ली। यह बदला लेने की धुन यहां तक सिर पर सवार हो गई कि उसीके लिए अन्त में उसे वेश्या बन जाना पड़ा। कई युवकों से इसी शर्त पर उसने दुराचार भी कराया। पण्डित मुरलीधर ने यह सारी कहानी सुनी तो एकदम आपे से बाहर हो गए। मथुरा से दिल्ली चले गए और वहां उसी वेश्या के पास ठहरकर उसके पति का पता लगाया। इसके बाद किसी तरह उक्त दारोगा के पास पहुंचे और एक दिन मौका देखकर उसके पेट में छुरी घुसेड़ दी।

पण्डितजी ने अदालत के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है और बड़ी प्रसन्नता से फांसी पर चढ़ जाने को तैयार हैं।

मैंने कहा—यह रेलगाड़ीवाली घटना तो मेरे सामने की है। उस समय मैं दिल्ली जा रहा था और पण्डितजी यमद्वितीया नहाने मथुरा जा रहे थे। बल्कि सच पूछो तो मेरे ही अनुरोध से उस वेश्या ने अपनी राम-कहानी हम लोगों को सुनाई थी। खैर, तो क्या उस स्त्री को भी यह सब मालूम है?

'हां, वह भी पण्डितजी के साथ ही दिल्ली से आई थी। पहले उसने दारोगाजी को देखकर अच्छी तरह पहचान लिया तब यह घटना हुई। पण्डित मुरलीधर ने तो अपने बयान में उसके आने का कोई ज़िक्र नहीं किया था। परन्तु इनके गिरफ्तार हो जाने पर वह खुद कोतवाली में आई और बयान दिया कि यह खून मैंने कराया है। इसकी सारी ज़िम्मेदारी मुझपर है।

'पुलिस ने उसे गिरफ्तार करके हिरासत में ले लिया। परन्तु वहां जाने से पहले उसने ज़हर खा लिया था, इसलिए उसी रात को उसका देहान्त हो गया।'

मैंने कहा—पण्डित मुरलीधर तो विचित्र मनुष्य निकले। उनके मुकदमे के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या अनुमान है?

उन्होंने कहा—उन्हें फांसी की सज़ा होगी।

वेश्या

वेश्या भी आखिर नारी है; फिर गुलबदन क्यों नारी के सहज गुणों के प्रतिकूल व्यवहार करती है, यह प्रश्न लेखक ने पाठकों पर छोड़ दिया है। इसपर आप जितना अधिक विचार करेंगे उतना ही आप वेश्या को निर्दोष पाएंगे।

शिमला-शैल की बहार जिसने आंखों से नहीं देखी उससे हम अब क्या कहें? बीसवीं शताब्दी का यन्त्रबद्ध भौतिक बल प्रतापी यूरोप के श्वेत दर्प के सम्मुख आज्ञाकारी कुत्ते की तरह दुम हिलाता है। फिर शिमला-शैल पृथ्वी के एकमात्र अवशिष्ट साम्राज्य की नखरेदार राजधानी है, जहां बैठकर दूध के समान सफेद और रमणी के समान चिकने सफाचट मुखवाले—परन्तु बहादुर साहब लोग—तुषार और शीतल वायु के झोंकों का अखण्ड आनन्द लेते हुए, लूओं में झुलसते हुए अस्थि-चर्मविशिष्ट भारत के तैंतीस करोड़ मनुष्यों पर हुक्म चलाते हैं। जिनकी असली तलवार गहना, और कलम है, वे जो न करें सो थोड़ा। ग्रीष्म की प्रचण्ड धूप में घोड़े की पीठ पर लोहा लेनेवाले भारत के नृपतियों के वंशधर भी गोरी मिसों के हाथ की चाय पीने का लोभ संवरण न कर, अपनी निरीह अधम प्रजा को लूओं में झुलसते छोड़, ग्रीष्म में शिमला-शैल पर जा पहुंचते हैं। वही शिमला-शैल अपनी मनोरम घाटियों, हरी-भरी पर्वत-श्रृंखलाओं के पीछे सुदूर आकाश में हिमालय के श्वेत हिमपूर्ण शिखरों को जब सुनहरी धूप में दिखाता है, तब नैसर्गिक शोभा का क्या कहना है? फिर प्रकाण्ड धवल अट्टालिकाएं—जहां तड़िद्गामिनी सुन्दरी अधम दासी की तरह सेवा करती हैं—जब सुरा और सुन्दरियों से परिपूर्ण हैं, तब इस प्रतापी ब्रिटिश-छत्रछाया में अभयदान प्राप्त महाराजाधिराजों और राजराजेश्वरों को अब और क्या चाहिए? दिन-रात सुरा-सुन्दरी और प्रभु-पद-वन्दन में उनकी ग्रीष्म इस तरह बीत जाती है, जैसे किसी नवदम्पति की सुहागरात। अजी, एक बार बिजली की असंख्य दीप-मालाओं से आलोकित उन प्रासादों में इन नरपुंगवों को लेवेण्डर से सराबोर वस्त्रोंवाली अधनंगी मिसों के साथ

कमर में हाथ डाले थिरक-थिरककर नाचते तो देखिए ? और उसके बाद झुक-झुककर उनके सामने जमनास्टिक की जैसी कसरत करते और विनयाञ्जलि भेंट करते और बदले में करपल्लव का चुम्बनाधिकार, और सहारा देकर उठाने की सेवा का भार, इससे अधिक प्रारब्धानुसार। बस, अब कुछ न कहेंगे।

सन् १६०८ का सुन्दर प्रभात था। मई मास समाप्त हो रहा था। भारतवर्ष ज्वलन्त उत्ताप से भट्ठी बन रहा था, पर शिमला-शैल पर वह प्रभात सुन्दर.शरद् के प्रभात की भांति निकल रहा था। एक दस वर्ष की बालिका एक तितली को पकड़ने के प्रयत्न में घास पर दौड़-धूप कर रही थी। उसके शरीर पर ज़री के काम की सलवार, एक ढीला रेशमी पंजाबी कुरता और मस्तक पर अतलस का दुपट्टा था, जो अस्त-व्यस्त हो रहा था। बालिका सुन्दरी तो थी, पर कोई अलौकिक प्रभा उसमें न थी। परन्तु उसके ओष्ठ और नेत्रों में अवश्य एक अद्भुत चमत्कार था। सुन्दर, स्वस्थ और सुखद जीवन ने जो मस्ती उसके इस बाल-शरीर में भर दी थी, उसे यौवन के निकट-भविष्य-आक्रमण के पूर्व रूप ने कुछ और ही रंग दे रखा था। वह मानो कभी आपे में न रहती थी, वह सदा बिखरी रहती थी। उल्लास, हास्य, विनोद और मस्ती, यही उसका जीवन था। हम पहले ही कह चुके हैं कि इस बालिका के सारे अंगों में यदि कोई अंग अपूर्व था तो होंठ और आंखें थीं। हम कह सकते हैं कि मानो उसके प्राण सदैव इन दोनों अंगों में बसे रहते थे। वह देखती क्या थी—खाती थी। बहुत कम उसकी दृष्टि स्थिर होती थी। पर क्षण-भर भी यदि वह किसीको देखती तो कुछ बोलने से प्रथम एक-दो बार उसके होंठ फड़कते थे—ओफ ! कौन कह सकता है कि उन होंठों के फड़कते ही उन नेत्रों से जो धारा निकलती थी, उसमें कितना मद हो सकता था। पृथ्वी पर कौन ऐसा जन्तु होगा कि जो उन नेत्रों के अधीन न हो जाए और उन होंठों की फड़कन के गम्भीर गर्त में छिपे निनाद को अर्थसहित समझने का अभिलाषी न हो।

इन दोनों वस्तुओं के बाद और एक तीसरी वस्तु थी, जो इन दो वस्तुओं के बाद ही दीख पड़ती थी। वह थी वह धवल दन्त-पंक्ति, वह दन्त-पंक्ति, जो बड़ी कठिनाई से कदाचित् ही ठीक-ठीक प्रकट दीख पड़ती हो। उज्ज्वल, सुडौल श्वेत रेखा की, उन फड़कते होंठों के बीच से अकस्मात् प्रस्फुटित होने की, कल्पना तो कीजिए।

परन्तु एक दस वर्ष की बालिका का ऐसा नख-शिख वर्णन ! पाठक हमारी

इस अपवित्र धृष्टता को क्षमा करें। अच्छा, अब हम मन को विचलित न होने देंगे। अस्तु। बालिका अपने जन्मसिद्ध गर्व और मस्तानी अदा को विस्मृत-सी करती हुई तितली के पीछे फिर रही थी। निकट ही एक भद्रपुरुष बेंच पर बैठे उसे एक-टक देख रहे हैं, इसका उसे कुछ ध्यान न था। बालिका के निकट पहुंचने पर भद्र-पुरुष उठ बैठे। उन्होंने किंचित् हंसकर मधुर स्वर से कहा—गरीब जानवर को क्यों दुख देती हो ; उसने तुम्हारा कुछ चुराया है क्या ?—बालिका ने क्षण-भर स्तब्ध खड़ी होकर भद्र पुरुष को देखा—ओफ ! उन्हीं नेत्रों से, दो बार होंठ फड़के और उसके बाद बिजली की रेखा के समान दन्त-पंक्ति प्रकट हुई। बालिका ने बिना हिचकिचाए कहा—कैसी खूबसूरत है—आप जरा पकड़ देंगे ?

'सिर्फ इसलिए कि खूबसूरत है ?'

बालिका समझी नहीं, पर उसने गर्दन हिला दी। भद्र पुरुष आगे बढ़कर एक-दम बालिका के निकट आ गए। एक प्रबल आन्दोलन उनके हृदय में आलोड़ित हो उठा। एक अस्वाभाविक उन्माद में वे कह उठे :

'तुम खुद कितनी खूबसूरत हो ? तुम्हें कोई इसीलिए पकड़ ले तब ?' बालिका ने भद्र पुरुष को निकट आते और उपर्युक्त शब्द कहते सुन, एक बार फिर उसी तरह उनकी तरफ देखा—उसी तरह उसके होंठ फड़के। पर वह बोली नहीं। उसने वहां से भागने का आयोजन किया। भद्र पुरुष हंस पड़े। उन्होंने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा—लो, पकड़ी गई तो भागती हो ?

सामने से आवाज़ आई—गुलबदन !

'छोड़िए, अम्मीं बुलाती है।'—बालिका ने किंचित् झुंझलाकर कहा।

'मगर तुम्हारा नाम ?'

'मैं नहीं बताने की।'

'तुम्हारी अम्मी का क्या नाम है ?'

'मैं नहीं बताती, छोड़िए।'—बालिका ने खींचकर हाथ छुड़ा लिया। वह भाग गई।

भद्र पुरुष ने क्षण-भर बालिका की ओर देखा—तितली की तरह उड़ी जा रही थी। सामने कुछ दूर पर उसकी मां और दो-तीन व्यक्ति खड़े थे। भद्र पुरुष ने निकट खड़े एक व्यक्ति से कहा :

'अहमद ?'

'हुजूर !'

'इसे लाओ।'

'जो हुक्म।'

'मैं घूमता हुआ चला जाऊंगा। तुम गाड़ी ले जाओ।'

'जो हुक्म।'

'दस हज़ार ?'

'जी हां सरकार ! वह लाहौर की मशहूर तवायफ मुमताज़ बेगम की लड़की है। बुढ़िया बड़ी घाख निकली। उसने हुज़ूर को देख और पहचान लिया था। बस पैर फैला गई। बड़ी मुश्किल से सौदा पटा है।'

'वे लोग यहां कब आ जाएंगे ?'

'कल दस बजे।'

'गाड़ी ग्यारह बजे चलेगी। सिवा दोनों मां-बेटियों के उनका तीसरा कोई आदमी साथ न रहने पाएगा। इसकी हिदायत कर दी है न ?'

'जी हां हुज़ूर, ऐसा ही होगा।'

'और एक बात, छोटी रानी को इस वारदात की खबर न होने पाए ?'

'बहुत अच्छा सरकार।'

'एक रिज़र्व कम्पार्टमेण्ट उनके लिए गाड़ी में लगा रहेगा। मगर मैं आज रात को होटल में उन लोगों से मुलाकात करूंगा। खाना भी उन्हींके साथ खाऊंगा। एक रिज़र्व कमरे और स्पेशल खाने का बन्दोबस्त भी कर लो—तुम खुद ही चले जाओ—फोन में मत कहो, जिससे कानों-कान किसीको खबर न हो। ठीक नौ बजे, समझे ?'

'जी हुज़ूर !'

'और सुनो, आज ग्यारह बजे रात को मिस फास्टर उसी जगह आएगी न ?'

'ज़रूर !'

'तब होटल से लौटकर उधर चलना होगा। अब तुम जा सकते हो।'

ये भद्र पुरुष थे कौन ? पाठकों को सब कुछ नहीं बताया जा सकता। वे एक विस्तृत राज्य के सुजन अधिपति, श्रीमन्त महाराजाधिराज राजराजेश्वर

श्री···थे। आप सीधे यूरोप की यात्रा से आ रहे थे और आपको राज्याधिकार प्राप्त हुए कुछ ही मास हुए थे। आपकी अवस्था इक्कीस के लगभग थी। आपकी वेष-भूषा यद्यपि साधारण थी, परन्तु राजत्व का गाम्भीर्य मुख-मुद्रा में था। वह बालिका उसे क्या लक्ष्य कर सकती थी ?

रॉयल होटल के सर्वश्रेष्ठ कमरे में ज्वलन्त बिजली के प्रकाश में सुन्दर रंगीन कांच और चीनी के पात्रों में अंगरेज़ी ढंग के खाने चुने जा रहे हैं—होटल के सिद्ध-हस्त कर्मचारी और बैरा ज़र्क-वर्क पोशाक पहने एक यूरोपियन व्यक्ति की देख-रेख में सब कुछ सजा रहे हैं। श्रीमन्त महाराजाधिराज के पधारने का समय हो गया है। ठीक समय पर महाराज केवल एक पार्श्वद के साथ पधारे। कर्मचारी ने नतमस्तक होकर महाराज का अभिवादन किया। महाराज ने किंचित् हास्य-वदन से इधर-उधर देखा और कर्मचारियों को धन्यवाद दिया। क्षण-भर बाद पूर्व व्यक्ति ने संकेत से गुलबदन और उसकी माता के आगमन की सूचना दी। सब लोग बाहर चले गए। बालिका अस्वाभाविक गाम्भीर्य की मूर्ति बनी उस लोकोत्तर उज्ज्वल कक्ष में प्रातःकाल के परिचित भद्र पुरुष को सम्मुख देखकर देखती रह गई। वृद्धा ने झुककर सलाम किया और बालिका से ज़रा भर्त्सना से कहा—बेअदब! महाराज को सलाम कर।

बालिका ने ज़रा आगे बढ़कर सलाम किया। महाराज ने उठकर उसे एक कुर्सी पर बैठाया और वृद्धा को भी बैठने का आदेश किया। सबके बैठने पर महा-राज ने पूर्ववत् बालिका का हाथ पकड़कर वैसे ही हास्य-मुख से कहा—खूबसूरत तितली पकड़ी गई न !

बालिका ने नेत्रों से वही धारा छोड़ी। उसके होंठ फड़के, वह बोल न सकी, मां की ओर देखने लगी।

वृद्धा ने कहा—महाराज ! सुबह अगर इसने कुछ गुस्ताखी की हो तो हुज़ूर माफ फर्माएं ; लड़की बिलकुल बेअदब तो नहीं, मगर बच्ची ही तो है।

'कुछ नहीं, मगर इसने मुझे पागल बना दिया। मगर सच तो कहो, तुम दिल में नाराज़ तो नहीं ? यह इन्तज़ाम तुम्हें दिल से तो पसन्द है ?'

'यह इसकी और मेरी खुशकिस्मती है महाराज ! आप यह क्या फर्मा रहे हैं ? कहां यह कनीज़ और कहां हुज़ूर···?'

महाराज बीच ही में बोल पड़े। उन्होंने कहा—मगर मुझे कुछ खास इन्त-

ज़ाम करना पड़ेगा, और तुम्हें उसमें मदद करनी पड़ेगी। तुम तो जानती ही हो, यह काम बहुत पोशीदा रहेगा। खासकर यह मैं बिलकुल नहीं ज़ाहिर करना चाहता कि यह तवायफ है और मुसलमान है। मैं उसे हर तरह की ऊंची तालीम दूंगा, और उसका रुतबा महारानी के बराबर होगा। अभी पांच साल उसे तालीम पाने का वक्त है। तुम्हें तब तक वहीं उसके साथ रहना पड़ेगा। शहर के बाहर एक आरास्ता कोठी में तुम लोगों के ठहरने का बन्दोबस्त कर दिया जाएगा। वहां तुम्हें जहां तक मुमकिन होगा, कोई तकलीफ न होगी। अब कहो, इसमें तुम्हें कुछ उज्र है ?

'मुतलक नहीं हुज़ूर, मगर मेरा वहां रहना कैसे मुमकिन हो सकता है, सरकार को शायद पता नहीं, मेरा निजू खर्च दो हज़ार रुपये माहवार है।'

'वह तुम्हें मिलेगा।'

'तब हुज़ूर के हुक्म को कैसे टाला जा सकता है।'

"तुम लोगों को हिन्दू-लिबास में रहना पड़ेगा, और क्या-क्या, कैसे-कैसे किया जाएगा, यह हिदायत कर दी जाएगी। उम्मीद है, समझदारी और होशियारी से काम लोगी। सिर्फ तुम दोनों मां-बेटियां चलोगी। तुम्हारा अपना एक भी नौकर न जाने पाएगा, समझीं ?'

'जो इर्शाद हुज़ूर !'

'तब बातचीत खत्म हुई। अब बेतकल्लुफी से खाना खाओ-पीओ, मगर एक बात—इससे भी—इसका क्या नाम है ? गुलबदन !'

'इधर तो आओ प्यारी गुलबदन !' इतना कहकर उन्होंने बालिका का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। फिर वही दृष्टि और वही उत्फुल्ल होंठों की फड़कन ! महाराज ने अधीर होकर बालिका का प्रगाढ़ चुम्बन ले लिया। बालिका छटपटाकर महाराज के कर-पाश से भागी। वृद्धा ने घटना देखी-अनदेखी करके खाने का आयोजन किया। बालिका ने कहा—अम्मी चलो !

'ठहरो बेटी, महाराज की दावत में हम लोग आए हैं। फिर बिना खाए कैसे जा सकते हैं। बैठो और महाराज से हुक्म लेकर खाना खाओ।'

बालिका चुपचाप बैठ गई। उसने महाराज की ओर झांककर भी न देखा।

खाना खत्म होने पर तत्काल मां-बेटी उठ खड़ी हुईं। माता के आदेश से भयभीत-सी होकर गुलबदन ने सलाम किया और चल दी। इसी समय नौकर ने

महाराज के कान में कहा—महाराज, मिस फास्टर ड्राइंग रूम में सरकार की प्रतीक्षा कर रही हैं।

महाराज उन्मत्त की भांति उधर लपके।

श्रावण की नन्हीं फुहारों से भरी हुई ठण्डी हवा के झकोरे, ग्रीष्म की ज्वलन्त ऊष्मा सहने के बाद कैसे प्रिय प्रतीत होते हैं, मन कैसा मत्त मयूर-सा नाचने लगता है, यह कैसे कहा जाए ? नन्हीं फुहारों के साथ हवा के झोंके भीतर घुस रहे थे। बालिका एक मसनद के सहारे बढ़िया विलायती कालीन पर ज़रदोज़ी के काम की बहुत महीन और बहुमूल्य साड़ी पहने स्थिर बैठी थी। उसकी वह बाल-सुलभ चंचलता, जो मनुष्य का मन अपनी ओर हठात् खींच लेती थी, इस समय उसमें न थी। उसके सम्मुख एक वृद्ध पुरुष अपनी सफेद दाढ़ी को बीच में से चीरकर कानों पर चढ़ाए, बड़ा-सा सफेद साफा बांधे दुज़ानू बैठे थे। उनके हाथ में तम्बूरा था। वे एमन कल्याण के स्वरों को अपने कम्पित वृद्ध कण्ठ से निकाल, उंगली के आघात से तन्तुवाद्य पर घोषित कर रहे थे। तत्क्षण ही बालिका को उनका अनुकरण करना था। वह उसके मस्तिष्क पर भारी भार था। बालिका उन सुन्दर सुखद झोंकों से ज़रा भी विचलित न होकर वृद्ध के मुख से निकलते और तम्बूरे के तारों से टकराते स्वरों को मनोयोग से सुन रही थी। वृद्ध ने तारों के पास कान झुकाकर कहा—बोलो तो बेटी ! तुम्हारा गला तो बहुत साफ है। देखो मध्यम दोनों लगेंगे; समझीं, यह एमन के स्वर हैं।

बालिका का भीत-कम्पित स्वर, उसकी माधुरी मूर्ति और कोमल कण्ठ उस अस्तंगत सूर्य की बरसाती प्रभा में मिलकर गज़ब कर गया। वृद्ध पुरुष तम्बूरे पर झुककर मूर्छना के साथ ही वाह ! कर गए।

उसी कक्ष में एक गद्दे‌दार आरामकुर्सी पर श्रीमन्त महाराजाधिराज एक खिड़की से आती उन्मुक्त वायु का पूरा स्वाद ले रहे थे। बढ़िया फ्रांस की बनी सुगन्धित सिगरेट को एक ओर फेंक वे उठकर बालिका को घूरने लगे। बालिका ने उस ओर देखा। बीच ही में उसका तार टूट गया। वह चुप हो गई। महाराज ने आकर उसके दोनों हाथ पकड़कर उठा लिया। उन्होंने कहा—उस्ताद जी, बस अब आज और नहीं। आप जाइए। वृद्ध पुरुष झटपट उठकर अभिवादन करके चल दिए। उन्हें इस कठिन अवस्था में भी बालिका ने मस्तक झुकाकर प्रणाम

किया। महाराज ने बालिका को दोनों हाथों में उठाकर कहा—गुलबदन ! तुम कब ? ओफ ! कब-कब ! कब ?—उन्होंने उसके उसी उत्फुल्ल होंठ को चूम लिया और कसकर छाती से लगा लिया। बालिका मानो मूर्छित हो गई। वह शिथिल-गात्र, निस्पन्द गति से उनके अंक से खिसकने लगी। महाराज ने उसे कौच पर लिटा दिया। बालिका धीरे से उठकर अपने वस्त्र संभालने लगी।

महाराज ने कहा—गुलबदन ! तुम कितने दिनों में बड़ी हो जाओगी ?

गुलबदन महाराज का मतलब न समझकर नीची नज़र किए खड़ी रही।

महाराज ने कहा—कैसी ठण्डी हवा चल रही है ! तुम्हें अच्छा लगता है ?

बालिका ने स्वच्छ आंखें ऊपर को उठाकर कहा—जी हां।

'तुम्हें मालूम है, तुम्हारा नाम क्या रखा गया है ?'

'जी हां !'

'क्या भला ?'

'गुलाबबाई'—बालिका के मुख पर हास्य-रेखा दौड़ गई और एक बार बालिका का मुख चुम्बन करके महाराज ने उसे दूसरे कमरे में भेज दिया।

उन्मत्त यौवन धीरे-धीरे आया और एकदम आक्रान्त कर गया। पीले रंग पर लाली और चमक, गुलाबी प्रभा पर मानिक की चमक एक अभूतपूर्व रंग दिखा रही थी। किसीपर दृष्टि पड़ते ही कुछ क्षण निर्निमेष देखना और फिर उत्फुल्ल होंठों का फड़कना, यह बाल्यकाल का स्वभाव इस गदराए हुए यौवन पर बिजली गिरा रहा था। महाराजाधिराज की आंखों में गुलाब, नस-नस में गुलाब, जीवन और मृत्यु में गुलाब थी। गुलाब को विलास और ठाट-बाट के जो सुख प्राप्त थे, वे पाश्चात्य जीवन के विलासी के लिए कल्पना की वस्तु नहीं। वह महाराज के नौ राजप्रासादों में से किसीको किसी समय अपनी इच्छानुसार, जिस प्रकार चाहे इस्तेमाल कर सकती थी। सैकड़ों दास-दासियां उसकी आज्ञा, वह चाहे जैसी हो, पालन करने और उसके सुख-रक्षार्थ उसकी सेवा में रहती थीं। जो कुछ वह चाहती थी, परिणाम और धन-व्यय का विचार बिना किए तत्काल प्रबन्ध किया जाता था। उसके चित्रमयी वस्त्र, विशेष करके रेशम और मखमल के अचिन्त्य रूप से अमूल्य और बढ़िया होते थे और वह काश्मीर तथा बनारस में विशेष रूप से तैयार किए जाते थे। उसका ज़ेवर कई लाख रुपयों की कीमत का था। कुछ तो उसके लिए

पेरिस से मंगाए गए थे। एक उपयुक्त तथा सुखभोगमयी राल्स रॉयस मोटरगाड़ी सदैव उसकी सेवा में रहती थी, जिसपर वह सन्ध्या और प्रातःकाल की सैर करने बाहर निकलती थी। उसकी दूर की यात्रा के लिए महाराज की स्पेशल ट्रेन में उसके लिए सदैव एक कमरा रिज़र्व किया जाता था। ऐसे दुर्लभ राज-सुख उस बालिका को उसके यौवन के प्रारम्भ में नसीब हुए—केवल उस दृष्टि और उन फड़कते होंठों के बदले।

दस वर्ष व्यतीत हो गए। दिल्ली स्टेशन पर खूब धूम थी। किसी राजा की स्पेशल ट्रेन आ रही है। अंग्रेज़ आफीसर और कुली प्रत्येक के मुख पर यही एक बात थी। प्लेटफार्म सज रहा था और नगर के कुछ खास गण्यमान्य व्यक्ति महाराज की स्पेशल ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्पेशल ट्रेन आई। खास कमरे पर खस के पर्दे पड़े थे और उनपर पानी ऊपर से टपक रहा था। बिजली के पंखे की सरसराहट बाहर से सुनाई पड़ती थी।

गाड़ी खड़ी होने के कुछ क्षण बाद एक उच्च पदस्थ कर्मचारी ने प्लेटफार्म पर समुपस्थित पुरुषों की अभ्यर्थना करते हुए कहा—श्रीमती महारानी महोदया आप सब सज्जनों की सेवा में अपना हार्दिक धन्यवाद देती हैं। श्रीमन्त महाराजाधिराज कल दूसरी गाड़ी से पधारेंगे। कारण-विशेष से वे इस समय न पधार सके। दो-एक सम्भ्रान्त पुरुषों ने महाराज के स्थान पर महारानी को ही अपना सम्मान प्रदान करने के लिए शिष्टाचार के दो-चार शब्द कहे।

हठात् सैलून का द्वार खुला और महारानी स्वयं उतरकर प्लेटफार्म पर आ खड़ी हो गईं। सम्भ्रान्त आगतजन इधर-उधर हट गए। महारानी बारीक धानी परिधान पहने थीं। बहुमूल्य हीरे के आभूषण उनके शरीर पर दमक रहे थे। कर्मचारी और दीवान अवाक् रह गए। महारानी ने किसीकी ओर लक्ष्य न देकर अपने खास खिदमतगार को हुक्म दिया कि वह उनका खास सामान गाड़ी से उतार ले। उनकी इस आज्ञा पर सभी चकित थे। हठात् एक व्यक्ति भीड़ से निकलकर महारानी के निकट आ खड़ा हुआ। महारानी ने आश्वस्त होकर कहा—ज़मीर! मैंने समझा, तुम्हें मेरा तार नहीं मिला! अच्छा, सब ठीक है?

'जी हुज़ूर, मेल जाने में अभी पौन घण्टा है, फर्स्ट क्लास का डिब्बा रिज़र्व है। हुज़ूर के साथ और कितने आदमी हैं?'

'सिर्फ एक खिदमतगार !' इसके बाद महारानी ने कर्मचारी से कहा—मुझे ज़रूरी काम से अभी बम्बई जाना है, आप लोग महाराज से अर्ज़ कर दें।

'मगर हुज़ूर ! महाराज की तो आज्ञा नहीं है।'

'मैं महाराज की गुलाम नहीं हूं !'

'किन्तु महारानी···!'

'मैं जो कहती हूं, वह करो ! ज़मीर, मेरा सामान डिब्बे में ले जाओ।'

आगन्तुक स्वागतार्थी सम्भ्रान्त पुरुषों को भीत-चकित करती हुई महारानी गुलाबबाई उर्फ गुलबदन बेगम भीड़ को चीरती हुई सामने खड़ी मेल-ट्रेन के फर्स्ट क्लास कम्पार्टमेण्ट के रिज़र्व डिब्बे में बैठ गई।

कुबेर-नगरी बम्बई में बीसवीं शताब्दी के समस्त वैभव पूर्ण विस्फारित हैं। सम्पदा और ऐश्वर्य का यह जीवन सम्पदा और ऐश्वर्य के उस जीवन से भिन्न है, जो रईसों और राजाओं को प्राप्त है। राजा-रईस खाली जेब रहने पर भी जो शान-ठाट और रईसी चोंचले करते हैं, वे इस कुबेर-नगरी में भरी जेबों से भी सम्भव नहीं। परन्तु धन जहां है, वहां विलासिता है ही, मुंह फाड़कर धन किसने खाया है ? धन का यथार्थ मार्ग तो मूत्र-मार्ग है। धन ने जहां यह मार्ग देखा, फिर वह कहां रह सकेगा ?

एक सजी हुई अट्टालिका में एक सुन्दर, किन्तु ज़रा भारी शरीर का युवक कौच पर पड़ा प्यासी आंखों से सामने हारमोनियम पर उंगली फेरती हुई सुन्दरी के मुख और उभरे हुए अधढके शरीर को देख रहा है। शराब का प्याला और सुगन्धित शराब का पात्र उसके निकट है। रह-रहकर वह मद्यपान कर रहा है। यह सब है, पर गाने का रंग नहीं जमता। विकल होकर सुन्दरी ने बाजा एक ओर सरका दिया, वह थककर एक कौच पर गिर पड़ी। युवक ने दौड़कर कहा—क्या तबीयत अच्छी नहीं, प्यारी ?

'नहीं, मुझे ज़रा चुप पड़ी रहने दो।'

'पर मुझसे नाराज़ तो नहीं हो ?'

'नहीं, मगर मुझसे ज़रा देर बोलो मत।'

युवक स्तब्ध हुआ। सुन्दरी दीवार की ओर मुंह करके लेट गई। वह सोच रही थी, यह कैसा प्रारब्ध-भोग है ! हे परमेश्वर ! मैं कहां से कहां आ गिरी ?

भाग्य-चक्र भी कैसा है ? उसमें और इसमें कितना अन्तर है, पर जो हो गया वह तो अब लौट सकता नहीं। परन्तु......। उसके मुंह से एक सांस निकली, वह तड़प उठी।

युवक ने उठकर उसका सिर गोद में लेकर कहा—गर्मी के कारण तुम्हारी तबियत खराब हो गई है, चलो ज़रा समुद्र के किनारे घूम आएं। गाड़ी बाहर है ही।

सुन्दरी सहमत हुई। क्षण-भर में गाड़ी उन्हें लेकर हैंगिंग गार्डन की ओर उड़ रही थी। हठात् एक मोटर बड़े ज़ोर से टकरा गई। ड्राइवर के हज़ार सावधानी करने पर भी युवक औंधे मुंह गिर पड़े। सुन्दरी ने सामने की मोटर में बैठे व्यक्तियों को देखा, उसके मुख से चीख निकल गई। वह सहम कर सीट पर चिपक गई। एक व्यक्ति ने ललकार कर कहा—नाक काट लो।

उसके हाथ में रिवॉलवर था। दूसरा व्यक्ति धीरे-धीरे मोटर की ओर बढ़ा। सुन्दरी औंधेमुंह गाड़ी में लोटकर चिल्लाने लगी। युवक ने आगे बढ़कर आततायी को रोककर उसे एक धक्का दिया और उसी क्षण एक गोली उसकी छाती को चीरती हुई निकल गई। आततायी युवती पर छुरी लेकर चढ़ गया।

अभी दिन काफी था। सड़क पर यथेष्ट यातायात था। बहुत लोग झुक पड़े। आततायी अब भागने का उपक्रम करने लगे। परन्तु पुलिस की सावधानी और भीड़ की मदद से वे गिरफ्तार हुए। सुन्दरी भयभीत और साधारण घायल अवस्था में अस्पताल में पहुंचाई गई।

होश में आने पर उसने अस्पताल के कमरों की खिड़कियों पर दृष्टि गाड़कर देखा—कितनी स्मृतियां आईं और गईं। उस शून्य में उसकी दृष्टि गड़ गई। उसके होंठ फड़के, पर हाय ! वहां उस फड़कन को देखने वाला कौन था !

युवती दोनों हाथों से मुंह दबा कर रोने लगी—हाय ! मैंने क्या किया ?

'क्या हुआ ?'

'तीन को कालापानी, दो को फांसी, एक पागल हो गया।'

'पागल हो गया ?'

'जी हां।'

'मगर सभी को फांसी क्यों न हुई ?'—फन कुचली हुई नागिन की तरह

चपेट खाकर युवती ने बिछौने से उठकर कहा। उसी तरह उसके होंठ फड़क उठे। उसने पूछा—और उन्हें ?

'उन्हें गद्दी त्याग देने को विवश किया जा रहा है। सुना है, वे राजपाट छोड़कर यूरोप चले जाएंगे।'

युवती के होंठों में फिर फड़कन उत्पन्न हुई। उसकी दृष्टि दूर पर कांपते हुए वृक्ष के पत्तों पर अटक गई। उसके सारे शरीर में कम्प उत्पन्न हो गया। वह उठी। उसने ज़मीन में लात मारकर कहा—मैं अपनी मां की बेटी हूं, मेरा नाम है गुलबदन। बादशाहों की गद्दियां इन ठोकरों से बर्बाद होंगी और लोगों की जानें इन जूतियों पर कुर्बान होंगी—यह मैं जानती हूं, मगर ज़मीर !

'हुज़ूर!'

'बदला पूरा नहीं हुआ।'

'सरकार, सेठ ने एक लाख रुपया आपके नाम विल किया है, यह अदालत में उनके सॉलीसीटर से मालूम हुआ।'

'सेठ दिलदार था, मगर महाराज न था। अफसोस है, बेचारा मर गया। अच्छा, मैं आज ही पंजाब जाऊंगी।'

'आज ही ?'

'हां, मेरे एक दोस्त का तार आया है—वे मेरी इन्तज़ारी कर रहे हैं।'

'बेहतर हो कि यहां के झगड़े खतम होने पर जाएं।'

'बेवकूफ, परसों मेरे निकाह की तारीख है !' सुन्दरी एक मर्म-भेदिनी दृष्टि डालती चली गई।

'गुलबदन, बेरहमी न करो।'

'बेरहमी क्या करती हूं ?'

'इस वक्त मैं तंगदस्त हूं, रुपया जल्द ही मेरे पास आने वाला है ?'

'मगर मैं पेट में पत्थर बांधकर तो जी नहीं सकती ?'

'तुम्हें क्या भूखों मरने की नौबत आ रही है ? कोठी, बंगला, मोटर, नौकर—सभी तो हाज़िर हैं। पांच सौ का मुशाहिरा भी कुछ कम नहीं !'

'मेरे नौकरों के नौकर ऐसे कोठी, बंगले और मोटरों पर औकात बसर करते हैं। और पांच सौ रुपया रोज़ाना खर्च करने की मैं आदी हूं !'

'मगर गुलबदन ! मैं राजा तो नहीं !'

'फिर रानियों पर क्यों मन चलाया ?'

'रानी भी तो राज़ी थी !'

'रानी बनी रहे तभी तक !'

'वरना ?'

'वरना ? वरना रास्ता नापो, मैं अपना ठिकाना देख लूंगी !'

'तुम—तुम यह कहती क्या हो ? मैं तुम्हारा शौहर हूं ।'

'ज़िन्दगी और जिस्म सलामत रहेगा तो ऐसे हज़ार शौहर पैरों के तलुए सहलाएंगे !'

'तुम्हारा इरादा क्या है ?'

'तुम अपना रास्ता देखो, और मैं अपना !'

'यह नहीं होगा !'

'यही होगा, तुम्हारी क्या हैसियत जो मेरी मर्ज़ी के खिलाफ चूं करो !'

'क्या यही तुम्हारा इरादा है ?'

'यही है ।'

'मैं तुम्हें जान से मार डालूंगा !'

'इसकी इत्तिला अभी मैं पुलिस को किए देती हूं ।'

सुन्दरी ने टेलीफोन पर उंगलियां घुमाईं, युवक ने घुटनों के बल बैठकर कहा—खुदा के लिए, गुलबदन, ऐसा ज़ुल्म न करो !

'कहती हूं सामने से हट जाओ, वरना ज़लील होना पड़ेगा !'

युवक की आंखों से पहले आंसू फिर आग की ज्वालाएं निकलीं । उसने कहा—उफ बेवफा रण्डी !—और वहां से चल दिया ।

दिल्ली में बड़े-बड़े पोस्टर चिपके दीख पड़ते थे, और आबाल-वृद्ध उन्हें पढ़ और चर्चा कर रहे थे । प्रसिद्ध गुलबदन का मुजरा स्थानीय थिएटर में होगा । लोगों के दिल गुदगुदाने लगे । राजगद्दियों को विध्वंस करनेवाली, फांसी और कालेपानी की सीधी सड़क, लगातार शौहर बनाने और बिगाड़नेवाली, वह अद्भुत वेश्या कैसी है ? थिएटर के द्वार पर उसका एक रंगीन फोटो कांच के आवरण में लगा दिया गया था । लोग देख रहे थे और जीभ चटखा रहे थे ।

नीचे पांच रुपये से चवन्नी तक के टिकट की दर थी।

अभिनय के समय पर भीड़ का पार न था। चवन्नी की खिड़की पर आदमी पर आदमी टूट रहे थे। थिएटर-हॉल खचाखच भर रहा था। क्षण-क्षण में तालियों की गड़गड़ाहट के मारे कान के पर्दे फटे जाते थे। लोग तरह-तरह का शोर कर रहे थे।

एकाएक सैकड़ों बत्तियों का प्रकाश जगमगा उठा और वह पुराना सौन्दर्य नये वस्त्रों में सजकर सम्मुख आया। वह स्त्री—जो राजपरिवार की महारानी का पद भोग चुकी थी—जिसे सभी सम्पदाएं तुच्छ थीं, आज अपने सौन्दर्य को इस तरह खड़ी होकर चवन्नी वालों को बिखेर रही थी। देखने वाले दहल रहे थे। धीरे-धीरे उसने गाना शुरू किया—साज़िन्दों ने गत मिलाई। चवन्नीवालों ने शोर किया—ज़रा नाचकर बताना, बी साहेब !

शोर बढ़ता गया। क्षोभ, ग्लानि और लज्जा से गुलबदन बैठ गई। एक सहृदय पुरुष ने सिर हिलाकर कहा—हाय री वेश्या ! !—और वे बाहर निकल आए ! वे दूर तक कुछ सोचते और रंगमंच का शोर सुनते अंधकार में 'वेश्या' के व्यक्तित्व पर विचार करते चले जा रहे थे। पृथ्वी पर कौन इस तरह इस शब्द पर कभी विचार करने का ऐसा अवसर पाएगा ?

खूनी

उन दिनों हुतात्मा श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी जेल में थे, तभी 'प्रताप' में यह कहानी छपी थी। पढ़कर उन्होंने लेखक को एक कार्ड लिखा था। उसमें केवल एक ही वाक्य था—खूनी से 'प्रताप' धन्य हो गया। इन बातों को आज अनेक बरस हो गए होंगे। लेखक तब गुरुगरिमापूर्ण आचार्य न थे, उत्तप्त अंगारों पर नृत्य करनेवाले कलाकार थे। गांधीजी के अहिंसा-तत्त्व का तब जन्म ही हुआ था—और इस कहानी के लेखक ने गांधीवाद पर अपनी अप्रतिम रचना 'सत्याग्रह और असहयोग' रची ही थी, जो उन दिनों गीता की भांति पढ़ी जा रही थी। क्रांतिकारियों के आए दिन आतंकपूर्ण साहसिक कार्य सुन पड़ते थे। किसी कलम के धनी का और सरस्वती के वरद पुत्र का यह साहस न था कि उनके आतंकवाद की ओर अंगुली भी उठाए—तभी आचार्य ने शुद्ध अहिंसा की राजनीति का एक प्रभावशाली रेखाचित्र इस कहानी में चित्रित किया था।

उसका नाम मत पूछिए। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आंखों से दूर करने को पागल हुआ फिर रहा हूं। पर वह नाम और वह सूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हूं, वह निडर है; मैं रोता हूं, वह हंसता है; मैं मर जाऊंगा, वह अमर है।

मेरी-उसकी कभी की जान-पहचान न थी। दिल्ली में हमारी गुप्त सभा थी। सब दल के आदमी आए थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था। वह मेरे ही पास खड़ा एक कुत्ते के पिल्ले से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आकर सहज गम्भीर स्वर में धीरे से कहा—इस युवक को अच्छी तरह पहचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।

नायक चले गए, और मैं युवक की ओर झुका। मैंने समझा, शायद नायक हम दोनों को कोई एक काम सुपुर्द करेंगे।

मैंने उससे हंसकर कहा—कैसा प्यारा जानवर है!—युवक ने कच्चे दूध के

समान स्वच्छ आंखें मेरे मुख पर डालकर कहा—काश ! मैं इसका सहोदर भाई होता ! मैं ठठाकर हंस पड़ा। वह मुस्कराकर रह गया। कुछ बातें हुईं। उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया।

दिन पर दिन बीतते गए। अछूते प्यार की धाराएं दोनों हृदयों में उमड़कर एक धार हो गईं। सरल, अकपट व्यवहार पर दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध होते गए। वह मुझे अपने गांव ले गया। किसी तरह न माना। गांव के एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गांव के ज़मींदार का बेटा था, इकलौता बेटा। हृदय और सूरत का एक-सा। उसकी मां ने दो दिन में ही मुझे बेटा कहना शुरू कर दिया। अपने होश के दिनों में मैंने वहां सात दिन माता का स्नेह पाया। फिर चला आया। अब तो बिना उसके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों में अटक रहे। एक दिन उन्मत्त प्रेम के आवेश में उसने कहा था—किसी अघट घटना से जो हम दोनों में एक स्त्री बन जाए तो मैं तो तुमसे ब्याह ही कर लूं।

नायक से कई बार पूछा—क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा था !—वे सदा यही कहते—समय पर जानोगे।—गुप्त सभा की भयंकर गंभीरता सब लोग नहीं जान सकते ! नायक मूर्तिमान भयंकर गंभीर थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पाकेट में अब भी सुरक्षित है। पर किसीको दिखाऊंगा नहीं। उसे देखकर दो सांस सुख से ले लेता हूं, आंसू बहाकर हल्का हो जाता हूं। पुराने रोगी को जैसे कोई दवा खुराक बन जाती है, मेरी वेदना को यह चिट्ठी खुराक बन गई है।

चिट्ठी पढ़ भी न पाया था, नायक ने बुलाया। मैं सामने सरल स्वभाव से खड़ा हो गया। बारहों प्रधान हाज़िर थे। सन्नाटा भीषण सत्य की तस्वीर खींच रहा था। मैं एक ही मिनट में गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायक की मर्मभेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रों में गड़ गई, जैसे तप्त लोहे के तीर आंख में घुस गए हों। मैं पलक मारना भूल गया, मानो नेत्रों में आग लग गई हो। पांच मिनट बीत गए। नायक ने गंभीर वाणी से कहा—सावधान ! क्या तुम तैयार हो ?

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीता की रक्तवर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज़ पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों हाथों से उठाकर उसे सिर पर

चढ़ा लिया।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण-भर सन्नाटा रहा। नायक ने एकाएक उसका नाम लिया और क्षण-भर में छः नली रिवाल्वर मेज़ पर रख दिया।

वह छः अक्षरों का शब्द उस रिवाल्वर की छओं गोलियों की तरह मस्तिष्क में घुस गया। पर मैं कम्पित न हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमपूर्वक मैंने रिवाल्वर उठाकर छाती पर रखा और उस स्थान से हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाज़िर था। अपने पत्र और मेरे प्रेम पर इतना भरोसा उसे था। देखते ही लिपट गया। घर गए, चार दिन रहे। वह क्या कहता है, क्या करता है, मैं देख-सुन नहीं सकता। शरीर सुन्न हो गया था, आत्मा दृढ़ थी, हृदय धड़क रहा था ; पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जलपान करके हम स्टेशन की ओर चले। तांगा नहीं लिया, जंगल में घूमते जाने का विचार था। काव्यों की बढ़-बढ़कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्ती में वह मेरे मन की उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और खिली, पसीने और बह चले। मैंने कहा—चलो, कहीं छांह में बैठें।—घनी कुंज सामने थी। वहीं गए। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकालकर उसने कहा—सिर्फ दो ही पके थे, घर के बगीचे के हैं। यहीं बैठकर खाने के लिए लाया था ; एक तुम्हारा, एक मेरा।—मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था। उसका ध्यान उसीके स्वाद में था। मैंने धीरे से रिवाल्वर निकाला, घोड़ा चढ़ाया और कम्पित स्वरों में उसका नाम लेकर कहा—अमरूद फेंक दो और भगवान का नाम लो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा—बहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो।—मेरे धैर्य छूट रह था। मैंने दबे कण्ठ से कहा—अच्छा खा लो।—खाकर वह खड़ा हो गया ; सीधा तनकर। फिर उसने कहा—अब मारो गोली।—मैंने कहा—हंसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली ही मारता हूं, तुम भगवान का नाम लो।—उसने हंसी में ही भगवान का नाम लिया और फिर वह नकली गम्भीरता से खड़ा हो गया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दबाकर कहा—ईश्वर की सौगन्ध ! हंसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।

मेरी आंखों में वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आंखें मिलाकर उसने कहा—

मारो।

क्षण-भर भी विलम्ब करने से मैं कर्तव्यच्युत हो जाता। पल-पल में साहस डूब रहा था। दनादन दो शब्द गूंज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोली छाती को पार कर गईं।

मैं भागा नहीं। भय से इधर-उधर मैंने देखा भी नहीं, रोया भी नहीं। मैंने उसे गोद में उठाया। मुंह की धूल पोंछी। रक्त साफ किया। आंखों में इतनी ही देर में कुछ का कुछ हो गया था। देर तक उसे गोद में लिए बैठा रहा, जैसे मां सोते बच्चे को जागने के भय से निश्चल लिए बैठी रहती है।

फिर मैं उठा। ईंधन चुना, चिता बनाई और जलाई—अन्त तक वहीं बैठा रहा।

बारहों प्रधान हाज़िर थे। उसी स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ। नायक ने नीरव हाथ बढ़ाकर रिवाल्वर मांगा। रिवाल्वर दे दिया। कार्यसिद्धि का संकेत संपूर्ण हुआ। नायक ने खड़े होकर वैसे ही गम्भीर स्वर में कहा—तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते हैं। मैंने कहा तेरहवें प्रधान की हैसियत से मैं पूछता हूं कि उसका अपराध मुझे बताया जाए।

नायक ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया—वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था। हमें उसपर सरकारी मुखबिर होने का सन्देह था।—मैं कुछ कहने योग्य न रहा। नायक ने वैसी ही गम्भीरता से कहा—नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेष्ट एक पुरस्कार मांग सकते हो।

अब मैं रो उठा। मैंने कहा—मुझे मेरे वचन फेर दो। मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त कर दो, मैं उसीके समुदाय का हूं! तुम लोगों में नंगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो तो तुम अपने को देशभक्त कहने से इन्कार कर दो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं घृणा करता हूं। मैं हत्यारों का साथी, सलाही और मित्र नहीं रह सकता! तुम तेरहवीं कुर्सी को जला दो।

नायक को क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर में कहा—तुम्हारे इन शब्दों की सज़ा मौत है। पर नियमानुसार तुम्हें क्षमा पुरस्कार में दी जाती है।

मैं उठकर चला आया। देशभर घूमा, कहीं ठहरा नहीं। भूख, प्यास, विश्राम

और शान्ति की इच्छा ही मर गई दीखती है। बस, अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी है। मेरा वारण्ट निकला था, मन में आया कि फांसी पर जा चढ़ूं. फिर सोचा, मरते ही उस सज्जन को भूल जाऊंगा। मरने में अब क्या स्वाद है? जीना चाहता हूं। किसी तरह सदा जीते रहने की लालसा मन में बसी है। जीते-जी ही मैं उसे देख और याद रख सकता हूं।

भाई की विदाई

यह कहानी आचार्यजी ने १९३३ ई० में लिखी थी। क्रान्तिकारी दस्यु-जीवन पर आधारित इस कहानी में कर्तव्यनिष्ठा और पवित्र प्रेम का सुन्दर निर्वाह हुआ है। पढ़ते-पढ़ते व्यक्ति भावना-विभोर हो उठता है।

दारोगाजी नये-डाल के टूटे थाने में आए थे। अधिकार की पुरानी बू दिमाग में थी, अफसरी की धौंस भी थी, ईश्वर की दया से मोटे-ताज़े, गोरे-चिट्टे खासे गबरू जवान थे। डींग-हांकना उनकी आदत थी। ठाकुर बताते थे, पता नहीं कुर्मी थे कि काछी। थाने में आते ही उन्होंने सिपाहियों पर रौब गांठना शुरू कर दिया, सिपाही भी एक से एक बढ़कर चण्ट, सैकड़ों थानेदारों की आंखें देखे हुए; भला इन्हें क्या गिनते ? जो नये थे, जी हुज़ूर कहकर बुरी-भली सब पी जाते थे। जो पुराने थे वे मुंह पर तो कुछ न कहते; पर पीठ पीछे 'कल का लौंडा' कहा करते। सिपाही और जमादार, हेड और मुहर्रिर सब पुरानी खराद के आदमियों ने मिलकर मिस्कूट कर रखी थी कि किसी मौके पर बच्चूजी को वह चरका दिया जाए कि जिसका नाम। दारोगाजी डाकुओं को पकड़ने के लिए बड़े उत्सुक दीख पड़ते थे। अभी तक अच्छी मुहिम से उनका वास्ता न पड़ा था। उन्हें अपनी निशानेबाज़ी पर नाज़ था। कहा करते थे कि उड़ती चिड़िया को पट से गिरा दूं। सिपाही उन्हें खूब बनाते। तारीफ के पुल बांध देते। थानेदार फूलकर कुप्पा हो जाते। वे अकसर डाकुओं को पकड़ने में फेल होनेवाले थानेदारों को जुलाहा कहा करते थे। उनका कहना था कि वह थानेदार ही क्या जो डाकुओं को गिरफ्तार न करे।

क्रांतिकारी डाकों का ज़ोर था, इन लोगों के आतंक से कसबों और गांवों में घबराहट फैली हुई थी। आए दिन एक न एक वारदात नज़र पड़ जाती थी। दो-एक पुलिसवाले गोली से उड़ा दिए गए थे। इसलिए वे ऐसे मौके पर भिड़ जाने से कतराते थे। पर कार सरकार बड़ा बेढब है—अछताते-पछताते जाना ही पड़ता। परन्तु प्राय: सदैव उन्हें निराश लौटना पड़ता था। ये पढ़े-लिखे जवांमर्द नवयुवक

डाकू मानो जादू के ज़ोर से सफलतापूर्वक डाके मार ले जाते थे। मानो उन्होंने सरकार के अमन-अमान को चुनौती दे रखी थी।

सर्दी के दिन थे—और बारिश हो चुकी थी। अभी भी आकाश पर बदली थी। ठण्डी हवा तीर की भांति चल रही थी। दारोगाजी अंगीठी सामने रखे हुए कुर्सियों पर पैर फैलाए सटक मुंह में दाबे फकाफक धुआं फेंक रहे थे। एक आदमी धीरे से आकर सामने खड़ा हो गया। यह दुबला-पतला पीले रंग का आदमी था। इसकी आंखें गढ़े में घुसी थीं। बदन पर साधारण धोती और कुरता था। सिर पर एक मैली पाग थी। उसे देखते ही हेड मुंशी ने अपने रजिस्टर से नज़र उठाकर देखा और कहा—अरे तुम हो, लाला, आज इधर कैसे भूल पड़े ?

वह व्यक्ति हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर बोला—दीवानजी, मेरी शामत आई दीखती है। मेरी इज़्ज़त बचाइए ; मैं किसी भांति बाहर नहीं।

'कुछ बोलोगे भी या गिड़गिड़ाए जाओगे ? कुछ मालूम भी तो हो ! आखिर मामला क्या है ?'

'यह देखिए सरकार' उसने एक पुर्ज़ा धीरे से मुंशीजी के सामने बढ़ा दिया। पुर्ज़ा देखते ही मुंशीजी उछल पड़े ; उन्होंने थानेदार साहब की ओर देखकर कहा—देखिए हुज़ूर, यह मामला टेढ़ा मालूम होता है। रिवोल्यूशनरी पार्टी का पुर्ज़ा है, लाला से पांच हज़ार रुपये तलब किए हैं।

दारोगा साहब ऐसे चमके मानो बिजली घूम गई हो। उन्होंने हुक्के की नाल एक ओर सरकाकर पुर्ज़े के लिए हाथ बढ़ाकर कहा—देखें, देखें ! —पुर्ज़ा पाकर वे गौर से पढ़ गए। उन्होंने मूंछों पर ताव दिया, होंठ काटे, फिर धीरे-धीरे कहा—यह काम भी उन्हीं शैतानों का है। जिनकी बाबत खबरदार रहने को साहब ने लिखा है।—इसके बाद वे लाला से धड़ाधड़ सवाल करने लगे। दारोगाजी की सरगर्मी देख लालाजी को तसल्ली हुई। उन्होंने कहा—हुज़ूर, मेरे घर में पांच रुपये भी नहीं, पांच हज़ार कहां से दूंगा। और यह तो धींगा-मुश्ती हुई। सरकार की अमलदारी में ऐसा अंधेर, हुज़ूर माई-बाप हैं।

दारोगाजी कुर्सी से उठकर टहलने लगे। वे बीच-बीच में ज़मीन पर पैर पटकते और होंठ काटते जाते थे। कभी-कभी एकाध शब्द उनके मुंह से भी निकल जाता था। अन्त में उन्होंने मुंशी को रिपोर्ट लिखने का हुक्म दिया। फिर लाला से बोले—तो अगर तुम लिखे ठिकाने पर पांच हज़ार रुपया न पहुंचाओगे तो वे घर में डाका

डालेंगे, क्यों ?

'जी हां, हुज़ूर पुर्ज़े में तो यही लिखा है।'

'ठीक नौ बजे रात को ?'

'जी हां, सरकार।'

'अच्छी बात है, देख लिया जाएगा। तुम किसीसे गांव में ज़िक्र न करना, वरना वे भाग जाएंगे या आएंगे ही नहीं। मैं एकबारगी ही इन बदमाशों को गिरफ्तार किया चाहता हूं। समझे। तुम बेखटके घर जाकर बैठो। हम ठीक वक्त पर पहुंच जाएंगे।'

'हुज़ूर, मैं कहीं का न रहूंगा। गरीब बनिया हूं, सरकार मेरी जान-माल···'

'घबरा मत बूढ़े' दारोगाजी ने डांटकर कहा—जा, सब ठीक हो जाएगा।

लाला ने दक्षिणा निकाली, दीवानजी की गद्दी के नीचे सरका दी, और कहा—मैं किसी लायक तो नहीं, पर जो बन पड़ेगा खिदमत से बाहर नहीं।

'बेफिकर रहो लाला।' मुंशी ने हंसती हुई आंखों से दारोगाजी को घूरते हुए कहा। लाला चला गया।

दारोगाजी ने पूछा—क्यों आसामी कैसा है ?

'लखपती है हुज़ूर, आसपास के गांवों में लेन-देन करता है, मगर है मनहूस, मक्खीचूस। आज चंडूल फंसा है।'

'अच्छा, देखें तो कितने की बोहनी हुई ?'

'यह देखिए हुज़ूर, मुंशी ने सौ रुपये का नोट गद्दी के नीचे से निकालकर दारोगाजी के सामने पेश कर दिया। दारोगाजी की पांचों घी में और सिर कढ़ाई में।

'कमालुद्दीन, तुम पुराने तजुर्बेकार हो, तुम किस-किसको ले चलना चाहते हो ? तुम्हें तो चलना ही होगा।'

'आखिर आप करना क्या चाहते हैं हुज़ूर ?'

'इसके क्या मानी ? डाकुओं को गिरफ्तार करेंगे।'

'हुज़ूर, इस खयाल में न रहना, वे मामूली डाकू नहीं हैं।'

'तुम्हारी राय में वे जिन हैं ?

'जिन हैं या फरिश्ते यह तो खुदा जाने, मगर देवीसिंह आवाज़ पर गोली सर करता है, उसकी गोली खाली जाना जानती ही नहीं।'

'और हम योंही गाबदू हैं, मियां, क्या बुज़दिलों की जैसी बातें करते हो। कान्स्टेबिली करते उम्र गुज़ार दी। मालूम होता है बुढ़ापे में तुम्हारी अक्ल को मोर्चा लग गया है?'

इसके बाद उन्होंने कमालुद्दीन की तरफ से मुंह फेरकर दूसरे एक जवान कान्स्टेबिल से कहा—तुम कहो रामदीन, क्या कहते हो?

'हम सरकार के साथ सिर कटाने को तैयार हैं। जौन आप हुक्म दें वहै करें, सरकार का नमक खात हैं।'

'शाबाश! तुम्हें साथ रहना होगा। और किसे तुम पसन्द करते हो?'

'सरकार, गुलाम अहमद और गोपाल पांडे भी अच्छे बांके जवान हैं। इन्हें भी ले लेना चाहिए।'

कमालुद्दीन ने बीच ही में रोककर कहा—हुज़ूर, अब बीच में बोलना ही पड़ा, हुज़ूर ही की तरह ये लोग भी नये रंगरूट हैं। अभी कवायदें की हैं—मुहिम नहीं देखी, सिर्फ पेशाब करनेवालों के दफा ३४ में चालान किए हैं। ये वहां से मुंह की खाकर आवेंगे।

दारोगाजी ने क्रुद्ध होकर कहा—कमालुद्दीन, तुम बहुत मुंहज़ोर हो गए हो! मुझे साहब के पास तुम्हारी रिपोर्ट करनी होगी। तुम्हारी राय में तुम्हारे सिवा और किसीके सिर में दिमाग ही नहीं है।

शह पाकर रामदीन बोला—हुज़ूर, कमालुद्दीन तो दारोगा होने लायक है। बेचारे को कान्स्टेबिल बना रखा है। हुज़ूर, सिफारिश कर दें तो अच्छा।

कमालुद्दीन वहां से खसक गया। और दारोगाजी ने अपनी पसन्द के आठ मज़बूत सिपाही चुनकर उन्हें चाक-चौबन्द रहने, गोली, बारूद, बन्दूक, किरच ठीक रखने का हुक्म दे दिया। गांव कोई पांच-छः कोस पर था। पार्टी ने तीसरे पहर ही कूच कर दिया। रास्ते-भर दारोगाजी अपने दिली हौसले बयान करते जा रहे थे। भांति-भांति की तजवीज़ें सोची जा रही थीं। इरादा पक्का यह था कि एक भी डाकू बचने न पाए, सब गिरफ्तार कर लिए जाएं। सब अपनी-अपनी कह रहे थे। सिर्फ कमालुद्दीन चुप था। वह चुपचाप कुछ सोचता हुआ चल रहा था। गांव के कुछ फासले पर एक नाला था। उसपर एक पुराना पुल था। नाला सूखा था। यह सदर सड़क से ज़रा हटकर था। इसके पास ही तीन-चार बड़े-बड़े पेड़ थे। वहां पहुंचते ही कमालुद्दीन रुक गया। उसने चारों तरफ देखा और कहा—

दारोगाजी, यही जगह ठीक है, यहीं हम लोगों को ठहरकर देखना चाहिए कि क्या होता है।

'यह क्यों ? मैं तो मौके पर रहूंगा।'

'हुज़ूर, आपके बाल-बच्चे हैं, आप नौजवान हैं, नौकरी में पेट भरने जितनी तनखा मिलती है, जान देने जितनी नहीं, आप पहली बार मुहिम पर आए हैं, वे लोग पक्के खिलाड़ी हैं। आप मतलब से मतलब रखिए वरना यहां से जीता-जागता लौटना मुश्किल है।'

सन्ध्या हो रही थी, दारोगाजी और कान्स्टेबिल सभी ने कमालुद्दीन की बात सुनी, सब सन्न हो गए। दारोगाजी का धीरज भी भागने लगा और जोश भी ठण्डा पड़ गया। उन्होंने सोचा, चिड़िया का शिकार करना और डाकू से लड़ना एक ही बात नहीं है। उन्होंने कहा—तब तुम्हारी क्या राय है ?

'यहीं चुपचाप बैठिए।'

'इसके बाद ?'

'वे लोग शर्तिया यहीं से होकर गुज़रेंगे। आप पेड़ पर चढ़ जाइए और जो कुछ नज़र आए देखते रहिए। हम लोग पुलिया में छिपे बैठे रहेंगे।'

'इससे फायदा ?'

'कार सरकार भी होगा और जान-जोखिम न होगी।'

'मगर कमालुद्दीन, वे लोग शायद आएंगे ही नहीं।'

'हुज़ूर, वे ज़रूर आएंगे, इस मनहूस बनिये को लूटेंगे भी, और हम लोग कुछ न कर सकेंगे।'

दारोगाजी वहीं बैठ गए। डाकू पकड़ने का उत्साह अब बहुत कम रह गया था। उन्हें सलामती से वापस जाने ही में भलाई दीखती थी। कमालुद्दीन ने कहा—हुज़ूर, ये वारदातें तो रोज़ के धन्धे हैं, क्या हम लोगों के सिर गाजर-मूली हैं कि उन्हें हथेली पर लिए फिरें। हां, ज़ाप्ते की कार्रवाई होनी चाहिए।

दारोगाजी ने सिपाहियों से कहा—क्यों भाइयो, तुम्हारी क्या राय है ?

'हुज़ूर, कमालुद्दीन ठीक कहता है, यहां जान किसे भारू है। हां, ज़ाप्ते की कार्रवाई होनी चाहिए।

दारोगाजी ने घबराकर कहा—ज़ाप्ते की कार्रवाई किस तरह होगी कमालुद्दीन ?

'वह सब मैं अर्ज करूंगा। आप देखते रहिए। वह तरकीब काम में लाऊं कि सांप मरे और लाठी भी न टूटे।'

'तब तो हम लोग यहीं से फैर करेंगे।'

'खुदा के लिए ऐसा न करना, हुजूर, इससे डाकुओं का कुछ न होगा। हमारी कम्बख्ती आ जावेगी।'

अंधेरा बहुत हो गया था। एकाएक घोड़ों की टाप की ध्वनि सुनाई दी।

कमालुद्दीन ने कहा—हुजूर, वे लोग आ रहे हैं। खबरदार रहिए, आप पेड़ पर चढ़ जाइए, हम लोग इस पुलिया में घुसे बैठते हैं। कमालुद्दीन और उसके साथी बिना विलम्ब किए पुलिया में घुस बैठे। घोड़ों की टाप निकट सुनाई दे रही थी। दारोगाजी अकेले पेड़ के पास खड़े थे। एक साइकिल सर्र से निकल गई और क्षण-भर में ही सीटी की आवाज़ सुनाई दी।

दारोगाजी को पसीना आ गया। उन्होंने दबी ज़बान से कहा—कमालुद्दीन, मेरे जूते का फीता खोलो—फीता—मैं पेड़ पर चढ़ नहीं सकता, जल्दी।

'हुजूर, खड़े मत रहिए—लेट जाइए—जल्दी, पेड़ पर चढ़िए।' एक साइकिल और सर्र से निकल गई और सीटी की आवाज़ गूंज गई।

दारोगाजी के शरीर से पनाला बह निकला। वे लेटकर खिसकते-खिसकते नाले के मुंह पर आए और बोले—कमालुद्दीन, मुझे भी यहीं छिपाओ, ओह साला जते का तस्मा खुला ही नहीं।

कमालुद्दीन ने चुपचाप उनका मुंह भींच लिया। सवार पुल पर होकर गुज़र रहे थे। एक आदमी पुलिया पर खड़ा रह गया। कमालुद्दीन ने संकेत से दारोगाजी से कहा—उसे अगर गिरफ्तार किया जाए तो बहुत मतलब हल हो सकता है।

'चुप रहो, साले के हाथ में छःनला पिस्तौल है।' दारोगाजी ने कांपते स्वर में कहा। और वे लोग दम रोककर मुर्दों से बाजी लगाकर पड़ गए।

नायक छत पर खड़ा था। उसके एक हाथ में सर्चलाइट और दूसरे में भरा हुआ रिवाल्वर था। दो और रिवाल्वर उसके जेबों में थे। वह प्रत्येक डाकू की गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था और साहसिक शब्दों में अंग्रेज़ी में प्रत्येक को आज्ञा दे रहा था। द्वार पर दो डाकू बन्दूक ऊंची किए मुस्तैद खड़े थे। गृहपति और गृहिणी बीच आंगन में चारपाई पर चुपचाप बैठे थे। उनके सिर पर पिस्तौल

ताने एक डाकू खड़ा था। डाकू घर में से माल ला-लाकर गट्ठर बांध-बांधकर आंगन में ढेर कर रहे थे। सब काम चुपचाप हो रहा था। बीच-बीच में बाहर के प्रहरियों की सांकेतिक सीटी, नायक की अस्फुट आज्ञा और सांप की भांति लहराती उज्ज्वल सर्चलाइट की रोशनी—बस इसीका अस्तित्व था। रात खूब अंधेरी थी।

घर के एक कोने से किसी बालिका के चीत्कार की ध्वनि आई और बन्द हो गई। नायक ने सांकेतिक भाषा में पूछा—क्या है ?

और उसे कुछ भी उत्तर न मिला। वह एकदम आंगन में कूद पड़ा। गृहपति से पूछा—यह चिल्लाया कौन ?

गृहिणी ने मर्माहत भाषा में कहा—मेरी लड़की, वह अपने कमरे में छिपी थी। तुम लोगों के डर से हमने उसे छिपा दिया था। कोई पापी उसे सता रहा है। हाय, तुम्हें भगवान का भी भय नहीं ?—गृहिणी ने हृदय विदीर्ण करनेवाली हाय की।

नायक बिजली की भांति लपककर वहां पहुंचा। देखा एक किशोरी बालिका धरती पर बदहवास पड़ी है। उसके मुंह में कपड़ा ठुंसा है और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। एक डाकू उसके साथ पाशविक कर्म किया चाहता है। बालिका इस अवस्था में भी छटपटा रही है।

डाकू के सावधान होने से प्रथम ही नायक की गोली ने उसकी खोपड़ी को चकनाचूर कर दिया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने बालिका के मुंह से वस्त्र खोला और सहारा देकर खड़ा किया। गोली चलने और एक आदमी की खोपड़ी चूर-चूर होने तथा अपने ऊपर भयानक आक्रमण होने से बालिका विमूढ़ हो रही थी। वह थर-थर कांप रही थी और उसकी दृष्टि ज़मीन पर झुकी थी। वह रो भी न सकती थी।

नायक ने धीरे से घुटने के बल बैठकर करुण-कोमल स्वर में कहा—बहिन, इस पतित-पापी को क्षमा कर दो, यह दुष्ट अब तो पूरा दण्ड पा चुका।

बालिका ने साहस करके नायक की ओर देखा, वह कुछ देर स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। अभी भी नायक के हाथ में पिस्तौल थी। नायक घुटने के बल सिर झुकाए खड़ा 'बहिन क्षमा, बहिन क्षमा !' शब्द बार-बार कह रहा था। बालिका साहसपूर्ण नायक के पास आई और उसका नकाब पकड़कर खींच लिया। तप्त अंगार के समान नायक का मुख, नाममात्र की रेखा के समान

उसकी मूंछें और आंसू से छलछलाती हुई बड़ी-बड़ी आंखें, अनुनय के लिए फड़-कते हुए होंठ, यह देखकर बालिका स्तम्भित रह गई। उसने रोना चाहा पर रो न सकी। क्रोध करना चाहा पर क्रोध भी न कर सकी। उसने नायक की ओर से मुंह फेर लिया। नायक धरती में लेट गया—उसने बालिका के पैर छूने के लिए हाथ बढ़ाया। बालिका का भय बहुत कुछ दूर हो गया था। उसने कुछ क्रुद्ध और कुछ दुःख-भरे स्वर में कहा :

'ऐसे भले हो तो यह काम क्यों करते हो ?' बालिका के होंठ कांपने लगे।

युवक ने कहा—बहिन, यह सब इस अभागे देश के लिए, जिसके लिए हमने प्राण और शरीर दे दिया है। इस धन का खरीदा हुआ अन्न का एक दाना भी हमारे लिए गोमांस के समान है, हम निरुपाय होकर ही यह सब करते हैं।

'फिर इसे क्यों मार डाला ?'

'इस पापी का अपराध इससे भी अधिक था। यह दण्ड पाकर भी यह अभी पाप से उन्मुक्त नहीं हुआ—जब तक तुम क्षमा न करो। इसने हमारे दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। पृथ्वी-भर की स्त्रियां हमारी बहिनें हैं। यह तो हमारा व्रत है।—युवक नायक का सुन्दर मुख लाल हो गया। उसके चारों ओर उज्ज्वल आभा फैल गई। उसने टपाटप आंसू गिराते हुए कहा—बहिन, इस पापी को क्षमा कर दो ! वरना मैं स्वयं को गोली मार लूंगा।—उसने पिस्तौल उठाकर अपने सिर में लगा ली।

बालिका दौड़ी, उसने पिस्तौल युवक से छीन ली। फिर क्षण-भर चुप खड़ी रही। इसके बाद उसने भर्राए स्वर में कहा—खड़े हो जाओ। ज़मीन में क्यों पड़े हो ?

युवक ने कहा—मेरे साथी को जब तक तुम क्षमा न करोगी, खड़ा न हूंगा। या तो क्षमा करो या मुझे गोली मारो, पिस्तौल तुम्हारे हाथ में है। उसमें अभी चार गोलियां हैं। निशाना साधने की ज़रूरत नहीं। मेरी खोपड़ी में लगाकर घोड़ा दबा दो।

युवक नायक की आंखें सूख गईं। उसके स्वर में तीखापन भी था। बालिका आगे बढ़ी, उसने युवक का हाथ पकड़ लिया और कहा :

'उठो-उठो।'

'तब क्षमा किया ?'

'किया'—बालिका रोने लगी। पिस्तौल उसके हाथ से छूट गई। युवक ने उसका आंचल आंखों से लगाया और कहा :

'बहिन, अपने भाई को कुछ आज्ञा करो।'

बालिका चुप रही। युवक ने कहा—अगर तुम्हारी इच्छा नहीं तो हम यह धन नहीं ले जाएंगे। कहो क्या कहती हो ?—बालिका कुछ न बोली।

युवक कुछ देर बालिका की ओर देखता रहा फिर वहां से तेज़ी से बाहर आ गया। बाहर लूट का सामान इकट्ठा था, सब डाकू चुपचाप नायक की प्रतीक्षा में खड़े थे। नायक ने अधिकारसम्पन्न स्वर में कहा—यहां से एक पाई भी नहीं ले जाई जाएगी। तुम लोग बाहर चले जाओ। वहां, उस कमरे में तुम्हारे साथी का शव पड़ा है, उसे भी ले जाना होगा।

शव को लेकर डाकू लौटने लगे। सबके पीछे नायक नीचा सिर किए जा रहा था। पीछे से किसीने मृदु स्वर से पुकारा—ठहरो।

युवक ने रुककर देखा—बालिका है। वह लौटकर उसके सम्मुख खड़ा हो गया। उसने तीखे स्वर में कहा :

'क्या कहती हो ?'

'लौटे क्यों जा रहे हो ?'

'यह हमारी मर्ज़ी है।'

'यह सब ले क्यों नहीं जाते ?'

'यह भी हमारी मर्ज़ी है।'

'क्या नाराज़ हो गए ?' बालिका रो उठी। नायक की आंखें भीग गईं।

उसने कहा—तुम्हारा क्रोध भाई के ऊपर से नहीं गया, उस भाई के ऊपर से जिसने जीवन और मृत्यु तक साथ देनेवाले साथी को पागल कुत्ते की भांति मार डाला—सिर्फ बहिन का अपमान करने के कारण, और जिसने उस पाप को अपने हृदय पर ग्रहण कर क्षमा मांगी। तुम लोग हमारी अज्ञात बहिनें हो, जो उन साहसी भाइयों के दुःख को नहीं जानती हो, जिनके हृदय धांय-धांय जल रहे हैं और जिन्होंने जवानी की सारी वासनाएं त्यागकर संन्यास ले लिया है, जो फांसी की रस्सियां गले में डाले मृत्यु को ढूंढ़ते फिरते हैं। जिन्होंने मृत्यु को वरा है, और जिनसे अपनी लाखों बहिनों का नंगा-भूखा रहना नहीं देखा जाता। तुम लोग उनसे सहानुभूति तक नहीं रख सकतीं ! तुम्हारे छोटे-से घर की चहारदीवारी ही तुम्हारे जीवन

और अस्तित्व का केन्द्र है। तुम भारत की अयोग्य पुत्रियां हो, जब तक तुम स्वार्थ और अज्ञान के गढ़े में हो, देश की करोड़ों बहिनों की गुलामी नहीं दूर हो सकती।

सतर्क स्वर में युवक ने इतनी बातें कहीं।

बालिका रो रही थी। उसने धीरे-धीरे आकर युवक का हाथ पकड़ लिया। उसने कहा—मैं हाथ जोड़ती हूं, इसे तुम ले जाओ, तुम्हें ले जाना पड़ेगा।

'तुम्हारा दिल दुखेगा।'

'तुम न ले जाओगे तो मैं जान खो दूंगी।'

युवक नायक ने साथियों को संकेत किया। वे रुक गए। वह गृहपति के पास जाकर बोला—क्या आपके पास और धन-सम्पत्ति है ?

'अब कुछ नहीं है।'

'इसमें से जितना चाहो रख लो।'

गृहिणी प्रभावित हो रही थी, उसने एक भारी-सा सोने का ज़ेवर उठाकर कहा—वैशाख में तुम्हारी बहिन की शादी करनी है उसके लिए यह काफी है। मेरे पुत्रो, जाओ, यह सब तुम ले जाओ। भगवान तुम्हारा कल्याण करे। युवक ने गृहिणी के पैर छुए, साथियों ने गट्ठर उठाए और चल दिए।

बालिका युवक के पीछे जा रही थी, जब उसने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा, उसने पुकारा :

'भाई !'

युवक हर्षातिरेक से विह्वल होकर लौटा :

'कहो बहिन, क्या कहती हो ?'

'तुम्हें आना पड़ेगा।' बालिका ने मन्द मुस्कान से कहा।

उस अभेद्य अन्धकार में वह मुस्कान को देख तो न सका, पर अनुभव करके बोला :

'आऊंगा बहिन !'

'नाम तो बताओ।'

'देवीसिंह।'

'अच्छा, वैशाख कृष्णा तेरस।'

'याद रहेगा ?' बालिका ने फिर पूछा।

'अवश्य, यदि स्वाधीन रहा तो आऊंगा ज़रूर।'

'आना ही पड़ेगा।'

'आऊंगा बहिन!'

नायक हंस पड़ा, फिर रो पड़ा। उसने बालिका के पैर छुए और मंडलीसहित अन्धकार में डूब गया।

'दारोगाजी, अब आप निकल आइए, वे लोग चले गए।'

'भई, अच्छी तरह देख-भाल लो!'

'बेखटके निकल आइए।'

दारोगाजी ने निकलकर वर्दी झाड़ी और जूते के फीते कसते हुए बोले—इन साले जूतों ने आज मरवाया था।

कमालुद्दीन ने कहा—खैर, अब ज़ाब्ते की कार्रवाई करनी चाहिए।

'ज़ाब्ते की कार्रवाई कैसी?'

'दो सिपाहियों को गांव के पूरब की ओर जाकर फायर करने को कहिए। दो सिपाही पीछे से हवा में फायर करें। आप यहीं से तमंचा दागना शुरू कर दें। वर्दी फाड़ डालिए और सिपाहियों की वर्दियां भी चिथड़ा कर डालिए।'

'इसके क्या माने?'

'आखिर डाकुओं से मुठभेड़ भी क्या मामूली हुई?'

दारोगाजी इस भय की घड़ी में भी हंस पड़े। उन्होंने कहा—उस्ताद, तुम्हारी अक्ल को हम मान गए।

उन्होंने पिस्तौल ऊंचा करके चार-पांच फायर कर दिए। कमालुद्दीन ने मातादीन की पीठ पर हाथ मारकर कहा—देखते क्या हो, पूरव की ओर ही दौड़ जाओ। हां, वर्दी को फाड़ दो। और दो-चार हवा में फायर कर दो। थोड़ी ही देर में बन्दूकों और पिस्तौलों की आवाज़ सुनकर गांव-भर में हलहल मच गई। दारोगाजी वर्दी फाड़े, नंगे सिर, कीचड़ में सने हुए दल-बलसहित लाला के घर पर आ धमके। साथ ही गांव के हज़ारों आदमी थे।

लाला नीचा सिर किए बाहर आए। दारोगाजी पलंग पर बैठ गए और बोले—रिपोर्ट लिखाओ लाला, आज जान हथेली पर करके डाकुओं का मुकाबिला किया गया। कहो क्या-क्या गया; क्या-क्या रहा।

लालाजी ने दबी ज़बान से कहा—हुज़ूर, आपकी दया से डाकू भाग गए। वे

कुछ भी न ले जा सके।

दारोगाजी की बांछें खिल गईं। परन्तु कमालुद्दीन चक्कर में थे। उन्होंने संकेत से दारोगाजी से कहा—यहां तो कुछ दाल में काला नज़र आता है।

'यह क्या ?'

'यह नामुमकिन है कि डाकू बिना कुछ लिए भाग गए हों ?'

'हां, यह तो साफ है ?'

'फिर लाला ऐसा क्यों कहता है ?'

'यही तो पूछना चाहिए।'

दारोगाजी ने डपटकर कहा—ठीक रिपोर्ट लिखाओ जी! कमालुद्दीन, ले जाओ, ज़रा लाला के होश ठीक कर दो—यहां ये घबरा रहे हैं।

कमालुद्दीन लाला को एक तरफ ले गया। कुछ क्षण में वातचीत समाप्त हो गई।

मुनासिब रिपोर्ट लिखकर दारोगाजी दल-बलसहित वहीं सो रहे। सुबह उनके लिए पूरियां तली गईं। खूब डाटकर मुट्ठी गर्म करके दारोगाजी ने थाने की राह ली।

रोज़नामचे में लिखा गया :

'खादिम खुद मौके पर चन्द बहादुर सिपाहियों को लेकर पहुंचा। डाकू ४० के करीब थे। सब हथियारबन्द। रात-भर गोली चलती रही। यहां तक कि मेरी और सिपाहियों की वर्दियां भी फट गईं और चोट भी आई। मगर चूंकि डाकू बहुत ज़्यादा थे और सब हथियारों से लैस थे—वे भाग गए। मगर डाका न पड़ सका—और एक पाई का माल भी नहीं लूटा गया।

कहना नहीं होगा कि दारोगाजी की कारसाज़ी की खूब तारीफें की गईं।

वैशाख कृष्णा तेरस थी। कृष्णा का आज ही विवाह था। घर में धूम थी। बरात आ गई थी। ज्यों-ज्यों दिन ढल रहा था कृष्णा का उद्वेग बढ़ता जाता था। वह प्रतिक्षण देवीसिंह के आने की प्रतीक्षा में थी। संध्या हो गई। दिये जल गए। द्वार पर बाजे बज रहे थे। बरात भोजन कर रही थी, लोग दौड़-धूप कर रहे थे। कृष्णा अब भी उस आगन्तुक की प्रतीक्षा में थी।

एक दुबला-पतला युवक आया और इधर-उधर देख घर में घुस गया। उसका

वेश साधारण था। उसने गृहपति को पहचानकर कहा—लाला जी, मुझे आपसे कुछ कहना है।

देवीसिंह आज आएगा, लाला को भी उसकी प्रतीक्षा थी। उन्होंने सतर्क दृष्टि से युवक को देखकर कहा—तुम कौन हो ?

'मैं देवीसिंह का सन्देश लाया हूं।'

'वे कहां हैं ?'

'यह मैं नहीं बता सकता, कृपाकर क्षण-भर के लिए कृष्णा बहिन से मेरी मुलाकात करा दीजिए।'

लाला ने चुपचाप उसे गृहिणी के पास पहुंचा दिया। कृष्णा ने उसे देखा और कहा—क्या वे न आ सकेंगे ?

'नहीं बहिन, यह संभव ही न रहा। उन्होंने क्षमा मांगी है और आशीष दी है।'

'वे हैं कहां ?' बालिका आशंका से पीली पड़ गई।

'निकट ही, पर देख न सकोगी !'

'क्या कैद हो गए ?'

'सब कुछ हो गया, बहिन।'

'क्या हो गया ? खुलासा कहो।'

'नहीं, आज इस समय वह बात कहने योग्य नहीं।' युवक ने बड़ी ही कठिनाई से उमड़ते हृदय को रोका।

बालिका सूख गई। उसने कहा—तुम्हें कहना होगा।

'नहीं बहिन, न कह सकूंगा।'

'कहो, कहो, मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं।' वह रोने लगी।

युवक ने सिर झुकाकर कहा—तुम्हारी आज्ञा मैं टाल नहीं सकता। बहिन, उन्हें फांसी की सज़ा हो गई है।

बालिका आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। उसके मुंह से बोल न निकला। युवक ने दूसरी ओर मुंह फेरकर कहा :

'कल प्रातःकाल पांच बजे उन्हें फांसी होगी। आज का मंगल-कार्य समाप्त होने के ही लिए उन्होंने एक सप्ताह की अवधि ली थी।'

बालिका अब भी मुंह फाड़े खड़ी रही। वह बेंत की भांति कांपने लगी ; वह मूर्च्छित-सी हो रही थी।

युवक ने गृहिणी की सहायता से उसे बिस्तर पर लिटा दिया। उसने कहा—बहिन, मैंने समझा था तुम वीर भाई की वीर बहिन हो, सब सुनोगी ?

'मुझमें साहस है, पर मैं विवाह नहीं करूंगी ! मां......'

'नहीं बहिन, अगर तुम विवाह नहीं करोगी तो वे कल हंसते और गीत गाते हुए फांसी पर न जाएंगे। वे विरोध करेंगे और उन्हें घसीटकर ले जाया जाएगा। यही उनका निर्णय है, क्या यह ठीक होगा बहिन ?'

'उनकी आज्ञा क्या है ?' बालिका ने रोते हुए कहा।

'तुम्हारा विवाह ठीक-ठीक सकुशल समाप्त हुआ है यह मैं अपनी आंखों से देखूं और समय पर उन्हें सूचना दे दूं।'

'विवाह हो जाएगा, तुम देख लेना।' बालिका के चेहरे पर मुर्दनी छा रही थी ; पर आंसू न थे।

'उनका एक और भी सन्देश है।'

'वह क्या है ?'

'उन्होंने कहा है, अब तुम्हारी जैसी वीर-बालाओं को देश के लिए बलिदान होने की ज़रूरत है।'

'उनसे कहना, मैंने आज से अपने प्राण और शरीर देश के लिए दिए, पर मैं उनका पथ न ग्रहण कर सकूंगी।'

'बहिन, प्रत्येक प्रतिभाशाली मस्तिष्क अपने पथ का निर्माता है।'

'एक निवेदन और है।'

युवक ने बगल से नोटों का एक बण्डल निकाला और कहा—कुल दस हज़ार हैं। जब तक हममें से एक भी जीवित है, आज से इसी समय प्रतिवर्ष इतनी ही रकम आपको इसी स्थान पर मिलती रहेगी। आप चाहे भी जहां रहें, आज के दिन इस समय यहीं उपस्थित रहें।—उसने नोट बालिका के आगे बढ़ाए।

बालिका ने कहा—जबतक तुममें से एक भी जीवित है यह रकम तुम मेरी तरफ से देश के किसी अच्छे काम में लगाते रहो। पर प्रतिज्ञा करो कि भविष्य में यह रकम किसी अनुचित मार्ग द्वारा न प्राप्त की जाएगी और किसी भी हिंसक उपयोग में न लाई जाएगी।

'आपकी आज्ञा का यथावत् पालन होगा। और आपको उसकी कैफ़ियत मिल जाएगी।'

इसके बाद बातचीत बन्द हुई। विवाह-मंडप में मंगल-वाद्य बज रहे थे। पुरोहित उपस्थित थे। बालिका चुपचाप विवाह-वेदी पर जा बैठी। विवाह-कार्य संपन्न हुआ। युवक उसी रात विदा हो गया।

वह जेल के फाटक पर उपस्थित थी। विवाह की हल्दी उसके शरीर पर थी और कंगना हाथ में। लाश उसने ले ली। उसने देर तक उस वीर युवक का तेज-पूर्ण मुख देखा, अभी भी शरीर में कुछ गर्मी और चेहरे पर लाली थी। उसने अपने आंचल से उसका मुंह पोंछा, रोली का टीका लगाया, राखी भी बांधी और माथा टेककर प्रणाम किया। इसके बाद उसने वहीं खड़े होकर मन ही मन कुछ प्रण किया, और चल दी।

अभाव

यह कहानी सन् १९२८ में लिखी गई थी जबकि लाला लाजपत राय का बलिदान हुआ था। कहानी में एक ओर देश की तात्कालिक अवस्था की झलक मिलती है, दूसरी ओर पंजाबकेसरी के उज्ज्वल चरित्र की झांकी।

प्रशान्त तारकहीन रात्रि का गहरा अंधकार पृथ्वी पर छा रहा था। अमृतसर की प्रशस्त सड़कों पर मनुष्य का नाम न था। उसके दोनों पार्श्वों पर जलती हुई लालटेनों के खम्भे निस्तब्ध खड़े बहुत अशुभ मालूम हो रहे थे। जिन मकानों की खिड़कियों में नित्य दीपमालिका जगमगाती थी, उनमें भी गहरा अन्धकार छा रहा था। एक विशाल अट्टालिका में एक युवक बैठे अन्धकार में दूर तक आकाश की ओर देख रहे थे। वे उस अभेद्य अन्धकार में मानो कुछ देख रहे थे। उनका मन उन्हें सुदूर फ्रांस के युद्धक्षेत्र में ले उड़ा था—चारों तरफ प्रचंड युद्ध की ज्वाला, तोपों का गर्जन, ज़हरीली गैसों की सरसराहट, आहतों की चीत्कार, बम-प्रपात का हाहाकार! मानो वे उस शून्य आकाश में जागरित-से देख रहे थे। उन्हें सहस्रों मरणोन्मुख व्यक्तियों में से सहसा एक अद्भुत मुख की आलोकित आभा दीख पड़ी, जो लाशों के ढेर में से सहायता के लिए संकेत कर रहा था। किस प्रकार प्राणों पर खेलकर वे उसकी सहायता को अग्रसर हुए थे, और किस प्रकार उस मुख के वीर स्वामी को उत्कृष्ट वीरता के उपलक्ष्य में विक्टोरिया क्रॉस मिला था—डेढ़ वर्ष पूर्व का वह चित्र उनकी आंखों में घूम गया। वे एक हाय कर उठे, हाय! वही वीर पुरुष, वही सिंह-नर, वही युवा, सुन्दर युवा, जो कल मेरे साथ भोजन कर गए थे, अभी-अभी कुछ घंटे प्रथम हंस रहे थे, जलियानवाला बाग में मुर्दा पड़े हैं! वह उनका एकमात्र ढाई वर्ष का शिशु भी वहीं लहू-लुहान पड़ा है। उनकी लाश उठाने का इस समय कोई प्रबन्ध नहीं। ओफ! हत्यारे डायर! युवक सिसकियां लेकर रोने लगे—रोते-रोते ही धरती पर लोट गए।

टनन्-टनन् ! टेलीफोन चिल्ला उठा। युवक ने चौंककर देखा। उठकर कहा—हलो, आपका नाम ?

'क्या आप डाक्टर साहब हैं ? मैं धनपत राय हूं।'

'जी हां, कहिए।'

'ओह, मेरी स्त्री के मरा बच्चा हुआ है, वह बेहोश है। कृपा कर अभी आइए, वरना उसके प्राण बचना कठिन है।'

'परन्तु यह तो बड़ा कठिन है, शहर में तो मार्शल लॉ हो रहा है, कौन इस समय घर से बाहर निकलेगा ? जान किसे भारी है। यह डायर की अमलदारी है।'

'परन्तु डाक्टर साहब ! वह मर रही है, क्या आप भी मेरा साथ न देंगे ? मैं आपका बीस वर्ष का पुराना मित्र, सहपाठी और भाई हूं।'

युवक का माथा सिकुड़ गया। उसके होंठ कांपने लगे।

'हलो'

'जी हां।'

'वह ठंडी हो रही है, घर की स्त्रियों का रोना बन्द करना मुझे कठिन हो रहा है।'

'मैं आ रहा हूं।'

डाक्टर ने जल्दी से वस्त्र पहने और वे उस शून्य राजमार्ग में अपनी ही पद-ध्वनि से स्वयं चौकन्ने होते हुए चले। नाके पर पहुंचकर गोरे सार्जन्ट ने बन्दूक का कुन्दा उनकी ओर घुमाकर कहा—कौन !

उन्होंने निकट जाकर कहा—मैं हूं डॉ० मेजर आर० एल० कपूर, एम० डी०।

'मगर आप जा नहीं सकते, आप पास दिखाइए।'

'पास मेरे पास नहीं है। एक रोगिणी मर रही है, मेरा कर्तव्य है कि मैं जाऊं।'

'वैल, तुम कीड़े के माफक रेंगकर जा सकता है।'

'क्या कहा, कीड़े के माफक ?'

'यस, इस गली में इसी तरह जाना होगा। नीचे झुको।'

'कदापि नहीं। मैं भी अफसर हूं—और ३५ नं० रेजीमेंट का कर्नल मेजर हूं।'

'मगर काला आदमी हो।'

'इससे क्या ?'

'कीड़े के माफक रेंगकर जाओ—तुम हिन्दुस्तानी !' यह कहकर गोरा यम-वज्र की तरह तनकर सम्मुख खड़ा हो गया। डाक्टर ने क्रोध और वेदना से तड़पकर एक बार होंठ चबा डाला और फिर वह धैर्य धारण कर धरती पर लेट गए। उनके वस्त्र और शरीर गलीज़ कीचड़ में लतपत हो गए। उन्होंने पड़े ही पड़े पुकारा :

'लाला धनपतराय !'

धनपतराय ने द्वार खोलकर रोते-रोते कहा—ओफ ! अब भी शायद बच जाए—पर क्या आपको भी उन ज़ालिमों ने कीड़े की तरह··· (धनपतराय डाक्टर के पैरों के पास गिरकर रोने लगे)।

डाक्टर ने कहा—धीरज ! लाला धनपतराय—रोगी कहां है ?—रोगी बेहोश अवस्था में था। आवश्यक उपचार करने के बाद डाक्टर ने कहा—क्या थोड़ा गर्म पानी मिल सकेगा ?

'पानी, नहीं, घर में सुबह से एक बूंद भी पानी नहीं है। कुएं पर निर्लज्ज गोरों का पहरा है, वे पानी नहीं भरने देते। दो बार मैं गया पर पीटकर भगा दिया गया।'

डाक्टर ने बाल्टी हाथ में लेकर कहा—किधर है कुआं ?

'आप क्या इस अपमान को सहन करेंगे ?'

डाक्टर चुपचाप चल दिए।

कुएं पर पहुंचने पर ज्यों ही उन्होंने कुएं में बाल्टी छोड़ी त्यों ही एक गोरे ने लात मारकर कहा—साला भाग जाओ !

डाक्टर साहब ने तान के एक घूंसा उसके मुंह पर दे मारा। क्षण-भर में चार-पांच पिशाचों ने बन्दूक के कुन्दों से अकेले डाक्टर को कुचलकर धरती पर डाल दिया।

साहस करके डाक्टर उठे और कीड़े की तरह रेंगते हुए गली के पार को चले। और किसी तरह अपने घर के द्वार पर आकर वे फर्श पर पड़ गए।

प्रभात हुआ। उनकी पत्नी ने आकर देखा, वे औंधे मुंह ज़मीन पर पड़े हैं। उसने उन्हें जगाया और उनकी इस दुरवस्था पर आश्चर्य प्रकट करते हुए संकेत से पूछा—माजरा क्या है ?—क्षण-भर में घर-भर वहीं मौजूद था। सैकड़ों प्रश्न उठ

रहे थे, परन्तु डाक्टर साहब विमूढ़-से बैठे चुपचाप आकाश को देख रहे थे। मानो एकाएक चौंककर वे उठे। उन्होंने मुट्ठी भींचकर कहा—ओह, कहां है वह पंजाब-केसरी ! आज पंजाब के शेर उसके बिना यों कुचले जा रहे हैं। आज यदि वह होता !!

डाक्टर साहब उन्मत्त होकर उठ बैठे और उन्होंने अपने उन घृणित साहबी ठाट के वस्त्रों को उतारकर फेंक दिया, फिर जेब से दियासलाई निकालकर उनमें आग लगा दी, धीरे-धीरे वह घर की सभी वस्तुओं को ला-लाकर आग में डालने लगे। लोग अवाक् होकर चुपचाप यह होली-कांड देख रहे थे। अन्त में धीर-गम्भीर स्वर में उन्होंने कहा :

देश के पुरुषों का सम्मान संगठन, देशभक्ति और स्वात्माभिमान की कल्पना से होगा। यह बढ़िया विदेशी ठाट और काट के वस्त्र पहनना और मोर के पर खोंसकर कौए की तरह हास्यास्पद बनना अत्यन्त पाप-कर्म है। मैं आज से यह सब त्यागता हूं।

बम्बई में हलचल मच गई। पंजाब का शेर महायुद्ध के बाद सात वर्ष में फिर अपने देश में आ रहा है। आज फिर देश उसकी दहाड़ से गूंजेगा। आज पंजाब के आंसू पुछेंगे। आज न जाने क्या होगा। देश-भर में धूम मच गई थी। देश-भर के महान पुरुष उस सिंह-नर को देखने को दौड़ रहे थे। बाज़ारों में जयजयकार के शब्द बोले जा रहे थे। सभा-स्थान में तिल धरने को जगह न थी। महामना तिलक व्यास-पीठ पर विराजमान थे। पंजाब-केसरी ने उठकर गर्जना शुरू की। जनसमूह हिलोरें मारने लगा।

'मेरे देश की बहनो और भाइयो ! मैंने विदेश में सुना है कि पंजाब ने जलि-यानवाले बाग में मार खाई है। और वे पंजाबी शेर जिन्होंने फ्रांस के मैदान में अपनी संगीनों की नोक पर इंग्लैंड की नाक बचाई थी, अपने ही घर के द्वार पर कुत्ते की तरह शिकार किए गए हैं। मैंने यह भी सुना है कि वह हत्यारा डायर अभी तक अपने स्थान पर आनन्द उठा रहा है। यदि कोई पंजाबी बच्चा यहां है तो वह मुझे बताए कि उसके लिए उसने क्या किया है ?'

सभा में सन्नाटा था। सूई गिरने का शब्द भी होता। उन्होंने आवाज़ ऊंची

करके कहा :

'पंजाबी नहीं, भारत का कोई भी सच्चा सपूत बताए कि उसने इस अपमान का कोई बदला लिया है ? मैंने सुना है, वहां मर्दों को कीड़े की तरह रेंगकर चलाया गया था, और स्त्रियों की गुप्तेन्द्रियों में लकड़ियां डालकर उन्हें कुत्ती, मक्खी और गधी कहा गया था। अरे देश के नौजवानो ! मैं पूछता हूं वे किसकी मां-बहिनें और बेटियां थीं ! उन पिताओं, भाइयों और पतियों ने क्या किया है ?'

भीड़ में लोग रो रहे थे। एक सिसकारी आ रही थी। शेर ने ललकारकर कहा :

'हाय ! मुझे उस दिन उस स्थान पर मौत नहीं नसीब हुई ? अगर मैं जानता कि पंजाब के शेर-बच्चे भी अब ऐसे बेशर्म हो गए हैं तो मैं वहीं जहर खा लेता और यहां अपना मुंह न दिखाता।'

जनता बरसाती समुद्र की तरह उथल-पुथल हो चली। बहिन-बेटियां सिसक-सिसककर रो पड़ीं, और वृद्ध नररत्न तिलक की अश्रुधारा बह चली।

पंजाब-केसरी का कण्ठ-स्वर कांपा। वह अब बोलने में असमर्थ होकर नीची गर्दन किए बैठ गए।

सहस्रों कंठों से ध्वनि निकली—पंजाव-केसरी की जय ! हम पंजाब-केसरी की आज्ञा से प्राण देने को तैयार हैं !

'स्वामी श्रद्धानन्द मारे गए।'

'क्या कहते हो ?'

'अभी फोन आया है, एक मुसलमान ने उन्हें गोली से मार डाला।'

'वह पकड़ा गया है ?'

'पकड़ा गया है ?' यह कहते-कहते लाला लाजपतराय उठ खड़े हुए।

इसी समय तीन-चार भद्र पुरुषों ने प्रवेश करके समाचार की सत्यता बयान करके कहा—वहां जाने की चेष्टा न करें। मार्ग अशान्त है, नगर में उपद्रव होने की आशंका है।

लालाजी धीरे-धीरे बैठ गए। विषाद के स्थान पर उनके मुख पर एक हास्य-रेखा और नेत्रों में एक नई ज्योति का उदय हुआ। उन्होंने कहा :

'यह सम्भव ही नहीं कि मुझे यह मौत नसीब हो ! मैं तो अब इतना बूढ़ा

हो गया हूं कि चाहे जब चुपचाप मौत धोखा दे जाए। कुछ उम्र से, कुछ रोग और कष्ट से।'

परन्तु एक भद्र पुरुष ने कहा—लालाजी, आप तो अब उतने कष्ट में नहीं हैं। एसेम्बली में तो कुर्सियां गद्देदार हैं और उनमें बिजली के हीटर लगे होते हैं।

लालाजी व्यंग्य को पीकर बोले—यह सब कुछ होने पर भी वैसा कुछ सुख नहीं है।

'यदि ऐसा न होता तो आपसे उधर जाने की आशा न थी। वह आपको शोभा देने योग्य स्थान भी तो नहीं। आप वे पुरुष हैं, जिनके नाम से गवर्नमेंट कांपती रहती थी। आप अब जब उस गोल पिंजरे में बैठकर बोलते हैं तो ऐसा ज्ञात होता है कि कोई कुशल अभिनेता अभिनय कर रहा हो।'

लालाजी ने विषादपूर्ण दृष्टि से कहा :

'क्या सचमुच ?'

भद्र पुरुष कुछ लज्जित हुए। परन्तु लालाजी ने एक बार आकाश को ताकते हुए कहा :

'हाय ! श्रद्धानंद ! आज तुमने मुझे जीत लिया।'

'क्या आपने सुना ?'

'रोज़ सुनता हूं।'

'आप क्या इनका मुंहतोड़ उत्तर नहीं देंगे ?'

'नहीं।'

'आप चुपचाप सब सुन लेंगे ?'

'हां।'

'पर लोग मर्यादा से बाहर हो रहे हैं।'

'क्या कहते हैं ?'

'कहते हैं आप वतनफरोश हैं।'

'और ?'

'आप देश-घातक हैं।'

'और ?'

'आप कायर हैं, आरामतलब हैं, कष्ट नहीं सह सकते।'

'और ?'
'आप देश और देश के बदनसीबों से रुपया ऐंठते हैं।'
'आह ! यहां तक, और ?'
'आपके कारण पंजाब लज्जित है।'
'केवल पंजाब ही न ? शुक्र है !'
'आर्यसमाज आपको अपना सदस्य नहीं मानता।'
'अच्छा, मैं कल त्याग-पत्र भेज दूंगा।'
'मद्रास अछूतोद्धार के फण्ड में अब एक रुपया भी नहीं है।'
'यह लो चैकबुक, जो बैंक में है, सभी भेज दो।'
'सभी ?'
'है ही कितना, पचास-साठ हज़ार होगा।'
'आप खाएंगे क्या ?'
'तब क्या पंजाब के घरों से मुझे रोटियां भी न मिलेंगी ?'
लालाजी ने एक हास्य बखेरा और एक मोती टप से गिराया।
'अभी उस दिन तो आप एक लाख रुपये अनाथों के लिए और गढ़वाल के लिए दे चुके हैं।'
'यह उस रकम से बचा हुआ माल है।'
'आगे कैसे काम चलेगा ?'
'आगे देखा जाएगा।'
'वह डेढ़ लाख अस्पताल को भी आप दे चुके हैं।'
'वह तो सब जायदाद के बेचने से हो ही जाएगा।'
'लालाजी ! आपके बाल-बच्चे भी तो हैं !'
लालाजी ने कठिनता से आंसू रोककर कहा—मेरे बच्चों के ही लिए तो यह सब कुछ है।
'ओह ! लालाजी, आपको वे स्वार्थी बताते हैं।'
'ठीक ही है।'
'आप देवता हैं।'
'जी चाहे जो समझ लो, परन्तु यह रुपया कल ही भिजवा देना। अब शरीर थक गया है, अपना-अपना काम संभाल लेना और युवकों का आगे बढ़ना उपयुक्त

है। वे सच कहते हैं कि अब मैं आरामतलब हो गया हूं।'

सन्नाटा-सा फैल गया है। पंजाब की जान-सी निकल गई है। इस शरीर में कहां वह चैतन्यता थी आज, उसके नष्ट होने पर शरीर निर्जीव पड़ा रह गया। आज पंजाब का बच्चा-बच्चा जानता है कि उस सिंह-पुरुष का अभाव पूर्ण होना शक्य नहीं। पंजाब के लाखों युवक मानो अनाथ हो गए। पंजाब की शोभा मारी गई! पंजाब का मानो सिर कट गया! पंजाब खो गया! अब पंजाब का धुरी कौन होगा? कौन पंजाब के सिर पर हाथ धरेगा? कौन पंजाब के अस्तित्व को कायम रखेगा? कौन पंजाब के बढ़ते हुए तूफान को शमन करेगा? आज पंजाब की आत्मा का अभाव है। आज पंजाब की लाश पड़ी हुई है। ओह, अब पंजाब का क्या होगा?

क्रांतिकारिणी

ग्रेट ब्रिटेन के इस्पाती शिकंजे में दबे हुए भारत की एक दर्द-भरी कराह का एक स्नैपशाट लेने का लेखक को कहीं अकस्मात् ही एक सुअवसर मिल गया है। कहानी कहते-कहते लेखक शायद हंसना चाहता था, परन्तु उसकी आंखें पहले ही गीली हो गईं। साहित्यकार का सहृदय होना भी तो एक आफत ही है।

गर्मी बड़ी तेज़ थी। पर क्या किया जाए, मित्र की कन्या के विवाह में तो जाना ज़रूरी था। तबियत ठीक न थी, छोटे बच्चे को चेचक निकल आई थी। पत्नी ने बहुत ही नाक-भौं सिकोड़ी, पर मुझे जाना ही पड़ा। मैं इण्टर क्लास के एक छोटे डिब्बे में अनमना-सा होकर जा बैठा। मन में तनिक भी प्रसन्नता न थी। बच्चे का ध्यान रह-रहकर आता था। लू और धूप दोनों अपने ज़ोर पर थीं। डिब्बे में मैं अकेला था। गाड़ी ने सीटी दी। जो लोग प्लेटफार्म पर खड़े थे, लपककर अपने-अपने डिब्बे में चढ़ गए। मैंने देखा, मेरे डिब्बे में भी एक युवती लपककर सवार हो गई है।

उसकी आयु बीस-बाईस वर्ष की होगी। वह दुबली-पतली थी। नाक कुछ लम्बी, पर सुडौल थी। होंठ पतले और दांत श्वेत और सुन्दर थे। आंखें बड़ी-बड़ी थीं, उनमें कुछ अद्भुत गूढ़ता छिपी थी। वे चंचल भाव से चारों तरफ नाच रही थीं। साधारणतया वह एक साधारण युवती दिखलाई पड़ती थी, पर ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता था कि वह कुछ दिन पूर्व सुन्दर रही होगी—अब भी वह सुन्दर थी। पर अब चिन्ता और कठोर जीवन ने उसके उठते हुए यौवन को जैसे झुलसाकर विद्रूप कर डाला था।

मैं बारम्बार उसे कनखियों से देखने लगा। मन में कुछ बुरा भाव न था; पर वह कुछ अद्भुत-सी लग रही थी। मुझे इस तरह घूरते देखकर वह कुछ विचलित हो उठी। वह बारम्बार खिड़की से बाहर मुंह निकालकर देखती थी, मानो

उसके मन में यह हो रहा था कि स्टेशन आए, और वह उतरकर भागे।

मैं अपनी हरकत पर लज्जित हुआ। वह थोड़ी देर में स्थिर हुई, और कुछ रोष-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी। मैंने झेंपकर जेब से एक अंग्रेज़ी दैनिक निकाला और पढ़ने लगा।

हठात् अंग्रेज़ी के संक्षिप्त और तीखे, किन्तु मृदुल शब्द कान में पड़े। उसने पूछा था :

'कहां जा रहे हैं ?'

शुद्ध अंग्रेज़ी में उच्चारण सुनकर मैंने अचकचाकर उसकी ओर देखा, वह तीव्र दृष्टि से मेरी ओर ताक रही थी। वह दृष्टि एक बार बलात् मेरे हृदय में घुस गई। मैं कांप गया—क्यों ? यह नहीं कह सकता। मैंने कुछ शंकित स्वर में कहा—मेरठ, आप कहां जाएंगी ?

मानो मेरा प्रश्न उसने सुना ही नहीं। उसने फिर पूछा—आप वहीं रहते हैं ?

अपने प्रश्न का उत्तर न पाना मुझे अच्छा नहीं लगा, पर मैंने संयम से कहा—नहीं, मैं दिल्ली रहता हूं। वहां मैं एक मित्र के यहां शादी में जा रहा हूं।

मैंने देखा, इस उत्तर से उसे कुछ संतोष हुआ, और उसके चेहरे का भाव बदल गया। इस बार उसने कोमल तथा विनम्र स्वर में पूछा—आप दिल्ली में क्या काम करते हैं ?

'मैं वकील हूं।'

यह उत्तर सुनकर वह कुछ देर चुप रही, फिर उसने कहा—क्षमा कीजिए, मैं वकीलों से घृणा करती हूं, परन्तु आप एक सज्जन आदमी प्रतीत होते हैं।—उसकी इस दबंगता पर मैं हैरान हो गया। पर मैं उसकी बात का बुरा न मान सका। स्वीकार करता हूं, एक प्रकार से उसका रुआब मुझपर छा गया, मैंने अत्यन्त नम्रता से पूछा :

'क्षमा कीजिए, यदि हर्ज न हो तो आप अपना परिचय दीजिए।'

'मेरा परिचय कुछ नहीं है, पर आप चाहें तो मुझे कुछ सहायता दे सकते हैं।'

मैं कुछ सोच ही न सका। मैंने उतावली से कहा—बहुत खुशी से। मैं यदि कुछ आपकी सहायता कर सका, तो मुझे आनन्द होगा।

उसने बिना ही भूमिका के कहा :

'मैं केवल एक दिन आपके मित्र के यहां ठहरना चाहती हूं।'

मेरे मित्र मेरठ के प्रसिद्ध रईस हैं। उनका वहां अपना घर है, बहुत भारी कोठी है। इस युवती को वहां ठहराने में कोई बाधा न थी। मेरे मुंह से निकलना चाहा कि अवश्य, पर मैं सोचने लगा—यह इतनी निर्भीक, तेजस्विनी और अद्भुत युवती कौन है? एकाएक मेरे मुंह से कुछ बात न निकली।

वह कुछ देर चुपचाप मेरी तरफ देखती रही। कुछ क्षण बाद मैंने पूछा—परन्तु आपका परिचय?

उसने रुष्ट होकर कहा—परिचय कुछ नहीं।—और वह मुंह फेरकर फिर गाड़ी के बाहर देखने लगी।

न जाने क्यों मैं अपने-आपको धिक्कारने लगा। मैंने सोचा अनुचित बात कह डाली। मुझे किसी युवती का इस प्रकार परिचय पूछने का क्या अधिकार है। पर एकाएक किसी अपरिचित युवती को मैं किसीके घर में क्या कहकर ठहरा सकता हूं।

उस युवती का कुछ ऐसा रुआब मेरे ऊपर सवार हुआ कि मैंने अपनी कठिनाई बड़ी ही अधीनता से उसे सुना दी। उसने उसी भांति तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर ताकते हुए स्थिर स्वर से कहा—इसमें कठिनाई क्या है?

'वे लोग आपका परिचय पूछेंगे।'

'कहिए, बहिन हैं, दूर के रिश्ते की हैं। ये भी चली आई हैं। विवाह-समारोह में तो स्त्रियां विशेष उत्सुक रहती ही हैं।'

मैं अब अधिक नहीं सोच सका। मैंने कहा—तब चलिए, वह एक प्रकार से मेरा ही घर है, कुछ हर्ज नहीं। पर अब तो आप बहिन हुईं न, अब तो परिचय दीजिए।

परिचय का नाम सुनकर फिर उसकी त्योरियों में बल पड़ गए, और वह रोष में आ गई। उसने अत्यधिक रूखे स्वर में कहा—तीन बार तो कह चुकी महाशय, परिचय कुछ नहीं।

अब मुझे कुछ भी कहने का साहस न हुआ। वह भी नहीं बोली। चुपचाप गाड़ी से बाहर ताकती रही। गाज़ियाबाद आ गया।

मैंने बातचीत का सिलसिला शुरू करने के विचार से पूछा—आपको कुछ चाहिए तो नहीं?

'नहीं।' उत्तर जैसा संक्षिप्त था वैसा ही रूखा भी था। ऐसी अद्भुत स्त्री तो देखी नहीं। मैंने सोचा, बड़ा बुरा किया, जो ठहराने का वचन दिया। न जाने कौन है, पर कोई भी हो, शिक्षिता है, और बुरे विचारों की भी नहीं है। अवश्य कोई कुलीन स्त्री है। कुछ खानगी कारणों से यहीं आई होगी। अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी लड़कियां ऐसी ही उद्धत हो जाती हैं।

मैं यह सोच ही रहा था कि पांच-छ: आदमी डिब्बे में चढ़ आए; इनमें एक पुलिस का दारोगा भी था। दो खुफिया पुलिस के सिपाही थे। दारोगा ने युवती की सीट पर बैठकर पूछा :

'आप कहां जाएंगी?'

वह बोली नहीं।

दारोगा साहब ने साथ के कान्स्टेबिल से कुछ संकेत किया और फिर पूछा :

'आपने सुना नहीं, मैंने आपसे ही पूछा है, आप कहां जाएंगी?'

इस बार उसने दारोगा की ओर घूमकर देखा, और शुद्ध अंग्रेज़ी में कहा—क्या आप टिकटचेकर हैं, या रेल के कोई कर्मचारी, आप क्यों पूछते हैं और किस अधिकार से?—इसके बाद उसने मेरी ओर देखकर कुछ कोपपूर्ण स्वर में शुद्ध हिन्दी भाषा में कहा :

'तुम चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे हो, और यह आदमी बिना कारण मुझसे सवाल पर सवाल करता जा रहा है। इस बेशर्म को स्त्रियों से फालतू बातचीत करते ज़रा भी शर्म नहीं आती!'

मैं चौंक पड़ा। दारोगा मेरी ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखने लगा। दो और भद्र पुरुष, जो डिब्बे में आ गए थे, वे भी युवती के इस करारे उत्तर से चमत्कृत हो गए। मैंने संभलकर कहा :

'वह मेरी बहिन है, हम लोग मेरठ एक शादी में जा रहे हैं। आप क्या जानना चाहते हैं?' दारोगा एकदम झेंप गया, वह शायद मुझे जानता था। युवती ने एक क्षण मेरी ओर देखा—उसके होंठ कांपे, और फिर वह खिड़की के बाहर ताकने लगी। दारोगा ने ज़रा झिझकते हुए कहा—माफ कीजिए, मैं पुलिस······।

भद्र पुरुषों ने कहा—आप चाहे जो भी हों, पर स्त्रियों से ऐसा व्यवहार आपको न करना चाहिए, खासकर जब मर्द सफर में साथ हों।

दारोगा ने कहा—आप लोग और वकील साहब और बहिनजी भी मुझे क्षमा

करें। मैंने बड़ी भूल की। पर मेरा मतलब कुछ और ही था।

मैंने शेर होकर कहा—आप लोगों का हमेशा और ही मतलब हुआ करता है, पर भले घर की बहिन-बेटियों की कुछ इज़्ज़त-आबरू होती है जनाब!

दारोगा साहब बहुत लल्लो-चप्पो करने लगे। बीच में एक स्टेशन और आया। मैं अभी तक दारोगाजी को डांट रहा था।

युवती ने साफ़ शब्दों में कहा—भाई, ज़रा पानी ले लो।—मैंने गिलास में पानी लेकर उसे दिया। वह पानी पीकर चुपचाप फिर खिड़की के बाहर मुंह निकालकर बैठ गई।

मेरठ आया, हम लोग चले। उसके पास कुछ भी सामान न था। वह काले खद्दर की एक साड़ी पहने थी और एक छोटी-सी पोटली उसके हाथ में थी। ज़ेवर के नाम उसके बदन पर कांच की चूड़ियां तक न थीं। पैरों में जूते भी न थे। वह चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चली आई। मैंने तांगा किया और वह पीछे की सीट पर बैठ गई। मैं आगे की सीट पर बैठा और तांगा हवा हो गया।

बहुत चेष्टा करने पर भी मैं उससे उसका नाम पूछने का साहस न कर सका। मैं सोचता था, वहां कोई नाम पूछेगा तो बताऊंगा क्या? पर फिर भी पूछ न सका। मित्र का घर आ गया और मैंने उसे बहिन कहकर भीतर भिजवा दिया। उसने जाते-जाते कहा—अवकाश पाकर आप एक घंटे में मुझसे मिल लें।—मैंने स्वीकृति दी, और वह चली गई।

एक घंटे बाद मैं भीतर उससे मिलने गया। वह स्नान आदि से निवृत्त हो तैयार बैठी थी। मुझे देखते ही उसने कहा—एक टैक्सी मेरे वास्ते ला दीजिए, मुझे कहीं जाना है।

मैंने सोचा, मेरठ-जैसे छोटे-से शहर में इसे टैक्सी में कहां जाना है। मैंने कुछ दबी ज़बान से कहा—तांगे से भी तो काम चल जाएगा।

उसने रुखाई से कहा—नहीं, टैक्सी चाहिए!

अजब औरत थी। ज़रा-सी बात मन के विरुद्ध हुई नहीं कि उसके नेत्रों और चेहरे पर रुखाई आई नहीं।

मैंने टैक्सी मंगाने नौकर को भेज दिया। अब मेरे मन में एक बात आई, इसे कुछ रुपये भी खर्च को देने चाहिएं। पर कहूं कैसे? जो नाराज़ हो जाए तो?

इसका जैसा वेष है, उसे देखते तो दरिद्र मालूम होती है, कोई सामान तक पास नहीं। मैं पशोपेश में पड़ा कुछ सोच ही रहा था, एकाएक उसने कहा—एक कष्ट और आपको दूंगी।

मैंने समझा, अवश्य यह कुछ रुपया मांगेगी। मैंने जेव से मनीबेग निकालते हुए कहा—कहिए!

उसने अपने हाथ की पोटली खोली और एक बण्डल निकालकर मेरे हाथ में थमा दिया। देखा, नोटों का गट्ठर था। सौ-सौ रुपये के नोट थे। मैं अवाक् रह गया।

उसने सहज भाव से कहा—पन्द्रह हज़ार रुपये हैं। इन्हें ज़रा रख लीजिए, कहीं रास्ते में गिर-गिरा पड़ें, कहां-कहां लिए फिरूंगी।

मेरा तो सिर चकराने लगा। स्त्री है या मायामूर्ति, कपड़े तक वदन पर काफी नहीं, और पन्द्रह हजार रुपये हाथों में लिए फिरती है। और विना गवाह-प्रमाण मुझ अपरिचित को सौंप रही है, मानो रद्दी अखबारों का गट्ठर हो। मैंने कहा—ठहरिए, रकम को इस भांति रखना ठीक नहीं।

उसने लापरवाही से कहा—मैं लौटकर ले लूंगी, अभी तो आप रख लीजिए।—जिस लहज़े में उसने कहा, मैं अब टालमटोल न कर सका। काठ की पुतली की भांति नोटों का बंडल हाथ में लिए विमूढ़ बना खड़ा रहा।

टैक्सी आई और वह लपककर उसमें बैठ गई। एक क्षीण मुस्कराहट उसके मुख पर आई। उसने टैक्सी से मुंह निकालकर कहा—एक बात के लिए क्षमा कीजिएगा! मैंने रेल में आपको 'तुम' कहा था। आवश्यकतावश ही यह अनुचित घनिष्ठता का वाक्य कहना पड़ा था।—वह मानो और भी खुलकर मुस्करा पड़ी, और उसकी सुन्दर मोहक दंतपंक्ति की एक रेखा आंखों में चौंध लगा गई। दूसरे ही क्षण मोटर आखों से ओझल हो गई।

तीन दिन बीत गए। न वह आई, न उसका कुछ समाचार ही मिला। तीनों दिन मैं एकटक उसकी बाट देखता रहा। न सोया, न खाया, न कुछ किया। कब विवाह हुआ, और कब क्या हुआ, मुझे कुछ स्मरण नहीं, मानो हज़ार बोतलों का नशा सिर पर सवार था। छाती पर नोटों का गट्ठर और आंखों में वह अंतिम हास्य! बस, उस समय मैं इन्हीं दो चीज़ों को देख और जान सका। मित्र हैरान

थे। पर मैं तो मानो गहरे स्वप्न में मग्न था।

तीसरे दिन डाक से एक पत्र मिला। उसमें लिखा था---भाई, मुझे क्षमा करना, अब मैं आपसे नहीं मिल सकती। वे रुपये जो आपको दे आई हूं, मेरठ-षड्यन्त्र केस में खर्च करने को वहां के माननीय अभियुक्तों की राय से उनके वकीलों को दे दीजिए। मैं इसी काम के लिए मेरठ गई थी। आपसे मिलकर अनायास ही मेरा यह काम हो गया। रुपया इस पत्र के पाने के चौबीस घंटे के भीतर ठिकाने पर पहुंचा दीजिए, वरना जो लोग इसकी निगरानी के लिए नियत हैं, वे इस अवधि के बाद तत्काल आपको गोली मार देंगे। सावधान! दगा या असावधानी न कीजिएगा। इस पत्र के उत्तर की आवश्यकता नहीं। रुपया ठिकाने पर पहुंचते ही मुझे तत्काल उसका पता लग जाएगा।

आपकी,
धर्म-बहिन

एक बार पत्र पढ़कर मेरा सम्पूर्ण शरीर कांप उठा, और पत्र हाथ से गिर गया। इसके बाद मैंने झटपट झुककर पत्र को उठा लिया। भय से इधर-उधर देखा, कोई देख तो नहीं रहा। मेरी आंखों में आंसू भर आए। मैं नहीं जानता, क्यों। मैंने पत्र को एक बार चूमा, और फिर आंखों और माथे से लगाया। इसके बाद उसे उसी समय जला दिया। नोटों का बण्डल अभी भी मेरी जेब में था।

रुपये मैंने किसे दिए, वह प्राण देकर भी मैं किसीको नहीं बताऊंगा। हां, इतना अवश्य कह देता हूं कि मैं इस काम से निपटकर शीघ्र ही दिल्ली चला आया। पर कई दिन तक कचहरी न जा सका। ऐसा मालूम होता था, मानो शरीर की जान-सी निकल गई हो।

एक दिन संध्या समय मेरे नौकर ने कहा---कुछ लोग बहुत आवश्यक काम से आपसे भेंट किया चाहते हैं।

बैठक में जाकर देखा तो वही दारोगाजी थे। उनके साथ सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस और सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर भी थे। देखते ही मेरे देवता कूच कर गए। देखा सारा मकान घेर लिया गया है। किन्तु मैंने ज़रा रूखे स्वर से पूछा---कहिए, क्या बात है?

दारोगाजी ने थोड़ा हंसकर कहा---कुछ नहीं, ज़रा आपकी बहिनजी से एक

बार मुलाकात करके उनसे कुछ पूछना है।

क्षण-भर के लिए मेरे शरीर में खून की गति रुक गई। पर वकीली दिमाग ने समय पर काम दिया।

मैंने नकली आश्चर्य प्रदर्शन करके कहा :

'उनसे आपको क्या पूछना है ?'

'यह मैं आपको नहीं बता सकता।'

'यह कैसे सम्भव हो सकता है कि आप पर्देनशीन महिला से इस तरह बात-चीत कर सकें !'

'बातचीत तो जनाब हो चुकी है। मैं जानता हूं कि वे पर्दे की कायल नहीं।'

मैंने और भी आश्चर्य का भाव चेहरे पर लाकर कहा—आप कब उनसे बात-चीत कर चुके हैं ?

'क्या आप भूल गए, उसी दिन रेल में।'

'मैं नहीं समझता, आप किस दिन की बात कह रहे हैं ?'

दारोगाजी ज़ोर से हंस पड़े। उन्होंने दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहा—यह तो अभी मालूम हो जाएगा।

मैंने खूब गुस्से का भाव चेहरे पर लाकर कहा—किस तरह ?

'आप कृपा कर उन्हें ज़रा बुलवा दीजिए।'

मैंने क्षण-भर सोचने का बहाना किया, फिर मैंने नौकर को बुलाकर कहा—जाओ, ज़रा बीबीजी को बुला लाओ।

क्षण-भर ही में रेवती सशरीर सामने आ खड़ी हुई।

दारोगा को काटो तो खून नहीं ! मैंने उनकी तरफ न देखकर रेवती से पूछा—रेवती, कभी तूने इनसे बातचीत की थी ?

'कभी नहीं।'

दारोगाजी ने घबराकर कहा—ये वे नहीं हैं साहब।

मैंने रेवती को जाने का इशारा करके कहा—जनाब, मैं आपपर हतक का दावा करूंगा !

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब अब तक चुपचाप बैठे थे। बोले—आपकी कुल कितनी बहिनें हैं ?'

मैंने कहा—एक यही है।

'ये आपके साथ उस दिन मेरठ जा रही थीं ?'

'ये कल ही कलकत्ता से आई हैं।'

'तब उस दिन आपके साथ कौन थी ?'

'किस दिन ? मुझे कुछ याद नहीं आता। आप किस दिन की बात कह रहे हैं ?'

दारोगाजी बोल उठे—यह तो अच्छी दिल्लगी है।

मैंने कहा—जनाब, दिल्लगी के योग्य मेरा-आपका कोई रिश्ता नहीं है।

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब झल्ला उठे। बोले—आपके मकान की तलाशी ली जाएगी, यह वारण्ट है।

मैंने और भी गुस्से और लाचारी के भाव दिखाकर कहा—विरोध करना फजूल है, आप जो चाहें, सो करें। मैं कानूनी कार्यवाही कर लूंगा।

छः-सात घण्टों तक तलाशी होती रही। पुलिस ने सारा घर छान डाला।

खीझकर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बाहर निकल आए। मैंने भी खूब रोष दिखाकर कहा—जनाब, अब आप ज़रा तलाशी पर अपनी रिपोर्ट भी लिख दीजिए।

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब मेरी ओर घूरने लगे, पर मैंने बाज़ी मार ली थी। वही धवल दंत-पंक्ति मेरी आंखों में प्रकाश डालकर हृदय में साहस का संचार कर रही थीं। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने कहा—क्या आप उस स्त्री के विषय में कुछ भी नहीं बताएंगे ?

'किस स्त्री के सम्बन्ध में ?'

'जो उस दिन आपके साथ मेरठ जा रही थी।'

'किस दिन ?'

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब चुपचाप होंठ चबाते रहे। दारोगाजी झेंप रहे थे। बड़बड़ा भी रहे थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने हैट उठाकर कहा—बहुत अच्छा, अभी तो जाते हैं। लेकिन बेहतर था, आप सब बता देते।

मैंने ज़ोर से मेज़ पर हाथ पटककर कहा—कल ही मैं आपसे अपने इस अपमान का जवाब तलब करूंगा।

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब चल दिए। मैं भी साथ ही बाहर तक आया। सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गए थे। जब पुलिस अपनी लारी में लद गई तो मैंने पूछा—आप ईश्वर के लिए यह तो बता दीजिए कि आप किसे ढूंढ़ते फिरते हैं ?

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने खीझकर कहा—मिसेज़ भगवतीचरण को।

कलंगा दुर्ग

आचार्य ने यहां मगरूर अंग्रेजों के दांत खट्टे करनेवाले वीर गोरखाओं की देहरादून के निकट घटी उस बहादुराना लड़ाई और उस दुर्ग का ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध कराया है, जो आज की पीढ़ी के लिए लुप्तप्राय हो चुका था।

यह घटना सन् १८१४ के शरत्काल में घटी थी। आज उसे घटे लगभग डेढ़ सौ बरस बीत गए। भारतीय मस्तिष्क से उसकी स्मृति भी लुप्त हो गई। परन्तु जहां—देहरादून के पहाड़ों में—यह अमर घटना घटी थी, वहां के मनोरम-शीतल झरने और पर्वत-शृंग आज भी इसके मूक साक्षी हैं।

उस दिनों महत्त्वाकांक्षी और मगरूर अंग्रेज हेस्टिंग्स गवर्नर-जनरल था जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रतिनिधि था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उन दिनों भारत में आर्थिक कष्टों के कारण डगमग स्थिति हो रही थी। अंग्रेज़ कर्मचारियों के लूट-खसोट और अत्याचारों से सारे भारत में क्षोभ का वातावरण उठ खड़ा हुआ था। कम्पनी के नौकर अब भारत में खुली डकैती पर उतर आए थे। प्लासी के युद्ध को हुए अब ५८ वर्ष बीत चुके थे, और इस बीच में भारत को लूटकर पन्द्रह अरब रुपया इंग्लैंड में पहुंच चुका था। जिसके बल पर लंकाशायर और मैन्चेस्टर के भाप के इंजनों से चलनेवाले नये कारखाने धड़ाधड़ उन्नत हो रहे थे। इस लूट का अर्थ यह था कि अट्ठावन बरस तक निरन्तर पचीस करोड़ रुपया सालाना कंपनी के नौकर भारतवर्ष से लूटकर इंगलैंड भेजते रहे थे। निश्चय ही इस भयानक लूट के मुकाबले महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी के हमले बच्चों के खेल थे। अब अंग्रेज़ केवल भारत में व्यापारी ही न रह गए थे, वे अपने साम्राज्य के सपने भी साकार कर रहे थे। और अब उनकी मुख्य अभिलाषा यह थी कि जैसे आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमेरिका आदि देशों में अंग्रेज़ बस्तियां कायम हो चुकी थीं, वैसी ही भारत में भी हो जाएं। परन्तु उनका दृष्टिकोण यह था कि भारत के गरम

मैदानों की अपेक्षा हिमालय की घाटियों में ही ये अंग्रेज़ी उपनिवेश स्थापित किए जाएं। जहां अंग्रेज़ों की अपनी नैतिक और शारीरिक शक्तियां ज्यों की त्यों कायम रह सकें। हिमालय की रमणीय घाटियों के प्रति उनका मोह बहुत था और वे देहरादून, कुमायूं, गढ़वाल के इलाकों पर अपने दांत गड़ाए हुए थे। परन्तु उन दिनों ये सब ज़िले नेपाल के स्वाधीन साम्राज्य के अन्तर्गत थे। अंग्रेज़ इससे कुछ पूर्व ही लाहौर के महाराज रणजीतसिंह को भड़काकर नेपाल से लड़ा चुके थे। पर वीर नेपालियों ने आक्रान्ताओं के अच्छी तरह दांत खट्टे किए थे। अब यह स्पष्ट था कि भारत के इस मनोरम अंचल में अंग्रेज़ यदि अपने उपनिवेश स्थापित करना चाहते हैं, तो उन्हें खुल्लम-खुल्ला नेपाल से लोहा लेना होगा।

इस समय सारन और गोरखपुर के ज़िलों में नेपाल की सरहदें मिलती थीं। और वहां पर कुछ भूमि कम्पनी और नेपाल की विवादग्रस्त थी, जिसके सम्बन्ध में कभी-कभी छोटे-छोटे उपद्रव होते ही रहते थे। ऐसे ही एक विवाद का बहाना उठाकर अंग्रेज़ों ने नेपाल सरकार से युद्ध की घोषणा कर दी।

नेपालियों की वीर जाति ने अब तक न तो पराजय का कभी सामना किया था, न पराधीनता का। यद्यपि उसकी शक्तियां सीमित थीं, परन्तु उसने अंग्रेज़ों से लोहा लेने में तनिक भी हिचक न दिखाई।

अपरिसीम लूट-खसोट के बावजूद इस समय भारत में कम्पनी की आर्थिक स्थिति इतनी नाज़ुक थी कि उन दिनों कम्पनी की हुण्डियां बाज़ार में बारह फीसदी बट्टे पर बिकती थीं। परन्तु अंग्रेज़ ऐसे अवसरों के लिए अनेक हथकण्डे हाथ में रखते थे। उन्होंने अवध के नवाब गाज़ीउद्दीन हैदर की गर्दन दबोचकर ढाई करोड़ रुपया कर्ज़ ले लिया और नेपाल से युद्ध की विस्तृत योजना बनाकर युद्ध छेड़ दिया।

इस समय नेपाल का राज्य कम्पनी के राज्य से बहुत छोटा था। दोनों राज्यों के बीच पंजाब में सतलज से लेकर बिहार में कोसी नदी तक लगभग ६०० मील लम्बी सरहद थी। अंग्रेज़ों ने इस सरहद पर पांच मोर्चे बांधे और पांचों स्थानों से नेपाल पर आक्रमण करने का प्रबन्ध कर लिया। एक मोर्चा लुधियाना में कर्नल आक्टरलोनी के अधीन था। दूसरा मेजर-जनरल जिलेप्सी के अधीन मेरठ में था। तीसरा मेजर जनरल वुड के अधीन बनारस और गोरखपुर में था। चौथा मुर्शिदाबाद और पांचवां कोसी नदी के उस पार पूर्णिया की सरहद और सिक्किम राज्य

के सिर पर था। इन सब मोर्चों पर अंग्रेज़ सरकार की तीस हज़ार सेना मय उत्तम तोपखाने के जमा की गई थी, जिसका सामना करने के लिए नेपाल-दरबार मुश्किल से बारह हज़ार सेना जुटा सका था। उसके पास न काफी धन था, न उत्तम हथियार। और कूटनीति में तो वे अंग्रेज़ों के मुकाबले बिलकुल ही कोरे थे।

मेजर जरनल जिलेप्सी ने सबसे पहले नेपाल-सीमा का उल्लंघन कर देहरादून क्षेत्र में प्रवेश किया। नाहन और देहरादून दोनों उस समय नेपाल राज्य के अधीन थे। नाहन का राजा अमरसिंह थापा था, जो नेपाल-दरबार का प्रसिद्ध सेनापति था। अमरसिंह ने अपने भतीजे बलभद्रसिंह को केवल छः सौ गोरखा देकर जिलेप्सी के अवरोध को भेजा। बलभद्रसिंह ने बड़ी फुर्ती से देहरादून से साढ़े तीन मील दूर नालापानी की सबसे ऊंची पहाड़ी पर एक छोटा-सा अस्थायी किला खड़ा किया। यह किला बड़े-बड़े अनगढ़ कुदरती पत्थरों और जंगली लकड़ियों की सहायता से रातोंरात खड़ा किया गया था। हकीकत में किला क्या था, एक अधूरी अनगढ़ चहारदीवारी थी। परन्तु बलभद्र ने उसे किले का रूप दिया, उसपर मज़बूत फाटक चढ़ाया और उसपर नेपाली झण्डा फहराकर उसका नाम कलंगा दुर्ग रख दिया।

अभी बलभद्र के वीर गोरखा इन अनगढ़ पत्थरों के ढोंकों को एक पर एक रख ही रहे थे कि जिप्लेसी देहरादून पर आ धमका। उसने इस अद्भुत किले की बात सुनी और हंसकर कर्नल मावी की अधीनता में अपनी सेना को किले पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। जिप्लेसी की सेना में एक हज़ार गोरी पलटन और ढाई हज़ार देसी पैदल सेना थी। परन्तु बलभद्र के इस किले में इस समय केवल तीन सौ जवान और इतनी ही स्त्रियां और बच्चे थे। उसने उन सभी को मोर्चे पर तैनात कर दिया।

मावी ने देहरादून पहुंचकर उस अधकचरे दुर्ग को घेर लिया और अपना तोपखाना उसके सामने जमा दिया। फिर उसने रात को बलभद्र के पास दूत के द्वारा सन्देश भेजा कि किले को अंग्रेज़ों के हवाले कर दो। बलभद्रसिंह ने दूत के सामने ही पत्र को फाड़कर फेंक दिया और उसी दूत की ज़बानी कहला भेजा कि अंग्रेज़ों के स्वागत के लिए यहां नेपाली गोरखों की खुखरियां तैयार हैं।

सन्देश पाकर मावी ने रातोंरात अपनी सेना नालापानी की तलहटी में फैला दी और किले के चारों ओर से तोपों की मार आरम्भ कर दी। इसके जवाब में

किले के भीतर से गोलियों की बौछारें आने लगीं। तोपों के गोलों का जवाब बन्दूक की गोलियों से देना कोई वास्तविक लड़ाई न थी। और अंग्रेज़ उनपर हंस रहे थे। परन्तु शीघ्र ही उन्हें पता लग गया कि नेपालियों के जौहर साधारण नहीं हैं। रात-दिन सात दिन तक गोलाबारी चलती रही, परन्तु कलंगा दुर्ग अजेय खड़ा रहा।

जनरल जिलेप्सी इस समय सहारनपुर में पड़ाव डाले उत्कण्ठा से देहरादून की घाटियों की ओर ताक रहा था। जब उसे अंग्रेज़ी सेना के प्रयत्नों की विफलता के समाचार मिले, वह गुस्से से लाल हो गया और अपनी सुरक्षित सैन्य को ले नालापानी जा धमका। सारी स्थिति को देखने-समझने और आवश्यक व्यवस्था करने में उसे तीन दिन लग गए। उसने सेना के चार भाग किए। एक ओर की पल्टन कर्नल कारपेन्टर की अधीनता में आगे बढ़ी। दूसरी कप्तान फास्ट की कमान में, तीसरी मेजर कैली की और चौथी कप्तान कैम्पवैल की कमान में। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने एकबारगी ही चारों ओर से दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। कलंगा दुर्ग पर धड़ाधड़ गोले बरस रहे थे और दुर्ग के भीतर से बन्दूकें तोपों का दनादन जवाब दे रही थीं। अंग्रेज़ी सेना का जो योद्धा दुर्ग की दीवार या द्वार के निकट पहुंचने की हिमाकत करता था, वहीं ढेर हो जाता था; वापस लौटता न था। इस समय नेपाली स्त्रियां भी अपने बच्चों को पीठ पर बांधकर बन्दूकें दाग रही थीं। अनेक बार अंग्रेज़ी सेना ने दुर्ग की दीवार तक पहुंचने का प्रयत्न किया, पर हर बार उन्हें निराश होना पड़ा। अनगिनत अंग्रेज़ सिपाहियों और अफसरों को गोरखा गोलियों का शिकार होकर वहीं ढेर होना पड़ा।

बार-बार की हार और विफलता से चिढ़कर जनरल जिप्लेसी स्वयं तीन कम्पनियां गोरे सिपाहियों की साथ लेकर दुर्ग के फाटक की ओर बढ़ा। परन्तु दुर्ग के ऊपर से जो गोलियों और पत्थरों की बौछारें पड़ीं तो गोरी पल्टन भाग खड़ी हुई। गुस्से और खीझ में भरा जिलेप्सी अपनी नंगी तलवार हवा में घुमाता हुआ दुर्ग के फाटक तक बढ़ता चला गया। जब वह फाटक से केवल तीस गज़ के अन्तर पर था कि एक गोली उसकी छाती को पार कर गई और वह वहीं मरकर ढेर हो गया।

गोरखों के पास केवल एक ही छोटी-सी तोप थी। वह उन्होंने फाटक पर चढ़ा रखी थी। उसकी आग के मारे शत्रु आगे बढ़ने का साहस न कर सकते थे। इसके अतिरिक्त तीखे तीर भी गोरखा बरसा रहे थे।

जनरल जिलेप्सी की मृत्यु से अंग्रेज़ी सेना में भय की लहर दौड़ गई। परन्तु मावी ने अंग्रेज़ी सेना का नेतृत्व हाथ में लेकर सेना को पीछे लौटने का आदेश दिया। अंग्रेज़ी सेना बेंत से पीटे हुए कुत्ते की भांति कैम्पों में लौट आई। मावी अब किले पर आक्रमण का साहस न कर सकता था। वह घेरा डालकर पड़ा रहा। किलेवालों को सांस लेने का अवसर मिला।

मावी ने दिल्ली सेंटर को मदद भेजने को लिखा, और वहां से भारी तोपखाना और गोरी पलटन देहरादून आ पहुंची। इसके बाद नये साज-बाज से किले का मुहासरा किया गया। अब रात-दिन किले पर गोले बरस रहे थे। गोलों के साथ दीवारों में लगे अनगढ़ पत्थर भी टूट-टूटकर करारी मार करते थे। एक-एक करके किले के आदमी कम होते जाते थे। गोली-बारूद की भी कमी होती जाती थी। परन्तु बलभद्रसिंह की मूंछें नीचे झुकती नहीं थीं। उसका उत्साह और तेज वैसा ही बना हुआ था। इसी प्रकार दिन और सप्ताह बीतते चले गए।

अकस्मात् ही किले में पानी का अकाल पड़ गया। पानी वहां नीचे की पहाड़ियों के कुछ झरनों से जाता था। और अब ये झरने अंग्रेज़ी सेना के कब्ज़े में थे। उन्होंने नाले बन्द करके किले में पानी जाना एकदम बन्द कर दिया था। धीरे-धीरे प्यासी स्त्रियों और बच्चों की चीत्कारें घायलों की चीत्कारों से मिलकर करुणा का स्रोत बहाने लगीं। दीवारें अब बिल्कुल भग्न हो चुकी थीं। उनकी मरम्मत करना सम्भव न था। तोप के गोले निरन्तर अपना काम कर रहे थे। उन तोपों की भीषण गर्जना के साथ ही ज़ख्मियों की चीखें, पानी की एक बूंद के लिए स्त्रियों और बच्चों का कातर क्रन्दन दिल को हिला रहा था। ये सारी तड़पनें, चीत्कारें और गर्जन-तर्जन सब कुछ मिलकर उस छोटे-से अनोखे दुर्ग में एक रौद्र रस का समा उपस्थित कर रहा था। और उसकी छलनी हुई भग्न दीवारों के चारों ओर अंग्रेज़ी तोपें आग और मृत्यु का लेन-देन कर रही थीं।

एकाएक ही दुर्ग की बन्दूकें स्तब्ध हो गईं। कमानें भी बंद हो गईं। अंग्रेज़ों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा। इसी समय दुर्ग का फाटक खुला। अंग्रेज़ सेनापति सोच रहा था कि बलभद्रसिंह आत्मसमर्पण करना चाहता है। उसने तत्काल तोपों को बंद करने का आदेश दे दिया। सारी अंग्रेज़ी सेना स्तब्ध खड़ी उस भग्न दुर्ग के मुक्तद्वार की ओर उत्सुकता से देखने लगी। बलभद्र ही सबसे पहले निकला। कंधे पर बंदूक, हाथ में नंगी तलवार, कमर में खुखरी, सिर पर फौलादी चक्र, गले में

लाल गुलूबन्द। और उसके पीछे कुछ घायल, कुछ बेघायल योद्धा बंदूकें कंधों पर और नंगी तलवारें हाथों में लिए हुए। उनके पीछे स्त्रियां, जिनकी पीठ पर बच्चे कसकर बंधे हुए और हाथों में नंगी खुखरियां। कुल सत्तर प्राणी थे। सब प्यास से बेताब।

बलभद्र का शरीर सीधा, चेहरा हंसता हुआ, मूंछें नोकदार, ऊपर को चढ़ी हुईं। सिपाही की नपी-तुली चाल चलता हुआ वह अंग्रेज़ी सेना में धंसा चला गया। उसके पीछे उसके सत्तर साथी—स्त्री-पुरुष। किसीका साहस उन्हें रोकने का न हुआ। बलभद्रसिंह अंग्रेज़ी सेना के बीच से रास्ता काटता हुआ साथियों सहित नालापानी के झरनों पर जा पहुंचा। सबने जी भरकर झरने का स्वच्छ ठण्डा और ताज़ा पानी पिया। फिर उसने अंग्रेज़ी जनरल की ओर मुंह मोड़ा। उसी तरह बंदूक उसके कंधे पर थी और हाथ में नंगी तलवार। उसने चिल्लाकर कहा—कलंगा दुर्ग अजेय है। अब मैं स्वेच्छा से उसे छोड़ता हूं।

और वह देखते ही देखते अपने साथियों सहित पहाड़ियों में गुम हो गया। अंग्रेज़ जनरल और सेना स्तब्ध खड़ी देखती रह गई।

जब अंग्रेज़ दुर्ग में पहुंचे तो वहां मर्दों, औरतों और बच्चों की लाशों के सिवा कुछ न था। ये उन वीरों के अवशेष थे जिन्होंने एक डिवीज़न सेना को एक महीने से भी अधिक रोके रखा था, और वहां के संग्राम में जनरल जिलेप्सी को मिलाकर अंग्रेज़ों के इकत्तीस अफसर और ७१८ सिपाही काम आए थे।

अंग्रेज़ों ने किले पर कब्ज़ा कर उसे ज़मींदोज़ कर दिया। इस काम में उन्हें केवल कुछ घण्टे लगे।

इस समय उस स्थान पर साल वृक्षों का घना जंगल है। और रीचपाना नदी के किनारे एक छोटा-सा स्मारक बना हुआ है, जिसपर खुदा है—हमारे वीर शत्रु बलभद्रसिंह और उसके वीर गोरखों की स्मृति में सम्मानोपहार………।

ग्यारहवीं मई

११ मई, सन् १८५७ के ऐतिहासिक दिन पर एक रोमांचक कहानी।

ठीक साढ़े तीन बजे। सारी दिल्ली सो रही थी, लालकिले के बारूदखाने की ऊपरी मंज़िल में गंगाजमनी पिंजरे के भीतर से, जिसपर कारचोबी की वस्तनी चढ़ी थी, बुलबुल हज़ारदास्तान ने अपनी कूक लगाई। रात के सन्नाटे में उस सुरीले पक्षी का यह प्रकृत राग रात की बिदाई का सूचक था। कूक सुनते ही बहरामखां गोलन्दाज़ कल्मा पढ़ता हुआ उठ बैठा और तोप पर वत्ती दी। मोती-मस्जिद में अज़ान का शब्द हुआ। चप्पी-मुक्कीवालियां शाही मसहरी पर आ हाज़िर हुईं और धीरे-धीरे बादशाह के पांव दबाने लगीं। बादशाह की नींद खुली। वे तुरन्त नित्य-कृत्य से निपटकर मस्जिद में आ नमाज़ में सम्मिलित हो गए। उन्होंने सबके साथ नमाज़ पढ़ी और फिर वज़ीफा पढ़ने लगे। सूर्योदय के साथ ही बादशाह मस्जिद से निकले, चारों ओर मुजरा करनेवाले खड़े थे, दरवाज़े पर पहुंचते ही हाथ में सुनहरी बल्लम लिए जसोलनी ने आगे बढ़कर ऊंचे स्वर में पुकारा :

'पीरो-मुर्शद हुज़ूरआली बादशाह सलामत उम्रदराज़।' तीन वार उसने यह वाक्य घोषित किया। इसके बाद ही दरबारीगण अदव से झुक गए और बादशाह को देखते ही बोले :

'तरक्किए-इकबाल, दराज़े-उम्र।'

बादशाह ने दीवाने-फरहत में प्रवेश किया। असीलें अदब से सिर नवाए खड़ी थीं। आंगन में एक सुसज्जित तख्त बिछा था, बादशाह उसपर बैठ गए। जसोलनी दारोगा दोनों हाथों में अतलस चढ़ी बुकचियां लिए आ हाज़िर हुई। गुसलखाने के दारोगा ने सामने आ सिर झुकाया। बादशाह उठकर गुसल करने चल दिए। जौनपुरी खली, सुगन्धित बेसन, चंबेली, शब्बो, मोतिया, बेला, जुही, गुलाब के तेल बोतलों में भरे क्रम से रखे थे। शक्काबे में एक ओर ठण्डा और दूसरी ओर

गर्म पानी भरा था, चांदी के लोटे और सोने की लुटियां जगमगा रही थीं। गुस्ल हुआ और बादशाह पोशाक के कमरे में चले गए। ख्वाजा हसनबेग दारोगा ने आकर आदाब बजाया। उसने लखनऊ की चिकन का कुर्ता, दोनों ओर तुक में घुंडियां, लट्ठे का चौड़े पांयते का पायजामा जिसमें दिल्ली का कमरबन्द पड़ा था—हाज़िर किया। बादशाह ने कपड़े बदले। मखमली चप्पल पहने। अब शमीमखाने का दारोगा आ हाज़िर हुआ, उसने सिर में तेल डाला, कंघा किया, कपड़ों में इत्र लगाया। बादशाह तस्बीहखाने में आए, माला फेरी, कुछ दुआएं पढ़ीं और दीवाने-खिलवत में चले गए। दवाखाने के मुन्तज़िम ने आगे बढ़कर कोर्निश की और हकीम अहसन की सील-मुहरबन्द शीशियां पेश कीं। मुहर तोड़ी गई और याकूती की प्याली तैयार की गई, तभी खवास ने चांदी की तश्तरी में छिलकोंसमेत दो तोला भुने चने पेश किए, बादशाह ने याकूती की प्याली पी, फिर चनों से मुंह साफ किया और बेगमी पान की एक गिलौरी खाकर मिट्टी के कागज़ी हुक्के को मुंह लगाया। इतने ही में खबरों का अफसर आ हाज़िर हुआ, रात-भर की खबरें सुनाई गईं। बादशाह ने एक पान की गिलौरी और खाई और उठकर दीवाने-आम को चल दिए।

बादशाह तख्त पर बैठे। प्रत्येक विभाग का अधिकारी हाथ बांधे हाज़िर था, बादशाह ने सबकी ओर एक दृष्टि की। एकाएक एक चीत्कार ने उनका ध्यान भंग किया। एक भंगन रोती-पीटती चली आ रही थी, दीवाने-आम के सामने आकर वह धरती चूमकर और हाथ जोड़कर बोली :

'जहांपनाह, मिर्ज़ा महमूद मेरी दो मुर्गियां ले गए।' लालकिले के बादशाह भंगन की फर्याद से खिन्न होकर बोले—रो मत, जा मुर्गियां आती हैं।

भंगन ज़मीन चूमती हुई उलटे पैर लौट गई, शाहज़ादा मिर्ज़ा महमूद की तलबी हुई। वे आंखें नीची किए आ खड़े हुए।

'अरे महमूद! गरीब भंगन की मुर्गियां, हाय-हाय!' बादशाह ने करुण भाव से कहा, फिर अलीअहमद दारोगा की ओर देखकर बोले—दिलवा दो, और एक बढ़ती।

मिर्ज़ा महमूद ने धरती चूमी और दारोगा ने उन्हें संग ले जाकर तीन मुर्गियां भंगन को दिलवा दीं।

वह सन् १८५७ की ग्यारहवीं मई का प्रभात था। मुगलों का प्रताप-सूर्य अस्त हो चला था, बादशाह बहादुरशाह बूढ़े और असहाय थे। उनकी बादशाहत सिर्फ लालकिले ही तक सीमित थी। बाकी तमाम मुल्क अंग्रेज़ी अमलदारी में आ गया था। बादशाह भावुक और सज्जन थे। दुहत्थे शासन की गड़बड़ी देश में चल रही थी। दिल्ली में भांति-भांति की अफवाहें फैल रहीं थीं, कुछ लोग कहते थे कि ग्यारहवीं मई को दिल्ली लूटी जाएगी! परन्तु अफ़सर सावधान न थे।

सात बजे सुबह हथियारबन्द सिपाहियों की एक टुकड़ी नावों के पुल को पार करके नगर में घुसी। उसने पहले पुल के ठेकेदार को मार डाला और उसका सब रुपया लूट लिया। इसके बाद उन्होंने पुल को तोड़ दिया। नगर कोतवाल खबर पाते ही अंग्रेज़ रेज़ीडेण्ट के पास गया। रेज़ीडेण्ट ने कोतवाल को तमाम कागज़ात शहर में ले जाने की आज्ञा दी और तुरन्त किले में आकर उसके सब फाटक बन्द करा दिए। उस समय किले में और भी कई अंग्रेज़ पुरुष और स्त्री थे।

थोड़ी देर बाद किसीने किले के लाहौरी दरवाज़े पर आकर कहा:

'द्वार खोल दो।'

'तुम कौन हो?'

'मैं मेरठ के रिसाले का सवार हूं।'

'और लोग कहां हैं?'

'अंगूरी बाग में हैं।'

'उन्हें भी ले आओ।'

सवार लौट गया और सूबेदार चुपचाप फाटक पर टहलने लगा। विद्रोही दल फाटक पर आ पहुंचा। और सूबेदार ने फाटक खोल दिया। विद्रोही दल तेज़ी से किले में घुस पड़ा। यह देख रेज़ीडेण्ट पीले पड़ गए। उन्होंने सूबेदार को आज्ञा दी कि फाटक की गारद के सिपाहियों को बन्दूक भरने की आज्ञा दो। सूबेदार ने गाली देकर कहा—भाग सूअर।—इसके बाद ही एक गोली ने रेज़ीडेण्ट का काम तमाम कर दिया। अब तो जहां जो अंग्रेज़ मिला कत्ल कर दिया गया। दरियागंज, जहां अंग्रेज़ लोग रहते थे, वहां के सभी मकानों में आग लगा दी गई। सारे शहर में लूट-मार और मार-काट मच गई। और दोपहर होते-होते शहर का वह भाग धांय-धांय जलने लगा।

उसी दिन प्रातःकाल आठ बजे के लगभग पांच-छः सवार दीवाने-खास की ओर बढ़े और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। बादशाह ने गुलामों से कहा—देखो, ये कौन हैं, उन्हें शोर करने से रोक दो।—इतना कहकर वे अपने खास कमरे में चले गए। उन्होंने अपने मुख्तार गुलामअब्बास को बुलाया और कहा—ये सवार मेरठ से आए हैं और चाहते हैं कि मज़हब की हिफाज़त में अंग्रेज़ों से लड़ें, तुम फौरन कप्तान डगलस के पास जाकर इत्तला कर दो और उनसे मुनासिब बन्दोबस्त करने को कह दो।—इतना कह उन्होंने अपने शाही खिदमतगार से कहकर दरवाज़ा बन्द करा लिया। आज्ञानुसार गुलामअब्बास कप्तान डगलस के पास गया और उन्हें शाही हुक्म सुना दिया। कप्तान डगलस सुनते ही साथ हो लिए और दीवाने-खास में आए, बादशाह भी इनसे मिलने के लिए आ गए। बादशाह में इस समय खासी शक्ति थी। वे बिना किसीका सहारा लिए सिर्फ लकड़ी टेकते हुए आ गए थे। उन्होंने कप्तान डगलस से पूछा—आपको मालूम हुआ कि क्या मामला है? ये फौजी सवार आए हैं। और मनमानी कार्यवाही बहुत जल्द शुरू करना चाहते हैं।—हकीम अहसानउल्लाखां और गुलामअब्बास भी उस समय वहीं उपस्थित थे। कप्तान डगलस ने बादशाह से प्रार्थना की कि खास बैठक का दरवाज़ा खुलवा दीजिए जिससे मैं उन सवारों से मुंह दर मुंह बात कर सकूं। बादशाह ने कहा कि मैं आपको ऐसा न करने दूंगा, क्योंकि वे लोग कातिल हैं, ऐसा न हो कि आपपर वार कर दें। परन्तु कप्तान डगलस ने दरवाज़ा खुलवाने के लिए हठ किया, पर बादशाह सहमत नहीं हुए और कप्तान डगलस का हाथ थामकर कहा कि मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। इसी वक्त हकीम अहसानउल्लाखां ने उसका दूसरा हाथ पकड़ लिया और कहा—अगर आपको बातचीत ही करनी है तो बरामदे में से कर लीजिए।—इसपर कप्तान डगलस दीवाने-खास और कमरा शाही के बीचवाले कटहरे में आए। और उस स्थान को देखने लगे जहां वे सब सवार जमा हो रहे थे। वहां तीस-चालीस सवार नीचे खड़े नज़र आए जिनमें से कुछ के पास नंगी तलवारें थीं और कुछ पिस्तौल और कारतूस हाथ में लिए हुए थे। और भी कई एक पुल की तरफ से चले आ रहे थे। इनके साथ अनेक पैदल भी थे, जो शायद साईस थे, जिनके सिरों पर गठरियां थीं। कप्तान डगलस ने सवारों को ललकारकर कहा—इधर न आना। ये शाही बेगमात के कमरे हैं। तुम यहां खड़े होकर बादशाह की बेइज़्ज़ती कर रहे हो।—यह सुनते ही वे सब एक-

एक करके राजघाट के फाटक से चले गए। इनके जाने के बाद कप्तान बादशाह के पास फिर हाज़िर हुए। बादशाह ने किला और शहर के दरवाज़े बन्द करने के लिए कहा, जिससे विद्रोही भीतर न आ सकें। कप्तान डगलस ने बादशाह को विश्वास दिलाया कि भय की कोई बात नहीं है और वे उचित प्रबन्ध करेंगे।

यह कहकर कप्तान डगलस चले गए और बादशाह अपने कमरे में चले आए। अब्बास और हकीम अहसानुल्लाखां दोनों दीवाने-खास में आकर बैठ गए। यहां इन्हें बैठे हुए एक घण्टा बीता होगा कि कप्तान डगलस का खिदमतगार एक रुक्का लिए हुए दौड़ता आया, जिसमें हकीम अहसानुल्लाखां को बुलाया था। अहसानुल्लाखां ने अब्बास को भी साथ ले लिया। जो आदमी उन्हें लेने के लिए आया था, उसने कहा था कि कप्तान डगलस कलीदखाने में हैं। परन्तु वहां पहुंचकर मालूम हुआ कि वे अपने मकान पर चले गए हैं। इसी समय उन्होंने दरियागंज में बहुत-सा धुआं उड़ते देखा। और राह-चलतों की ज़बानी सुना कि सवार बंगलों पर फायर कर रहे हैं। जब वे गश्त करते हुए कप्तान डगलस के निवास-स्थान पर लाहौरी दरवाज़े (किले के) पर पहुंचे तो मालूम हुआ कि वे तीसरे कमरे में हैं। बीच के कमरे में मिस्टर सीमैन फ्रेज़र मिले। हकीम अहसानुल्लाखां कप्तान डगलस से मिलकर फिर किले के अन्दर चले गए। और अब्बास मिस्टर फ्रेज़र के अनुरोध से इनके साथ हो लिए। ये बादशाह से दो तोपें और कुछ पैदल सवार कप्तान डगलस के निवास-स्थान की रक्षा के लिए मांगने जा रहे थे। अब्बास और मि० फ्रेज़र सीढ़ियों से उतर आए, उनके साथ एक सज्जन और थे। मि० फ्रेज़र के पास एक तलवार थी और इनके साथी के पास एक हाथ में पिस्तौल और दूसरे में बन्दूक थी। मि० फ्रेज़र ने जल्द पहुंचने की इच्छा की। बादशाह के कमरे में पहुंचकर उन्होंने ज्योंही खबर कराई बादशाह बाहर आ गए। अब्बास ने मि० फ्रेज़र की प्रार्थना बादशाह से निवेदन की। बादशाह ने सुनते ही तमाम फौज जो उस वक्त उपस्थित थी, कुछ अफसरोंसहित, जो मिल सके, दो तोपें लेकर फौरन कप्तान डगलस के निवास-स्थान पर पहुंचने की आज्ञा दी। इसी समय हकीम अहसानुल्लाखां भी आ गए। उन्होंने बादशाह से कहा कि कप्तान डगलस ने दो पालकियों के लिए भी प्रार्थना की है। जिससे लेडियों को, जो इनके मकान में ठहरी हैं, हरमसरा में लाकर छिपा दिया जाए। बादशाह ने हकीम अहसानुल्लाखां से बन्दोबस्त करने के लिए कहा। और नियत सेवकों को दो पालकियां और उनके उठाने के

लिए विश्वासी कहारों को भेजने का हुक्म दिया और कहा—उन्हें सीधे रास्ते न लाएं। किन्तु बाग के पीछे से चक्कर देकर लाएं, जिससे विद्रोही सवारों को, जो किले में घुस गए हैं, यह न मालूम होने पाए।—बादशाह हुक्म देकर अन्दर खड़े हुए जल्दी की ताकीद कर रहे थे और हकीम अहसानुल्लाखां इनके पास खड़े हुए थे। थोड़ी देर बाद एक सेवक, जो पालकियां लेने गया था, वापस आकर कहने लगा कि पालकियां भेज दी गई हैं। परन्तु थोड़ी देर बाद पालकियोंवाले भी उलटकर आ गए। उन्होंने सूचना दी कि मि० फ्रेज़र कत्ल कर दिए गए।

यह दस बजे से पहले की घटना है। हकीम अहसानुल्लाखां ने फिर दूसरा आदमी ठीक खबर लाने को भेजा। साथ ही कप्तान डगलस कहां हैं, यह भी दर्याफ्त कराया। वे लोग कुछ देर बाद वापस आए और कहा कि मि०फ्रेज़र ही नहीं किन्तु कप्तान डगलस और उनके साथवाली स्त्रियां भी कत्ल कर डाली गईं।

बादशाह यह सुनकर अन्दर चले गए, मगर गुलामअब्बास हकीम अहसानुल्लाखां के साथ अत्यन्त साहस करके दीवानखाने के कमरे में चला आया। तत्काल बाद ही पैदल सिपाहियों के दोनों दस्ते, जो किले के फाटकों पर थे, मेरठ के बागी सवारों को साथ लिए हुए दीवाने-खास में आए, जहां इन लोगों ने बन्दूकें और पिस्तौलों से हवा में फायर किए और एक हंगामा जमा कर दिया। बादशाह शोर-गुल सुनकर अन्दर से निकल आए और दीवाने-खास के दरवाज़े पर खड़े होकर अपने खिदमतगारों से कहा—लोगों को शोर मचाने से रोको और सिपाहियों को आगे आने को कहो।—फिर शोर बन्द हो गया। और अफसर सवार उसी तरह घोड़ों पर चढ़े हुए बादशाह के पास आए और कहा—वे चाहते हैं कि कारतूसों का इस्तेमाल एकदम बन्द कर दिया जाए, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के मज़हब के खिलाफ है। क्योंकि इनमें सुअर और गाय की चर्बी है।—और उन्होंने यह भी कहा कि हाल ही में उन्होंने मेरठ के तमाम अंग्रेज़ों को कत्ल कर डाला है, और अब वे बादशाह से सहायता चाहते हैं। बादशाह ने जवाब दिया—मैंने तुम्हें नहीं बुलाया था। यह तुमने बड़ी दुष्टता का काम किया।—इसपर एक सौ या दो सौ के लगभग सिपाही जो मेरठ से आए थे, आगे बढ़े और दीवाने-खास में घुस गए और कहा—जब तक हुज़ूर बादशाह हममें सम्मिलित न हों, हम मुर्दा लोग हैं और कुछ भी नहीं कर सकते।—फिर बादशाह एक कुर्सी पर बैठ गए और सिपाही, सवार, अफ़सर एक के बाद दूसरे आते गए और ज़मीन पर गिर-गिरकर बादशाह को अपना हाथ इनके

सिरों पर रखने के लिए प्रार्थना की। बादशाह ने ऐसा ही किया। उस समय खूब शोर और ऊधम मचा हुआ था। और सब लोग एक राय होकर ऊंची आवाज़ से चिल्ला रहे थे। बादशाह अपने खास कमरे में चले गए। और सवारों ने सहन में घोड़े बांधकर दीवाने-आम में अपने विस्तर खोलकर बिछा दिए। और किले के चारों तरफ पहरा तैनात कर दिया।

विद्रोहियों के शहर में घुस आने, अंग्रेज़ों के कत्ल करने, इमारतों को जलाने, ढहाने, महसूलखाना मीरवहर को ढा देने की खबर जब छावनी में पहुंची तो जंगी अफसरों ने तमाम फौज को तैयार होने का हुक्म दिया।

सबसे पहले ५४ नं० रेजीमेण्ट हिन्दुस्तानी पैदलों की छः कम्पनियां रेली साहब की अधीनता में काश्मीरी दरवाज़े की ओर चलीं। इनके साथ सिर्फ बन्दूकें थीं। दो कम्पनियां मेजर टेम्प्रेस की अधीनता में तोपों के साथ जाने को तैयार हो गई। थोड़ी दूर ही पर विद्रोहियों से इनकी भेंट हो गई। अफसर बेफिक्री से आगे-आगे चल रहे थे। विद्रोहियों ने सिपाहियों से कहा—तुम्हें हम कुछ न कहेंगे, सिर्फ इन फिरंगियों को मारेंगे।—इतना कहकर उन्होंने गोलियां सर करनी शुरू कर दीं। पहली ही गोली में कर्नल रेली गिर पड़े, विद्रोहियों ने तत्काल उनका सिर काट डाला।

कम्पनी के सिपाहियों ने अफसरों की आज्ञा से न बन्दूकें भरीं न विद्रोहियों को रोका—वे सब भी विद्रोहियों में मिल गए। इतने में एक कप्तान सिपाहियों की गारद लिए पहुंच गए जो एक सप्ताह के लिए शहर की रक्षा के लिए नियत किए गए थे। उन्होंने यह माजरा देख अपनी गारद को फायर का हुक्म दिया। पर उन्होंने भी उनकी परवाह न की और कहने लगे—तुम फिरंगियों ने हमारा मज़हब खराब किया है। हमसे अब रहम की आशा न रखना।—निदान सभी अफसर कत्ल कर डाले गए।

ग्यारह बजे दोपहर को जब इस घटना की खबर छावनी पहुंची तब ७४ नं० रेजीमेण्ट की पूरी टुकड़ी विद्रोह का दमन करने को शहर की ओर चली। परन्तु इसकी सिर्फ दो ही कम्पनियां वहां हाज़िर थीं, बाकी सब सिपाही लापता थे। रास्ते में अफसरों की लाशें छावनी की ओर गाड़ियों पर लदी हुई आती दीख पड़ीं। उनके ऊपर स्त्रियों के गाउन पड़े थे।

बारह बजे के लगभग पहाड़ी पर का बुर्ज स्त्रियों, घायलों और बच्चों से भर

गया। किसी तरह का प्रबन्ध सम्भव न था, बेहद शोर हो रहा था। न खाने का प्रबन्ध था न पानी का। कोई न किसीकी आज्ञा मानता था और न कुछ सुनता था।

शाम हो रही थी, शहर में चारों ओर आग ही आग दीख रही थी। पद-पद पर विपद और अशान्ति बढ़ रही थी, आसपास के सिपाही बे-कहे हो रहे थे। अन्त में सबने जैसे बना वहां से भाग जाने में खैर समझी। जिधर जिसका सींग समाया भाग निकला। कोई करनाल, कोई मेरठ और कोई किसी ओर।

उसी दिन सुबह सात-आठ बजे के बीच सर पी ओफल्स मेटकाफ युगली साहब के मकान पर गए और कहा—मेगज़ीन में चलकर दो तोपें निकलवा दीजिए और उन्हें पुल पर भिजवा दीजिए जिससे विद्रोही पुल न पार कर सकें।

युगली साहब मेटकाफ साहब के साथ मेगज़ीन तक आए। वहां लेफ्टिनेण्ट ड्यूली, लेफ्टिनेन्ट रेंज, कंडक्टर और एक्टिङ्ग सब-कण्डक्टर कटरो तथा सार्जण्ट एडवर्ड और स्टुअर्ट अपने हिन्दुस्तानी अमले के साथ हाज़िर थे। सर पी ओफल्स अपनी गाड़ी से उतर पड़े और लेफ्टिनेण्ट ड्यूली के साथ बुर्ज पर गए जो यमुना की तरफ था। वहां से पुल साफ नज़र आ रहा था। वहां पहुंचकर देखा तो विद्रोही पुल को पार कर रहे थे। यह देखते ही सर पी और मेटकाफ लेफ्टिनेण्ट ड्यूली को लेकर तुरन्त शहरपनाह के दरवाज़े देखने गए, जो सब खुले थे और विद्रोही उसमें शोर मचाते हुए प्रविष्ट हो रहे थे। यह देख लेफ्टिनेण्ट घोड़ा दौड़ाते हुए मेगज़ीन में वापस आए और उसके दरवाज़े बन्द कराकर तेगे लगवा दिए और दरवाज़े के भीतर दो तोपें छः पन्नी की दुचन्द गर्राब भरवाकर एक्टिङ्ग सब-कन्डक्टर और सार्जेण्ट स्टुअर्ट की अधीनता में दे दीं। इन लोगों को बत्तियां देकर हुक्म दे दिया गया कि अगर विद्रोही दरवाज़े के भीतर घुसें तो तोपें सर कर दी जाएं। मेगज़ीन का बड़ा दरवाज़ा भी उसी तरह दो तोपों से मज़बूत कर दिया गया तथा दरवाज़ों के अन्दर गोखरू बिछवा दिए गए। इसके सिवा दो तोपें दूरदर्शिता के खयाल से इस तरह और रखवा दी गईं कि उनका गोला दरवाज़े और बुर्ज तक पहुंच सके। दरवाज़ों तथा सामान के दफ्तर के बीच के रास्ते में छः-छः पन्नी और चौबीस पन्नी का गुब्बारा इस तरह गाड़ दिया गया था कि जिधर चाहें घुमाकर आसपास के मकानों की रक्षा कर सकें। इन सब गुब्बारों और तोपों में दूने गर्राव छर्रे भरवा दिए गए थे।

इस प्रकार मेगज़ीन की रक्षा का यथासम्भव प्रबन्ध करके हिंदुस्तानी अमलों को हथियार बांटे गए, जो उन्होंने अनिच्छा से लिए। इसके बाद कण्डक्टर एकलो तथा साजण्ट स्टुअर्ट ने एक शिताबा लगाया। और हुक्म दिया गया कि जब लेफ्टिनेण्ट के हुक्म से कण्डक्टर युमली अपनी टोपी सिर से उठाकर इशारा करें, फौरन शिताबे में आग दे दी जाए।

यह प्रबन्ध हो ही रहा था कि किले से एक गारद ने आकर कहा—शाहे-देहली का हुक्म है कि फौरन मेगज़ीन उनके हवाले कर दी जाए।—परन्तु, इस हुक्म की तालीम नहीं की गई, न जवाब दिया गया। इसी बीच में लेफ्टिनेण्ट को इत्तला मिली कि मेगज़ीन की दीवारों पर चढ़ने के लिए किले से ज़ीने आ रहे हैं।

कुछ देर में ज़ीने आ गए और टिड्डीदल की तरह विद्रोही मेगज़ीन में घुस आए। भीतर के सिपाही भी उनमें मिल गए। जब तक गोला-बारूद रहा लड़ाई होती रही। लाशों के ढेर लग गए—पर विद्रोही बहुत थे।

लेफ्टिनेण्ट रेंज ने रक्षा के सब उपाय कर डाले, सब तोपें चार-चार वार सर की गईं। विद्रोही सावन-भादों की बौछार की तरह गोलियां बरसा रहे थे। जब गोला-बारूद खत्म हो गया और बचने की कोई आशा न रही तो लेफ्टिनेण्ट डचूली ने मेगज़ीन को उड़ाने का इशारा किया। उसकी तामील तुरन्त कर दी गई। तमाम शिताबों में आग लगा दी गई। ऐसा धड़ाका हुआ कि आसपास के मकान ढह गए। जो दीवारें टूट गई थीं उनके रास्ते बचे-खुचे आदमी जमुना की ओर भागे। लेफ्टिनेण्ट रेंज और कण्डक्टर डचूली जीवित बच निकले। पर ये दोनों बुरी तरह झुलस गए थे। उनका सारा माल-असबाब, उनकी स्त्री और तीन बच्चे इसमें खत्म हो चुके थे और उनका एक हाथ भी बिलकुल निकम्मा हो गया था। जमुना-पार इन्हें विद्रोहियों ने घेर लिया। कई घाव आए, उनके सब कपड़े उतार लिए गए। ये भूखे-प्यासे किसी तरह बारह दिन भटकते-फिरते मेरठ पहुंच पाए।

लूट-पाट और खून-खराबी का बाजार गर्म था। विद्रोही सिपाहियों के साथ बहुत-से शहर के लुच्चे-गुण्डे मिल गए थे। पहले उन्होंने गिरजाघर और अंग्रेज़ों की कोठियों को लूटकर जला डाला, औरत-बच्चे और मर्द जो जहां मिले, कत्ल कर डाले गए। कुछ अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष किसी तरह जान बचाकर छावनी में इकट्ठे हो गए थे। कैसे जान बचावें, भागकर कहां जाएं, यह सूझ नहीं पड़ता था। अनेक

अंग्रेज़ अफसर हाथ, पैर और चेहरे पर कालिख पोत, फटे चिथड़े पहन कहीं के कहीं भाग निकले थे। सड़कों पर घोड़ों, बग्घियों, पालकियों और पैदलों की भरमार थी। चारों तरफ से बन्दूकों की आवाज़ें आ रही थीं। घायलों और मरनेवालों के कराहने की आवाज़ों से कलेजा कांप रहा था। सारे बाज़ार बन्द, सारी गलियों में सन्नाटा, सारे घर बन्द। विद्रोहियों ने नगर में एक घोड़ा भी नहीं छोड़ा था। सब छीन ले गए थे। जिन दुकानदारों ने उनसे दाम मांगा उनको उन्होंने मार डाला। बिना किसी छोटे-बड़े का लिहाज़ किए सबसे बदज़बानी की। मुसाफिरों को लूट लिया। शहरवाले भूखे मर रहे थे। विधवाएं मकानों में रो रही थीं। वे विद्रोहियों को गालियां दे रही थीं। नित नया कोतवाल बदलता था। जहां नकद रुपया दीखता विद्रोही लूट लेते थे। सब रुपया सिपाहियों के अधिकार में था। शाही खज़ाने में एक पैसा भी जमा न था, किसी-किसी विद्रोही रेजीमेण्ट के पास इतना रुपया जमा हो गया था कि वे मुश्किल से कूच कर सकते थे। बोझ कम करने को उन्हें रुपयों की मुहरें बदलवानी पड़ती थीं। महाजनों ने मुहरों का भाव इतना बढ़ा दिया था कि सोलह की मुहर चौबीस-पचीस की मिलती थी। जैसे उन्होंने महाजनों को लूटा था उसी भांति महाजन अब उन्हें लूटते थे। बहुधा पीतल की अशर्फियां तक बेच दी जाती थीं। जिस रेजीमेण्ट को लूट का माल हाथ न लगा था वे रुपयेवालों पर ईर्ष्या करते थे। रुपयेवाले सिपाही लड़ाई से कतराते थे। इससे दूसरी रेजीमेण्ट के सिपाही उन्हें लानत-मलामत देते थे। कभी-कभी दोनों में ठनते-ठनते रह जाती थी।

बादशाह की तरफ से प्रत्येक पैदल को चार आना और सवार को एक रुपया रोज़ भत्ता मिलता था। शाहज़ादे फौज के अफसर बना दिए गए थे। पर ये ऐश के पुतले दया के पात्र थे। बेचारों को दुपहरी की धूप में घोड़े पर चढ़कर घर से बाहर निकलना मुसीबत थी। इन्होंने गज़लें सुनना, शराब पीना और मौज करना सीखा था। तोप और बन्दूकों की आवाज़ से इनके दिल धड़कते थे। न ये बेचारे परेड कराना जानते थे, न फौज का संचालन, न उनपर शासन ही कर सकते थे। उनकी मूर्खता पर सिपाही हंसते थे। कभी-कभी बदज़बानी भी कर बैठते थे। जो शाही फौज थी वह तो और भी बहादुर थी। जब उसका जी चाहता युद्धस्थल से लौट आती थी। ये लोग पैरों पर ज़ख्म के बहाने चिथड़े लपेटकर हाय-तोबा करते, लंगड़ाते वापस चले आते थे। ये लोग मारतों के पिछाड़ी और भागतों के अगाड़ी

थे। बाहशाह सलामत फौज के लिए मिठाई वगैरा युद्धस्थल में भेजते थे तो यार लोग रास्ते ही में उसे लूट लेते थे।

जिन विद्रोहियों का मतलब हल हो चुका था और जेबें भर गई थीं, उन्होंने अपनी तलवारें और बन्दूकें कुओं में डाल दी थीं ; और तितर-बितर होकर जंगलों और देहातों में भाग गए थे। उन्हें भय था कि अंग्रेज़ी फौजें आ रही हैं। वास्तव में यदि उसी दिन अंग्रेज़ी फौजें आ जातीं तो दिल्ली पर उसी दिन अधिकार हो जाता। इन्हें भी गांव के गूजरों ने खूब लूटा।

न तो बादशाह की आज्ञा ही कोई न मानता था, न शाहज़ादों ही को कोई पूछता था, न वे बिगुल की परवाह करते थे और न वे अफसरों की सुनते थे, न वे अपना कर्तव्य ही पालन करते थे। अपनी वर्दियां तक पहनने की उन्हें परवाह न थी। बेचारे शाहज़ादे जो इनके अफसर बनाए गए थे, अपनी फौज की भाषा तक नहीं समझ सकते थे। वे दुभाषियों के द्वारा बातें करते थे। वे अपने ऐशो-आराम की याद कर-करके पछताते थे।

शिल के गोलों से शहर के बहुत-से मकानात खंडहर हो चुके थे। दीवाने-खास में जो संगमर्मर का तख्त बिछा था, चूर-चूर हो गया था। अंग्रेज़ी स्कूल लूटकर जला डाला गया था और अंग्रेज़ी किताबें गली-कूचों में पड़ी हुई थीं, जो अंग्रेज़ी बोलता था उसीकी सिपाही खूब मरम्मत कर डालते थे।

मेगज़ीन फटने से सैकड़ों मकान ढह गए थे। पांच सौ से अधिक आदमी मर गए थे। लोगों के मकानों में इतनी गोलियां गिरी थीं कि लड़कों ने आध-आध सेर और किसी-किसीने सेर-सेर भर चुन ली थीं। मेगज़ीन फटने के बाद विद्रोही और गुण्डे उसे लूटने को टूट पड़े। जो सामान टोपी, बन्दूक, तलवार और संगीनें ले सके उठा ले गए। खलासियों ने घरों को उम्दा-उम्दा हथियारों से भर लिया और रुपये के तीन सेर के हिसाब से तोल-तोलकर बेच डाला। तांबे की चादरें रुपये की तीन सेर बिकीं। बन्दूक की कीमत आठ आना थी। फिर भी कोई खरीदता न था। अच्छी से अच्छी अंग्रेज़ी किर्च चार आने में महंगी थीं और संगीन तो एक आने को भी कोई नहीं पूछता था। तोपदान और परतले इतने अधिक थे कि लूटनेवालों को इसका एक पैसा भी नहीं मिलता था। मजनू के टीले में जितनी बारूद थी, आधी तो गूजरों ने लूट ली थी और आधी शहर में आ गई थी।

सिर्फ सात मास बाद २७ जनवरी, १८५८ को तख्ता पलट चुका था। वही बदनसीब दीवाने-ख़ास था। चीफ कमिश्नर पंजाब सर जान लारेंस की आज्ञा से भाग्यहीन बादशाह पर एक योरोपियन फौजी कमीशन की अधीनता में मुकदमा चलाया जा रहा था। लेफ्टिनेण्ट कर्नल डास प्रधान विचारक के आसन पर थे। बादशाह मुहम्मदशाह अभियुक्त की हैसियत से अदालत में हाजिर थे। दीवाने-खास की सुनहरी छत लरज रही थी और उसके संगमर्मर के खम्भे कांप रहे थे।

हलफ आदि की साधारण कार्यवाही होने के बाद बादशाह पर फर्द जुर्म लगाया गया जिसका मतलब यह था :

बादशाह मुहम्मद बहादुरशाह ने कम्पनी बहादुर के पेंशनयाफ्ता होने पर भी सैनिकों को बगावत करने में उत्तेजना और मदद दी। उन्होंने अपने बेटे मिर्ज़ा मुगल को, जो सरकार अंग्रेज़ी की प्रजा था, और अन्यों को सरकार अंग्रेज़ी के विरुद्ध हथियार उठाने में मदद दी। उन्होंने ब्रिटेन की प्रजा होने पर भी उसके प्रति राजभक्ति नहीं रखी। और अपने को अनुचित रूप से बादशाहे-हिन्द प्रसिद्ध कर लिया। जिससे अनेक अंग्रेज़ औरतें, बच्चे व मर्द कत्ल कर दिए गए। ये सब एक्ट १६ सन् १८५७ की रू से भयानक अपराध हैं।

फर्द जुर्म सुनाने के बाद अदालत ने बादशाह से पूछा :

'मुहम्मद बहादुरशाह, तुमने ये अपराध किए हैं ?'

बादशाह ने मुस्कराकर कहा—नहीं।

अदालत ने गवाह बुलाने का हुक्म दिया। परन्तु सरकारी वकील ने मुकदमे की तशरीह करते हुए कहा कि अदालत के अधिकार सिर्फ फैसले ही तक सीमित किए गए हैं। क्योंकि मेजर जनरल विलसन ने अभियुक्त से वादा किया है कि उसे प्राणदण्ड नहीं दिया जाएगा। क्योंकि अभियुक्त की ज़िन्दगी का ज़िम्मा कप्तान हड्सन ने लिया है, इसलिए इस फौजी कमीशन को अधिकार नहीं था कि अभियुक्त के लिए कोई दण्ड तजवीज़ करे।

कागज़ पढ़े जाने लगे और बादशाह बेहोश हो गए। विवश अदालत अगले दिन के लिए उठ गई।

वह बूढ़ा बदनसीब बादशाह रंगून के एक शानदार कैदखाने में एक लाचार लावारिस कैदी की भांति अपने आखिरी दिन बिताकर एक दिन मर गया !

राजधर्म

यह बुद्ध-धर्म के प्रभाव को व्यक्त करनेवाली कल्पना-प्रसूत कहानी है। इसमें राजधर्म और बुद्ध के प्रेमधर्म का अन्तर्द्वन्द्व प्रकट किया गया है।

दिगन्त-व्यापी जयघोष से क्षण-भर को समाधिस्थ बुद्ध चल हुए। आनन्द ने आंख उठाकर देखा, महाराजकुमार अपने राजकीय परिच्छद और बहुमूल्य शस्त्रों से सज्जित चपल घोड़े से उतर रहे हैं। उनकी अनुगत सेना पंक्ति बांधे अविचल खड़ी है। वन की वह शान्त तपस्थली राजवैभव से जैसे मुखरित हो उठी है।

महाराजकुमार आगे बढ़े और उनके पीछे ही सौ दास बहुमूल्य उपहारों से भरे स्वर्ण-थाल लिए चले। महाराजकुमार ने संकेत किया, थाल महाबुद्ध के सम्मुख रख दिए गए। राजकुमार उन्हें सामने रखकर करबद्ध बैठ गए। आनन्द ने देखा और मस्तक झुका लिया। कुमार ने महाबुद्ध की प्रशान्त समाधिस्थ अचल मुद्रा को एक बार देखकर जलद गम्भीर स्वर में कहा—महागुरु परम भट्टारक महापादीय, महाराजकुमार सुवर्ण आपकी सेवा में भेंट अर्पण कर प्रणाम करता है।

परन्तु कुमार का अभिवादन जैसे वातावरण में एक कम्पन कर वापस लौट आया। प्रबुद्ध ने देखा नहीं, वे हिले भी नहीं। उनके होंठ जड़वत् रहे। आनन्द ने एक बार प्रबुद्ध सत्त्व को देखा, और सिर झुका लिया। महाराजकुमार का मुख क्रोध से तमतमा गया। उनके होंठ फड़के और एक अस्फुट ध्वनि उसमें से निकली—ओह इतना घमण्ड!

वे उठे और अपने घोड़े पर सवार होकर लौट गए। उनके जाने पर आनन्द ने शिष्यों से संकेत में कहा—यह सब भेंट की सामग्री महाराजकुमार को लौटा आओ।

अधिकार, यौवन, वंश और अभ्यास ने कुमार के खून को खौला दिया। वे उस रात न सो सके, वे सोचते रहे, उसका इतना घमंड? पाखंडी! मैं उसकी सेवा

में गया था। मैं कितनी बहुमूल्य भेंट ले गया था। वह उसने देखी भी नहीं, लौटा दी। और मेरा अभिवादन भी ग्रहण नहीं किया। यह तो क्षत्रिय-कुमार का भारी अपमान हो गया।

महाराजकुमार विकल होकर जल्दी-जल्दी टहलने लगे। रात गम्भीर होती गई। धीरे-धीरे उनकी विचारधारा बदली। उन्होंने सोचा, कहीं कुछ मुझ ही से तो भूल नहीं हो गई। मैं इतनी सेना, हथियार और वैभव लेकर वहां क्यों गया था? एक त्यागी पुरुष का शिष्य बनने के लिए ये सब चीज़ें किस काम की थीं? जिसने पृथ्वी का सब कुछ त्याग दिया है, उसे यह सब वैभव क्या लुब्ध करेगा?—महाराजकुमार सोच में पड़े।

उनका क्रोध शांत हुआ और प्रभात होते ही वे फिर वहां पहुंचे, जहां घने वृक्ष की छाया में महाबुद्ध ध्यान में बैठे थे।

महाराजकुमार ने हाथ जोड़ विनयावनत खड़े होकर कहा—महाप्रभु, प्रतापी लिच्छवि राजकुमार सुवर्ण आपको प्रणाम करता है। और आपकी सेवा में शिष्य बनने के लिए आया है।—आनन्द ने देखा, एक क्षीण मुस्कान उनके होंठों पर आई और गई। उन्होंने सिर झुका लिया। महाबुद्ध उसी तरह स्थिर और निश्चल थे। राजकुमार झुंझलाकर लौट आया।

अब वह यही सोचता था कि क्यों उसका प्रणाम बुद्ध ने ग्रहण नहीं किया। क्यों उन्होंने उसपर कृपादृष्टि नहीं की। अब मेरा क्या दोष रह गया। परन्तु कुमार की बुद्धि निर्मल हो रही थी। उसने सोचा, ठीक ही तो हुआ! राजमद तो अभी भी मुझमें था। क्या मेरे वस्त्र राजकुसारों जैसे न थे? क्या मैंने अपने को लिच्छवि-राजकुमार नहीं कहा? क्या यही मेरा परिचय नहीं कि हम भ्रान्त-अशान्त प्राणी-मात्र हैं और बुद्ध ही हमारा उद्धार कर सकते हैं? राजकुमार रोने लगे। वे उसी क्षण नंगे पैर, नंगे बदन अर्धरात्रि में चुपचाप जाकर बुद्ध की स्थिर गंभीर मूर्ति के सम्मुख खड़े हो गए। आनन्द ने देखा, उन्होंने धीरे से सिर हिलाया। रात विगलित होने लगी, उषाकाल आया। कुमार उसी भांति बुद्ध की ओर दृष्टि बांधे खड़े थे।

हठात् महाबुद्ध के स्थिर शरीर में गति दीख पड़ी। उन्होंने धीर-गंभीर स्वर में कहा—क्या है पुत्र?

'आपकी शरण में आया हूं।'

'कौन हो?'

'आपका दास सुवर्ण।'

'किसलिए?'

'प्रणाम करने और यह निवेदन करने कि आप सेवक को अपना शिष्य बनाइए।'

बुद्ध ने उत्तर नहीं दिया। कुमार चुपचाप खड़े रहे। रात बीत गई। उषा का उदय हुआ। बुद्धवाणी फिर प्रवाहित हुई—अब क्यों खड़े हो?

'प्रभु प्रसन्न हों, सेवक को शिष्य स्वीकार करें।'

बुद्ध मौन रहे। महाराजकुमार ने साहसपूर्वक कहा—क्या सेवक शिष्य होने के योग्य नहीं?

'नहीं।'

'सेवक का अभिवादन स्वीकार होगा?'

'नहीं।'

राजकुमार ने विगलित वाणी से कहा—प्रभु, मैं आपकी शरण हूं।

प्रबुद्ध विगलित हुए। उन्होंने कहा—अपनी राजधानी लौट जाओ वत्स, और धर्मपूर्वक राज्य-शासन करो।'

'परन्तु मैं महाप्रभु का शिष्य होने आया हूं।'

'उसकी तुममें योग्यता नहीं है। योग्यता प्राप्त होने पर बुद्ध स्वयं तुम्हें शिष्य-पद देने आएंगे। जाओ वत्स, न्याय-राज करो।'

'परन्तु प्रभु, मेरी अयोग्यता क्या है?' राजकुमार ने साहसपूर्वक कहा।

बुद्ध कुछ देर चुप रहकर बोले—तुमने अपने मंत्री को अधिकार-च्युत करके कारागार में डाला है न?

'हां महाराज, उसका अपराध भारी है। उसने प्रजा के साथ क्रूरता की थी, वह पतित और बेईमान था। उसने राजसत्ता का दुरुपयोग किया था। मेरा कर्तव्य था कि मैं अपराधी को दण्ड दूं, फिर वह चाहे जैसा भी प्रतिष्ठित हो। अन्ततः मैं राजा हूं। प्रजापालन मेरा धर्म है।'

'तुम राजा हो, प्रजापालन तुम्हारा धर्म है, अतः तुम अपराधी को दण्ड दो यह ठीक ही है, राजोचित भी है। पर वत्स! बुद्ध के शिष्य को यह उचित नहीं, क्षमा और उदारता ही उसका दण्ड है। हां, तुमने अपनी पत्नी को भी त्याग दिया है न?'

'खेद की बात है कि वह अविश्वासिनी हो गई, वह पतिव्रता न रही। दूसरों के लिए आदर्श कायम करने के लिए उसे त्याग देना ही उचित था। उसके साथ अति उदार व्यवहार किया गया है। दूसरा व्यक्ति उसे कुत्तों से नुचवा डालता।'

बुद्ध ने हंसकर कहा—नहीं तो वत्स ! एक पति और राजा का तो वही कर्तव्य था। इसके लिए तुम्हें दोष नहीं दिया जा सकता। इसीसे मैंने कहा था कि तुम जाओ, राज्य-शासन करो। तुममें राजा होने योग्य सब गुण हैं। पर बुद्ध के शिष्य होने योग्य नहीं। क्षमा बुद्ध का शस्त्र है, उदारता उसकी नीति है, सहिष्णुता उसका धन है, और आत्मनिग्रह उसका मार्ग है।'

'मेरे प्रभु, मुझे आप उसी मार्ग पर लाइए।'

'अभ्यास करो वत्स। ज्योंही तुममें मेरे शिष्य होने की योग्यता प्राप्त होगी, मैं स्वयं ही तुम्हारे पास आऊंगा।' बुद्ध समाधिस्थ हुए। महाराजकुमार नतमस्तक हो चल दिए।

सारे ही नगर में हलचल मच रही थी। राजधानी में विद्रोह के लक्षण दिखाई दे रहे थे। महाराजकुमार ने पदच्युत मंत्री को न केवल अपने पद पर प्रतिष्ठित किया था, प्रत्युत उसकी सम्पत्ति भी उसे लौटा दी थी। अपनी दुराचारिणी रानी को भी उसने फिर से अन्तःपुर में बुला लिया था और उससे क्षमा मांगी थी। सारा समाज और विद्वत्-समूह उसके इस अनाचारपूर्ण काम से विद्रोही हो उठा था। यही नहीं, उसने सेनाएं विसर्जित कर दी थीं, जेलों के द्वार खोल दिए थे।

मन्त्री ने कहा—महाराज, आपने मुझ अधम को फिर से मंत्री-पद पर प्रतिष्ठित करके जनमत को तुच्छ कर दिया है। मेरा अपराध गुरुतर था। आप मुझे पदच्युत करें, मैं प्रायश्चित्त करूंगा।

राजकुमार ने कहा—मंत्री, मुझे तुम्हारा विश्वास है। प्रेम और सेवा ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है।'

'परन्तु महाराज, लोग आपके घात करने की चिंता में हैं।'

'अगर मेरा घात करने से उन्हें सुख मिले तो उन्हें यह काम करने दो। तुम इसकी चिन्ता न करो। तुम अपना काम करो—प्रेम और सेवा।'

न्यायाधीशों का एक दल त्यागपत्र लिए आ पहुंचा। उन्होंने कहा—महाराज, हम न्याय नहीं कर सकते। न सेना, न सिपाही, न जेल। फिर हम दण्ड कैसे दें ?

राजकुमार ने कहा—तुम लोग प्रेम करो और सेवा करो। फिर किसीकी ज़रूरत न रहेगी।

अन्त:पुर में जाने पर रानी ने चरणों में लोटकर कहा—स्वामी, इस अपराधिनी से यह महल अपवित्र होता है। मुझे आज्ञा दें कि मैं प्राणनाश करके प्रायश्चित करूं।

'प्रिये, ऐसा न करो। प्रेम और सेवा दोनों का एक रस चखा है फिर प्राणनाश क्यों?'

'हाय नाथ, यह प्रेम और सेवा मुझे अंधी दिशा में ले गई थी।'

'परन्तु अब नहीं प्रिये, यह असम्भव है। अब तुम पात्रापात्र सभी से प्रेम करो, सभी की सेवा करो। निष्काम और जितेन्द्रिय।'

सेनापति ने आकर कहा :

'गज़ब हो गया महाराज, शत्रु संधि पाकर दल-बल से चढ़ आया है।'

'मन्त्री से कहो, उनके आतिथ्य में किसी प्रकार की कमी न रहे। पीछे मैं स्वयं उनसे मिलूंगा।'

'परन्तु महाराज, वे रक्तपात के लिए आए हैं।'

'क्यों, क्यों?'

'महाराज, वे आपका राज्य चाहते हैं।'

'तो ले लें, इसमें रक्तपात की क्या बात है?'

सेनापति निराश भाव से लौट गए।

राजा पागल हो गया है। इसे राजच्युत करो। वरना राज्य की खैर नहीं, सभी राज्यवर्गी एक मुख से यही कह रहे थे।

कुछ कह रहे थे कि इसे तलवार के घाट उतार दो। भ्रष्टा रानी और बदमाश मंत्री को भी। इन सबको मार डालो। वरना सारी राज्य-व्यवस्था धूल में मिल जाएगी।

महाराजकुमार ने कहा—मेरे मारने अथवा राज्यच्युत करने से तुम्हारा कल्याण हो तो खुशी से करो। यह मेरी तलवार लो।—उन्होंने तलवार निकालकर विरोधियों को दे दी।

बुद्ध भगवान तेज-विस्तार करते हुए आते दीख पड़े। उन्होंने कहा—वत्स, मैं

तुमसे यह भिक्षा लेने आया हूं कि तुम बुद्ध के शिष्य बनो।

राजकुमार बुद्ध के चरणों में नतजानु हुए।

बुद्ध ने कहा :

कहो—बुद्धं शरणं गच्छामि।

संघं शरणं गच्छामि।

सत्यं शरणं गच्छामि।

राजा ने दोहराया और दिगन्तव्यापी जयघोष उठा।

जय, महाराजकुमार की जय !

महाबुद्ध की जय !

मृत्यु-चुम्बन

प्राचीन भारत की एक राजनीतिक कथा पर आधारित कहानी।

कहानी का प्रारम्भ मसीह-पूर्व की छठी शताब्दी से होता है। जहां पहाड़ी नदी सहानीरा हरितवसना पर्वतस्थली को अर्धचन्द्राकार काट रही थी, वहीं उसके बायें तट पर अवस्थित शैल पर मगध-साम्राज्य की राजधानी राजगृह बसी थी। यह नगरी उन दिनों मगध-साम्राज्य का केन्द्र और विश्व की तत्कालीन जातियों और संस्कृतियों का संगम थी। मगध-साम्राज्य के अधिपति शिशुनागवंशी सम्राट् बिम्बसार थे, जिनकी आयु इस समय पचास वर्ष की थी। इनके महामात्य आर्य वर्षकार उस समय के सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में अप्रतिम राजनीतिज्ञ थे। मगध में अस्सी हजार ग्राम लगते थे, और राजगृह एशिया के प्रसिद्ध छः महासमृद्ध नगरों में से एक था, जो तीन सौ योजन विस्तृत भूखण्ड में फैला था। इस साम्राज्य के अन्तर्गत अठारह करोड़ जनपद था।

एक दिन, एक प्रहर रात गए राजगृह की सूनी और अंधेरी गलियों में एक तरुण अश्वारोही ने प्रवेश किया और वह अभीष्ट स्थान की खोज में भटकता और पूछताछ करता आचार्य शाम्बव्य काश्यप के मठ के द्वार पर जा पहुंचा जो राजगृह के महावैज्ञानिक और भूत-प्रेत-वैतालों के स्वामी प्रसिद्ध थे। वह तरुण गान्धार से तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व का अन्तेवासी सोमप्रभ था। आचार्य ने यज्ञशाला में उसके ठहरने की और आहार की व्यवस्था कर दी।

युवक बहुत दूर से आया था और थक गया था, इसलिए वह जल्द ही मृग-चर्म पर सो गया, परन्तु अकस्मात् एक अस्पष्ट चीत्कार से वह चौंक उठा और हाथ में खड्ग लेकर साहस करके गर्भगृह में उतर गया जहां से चीत्कार आ रहा था। किवाड़ों की दरार से झांककर उसने देखा कि आचार्य, जिनकी मूर्ति अति भयानक थी, व्याघ्रचर्म पर बैठे थे, और उनके सामने कोई बड़े राजनीतिज्ञ बहु-मूल्य कौशेय पहने बैठे थे। उनके निकट ही एक अनिन्द्य सुन्दरी बाला, जिसकी

काली लटें उसके चांदी के समान श्वेत मस्तक पर लहरा रही थीं, बैठी थी। उसका नाम कुण्डनी था। उसने भीतमुद्रा में कहा—नहीं पिता, अब नहीं।

आचार्य ने हाथ में चमड़े का एक चाबुक हिलाकर हिंस्रमुद्रा में कहा—दंश ले।—उन्होंने पिटक का ढकना उठाया, एक भीमकाय काला नाग फुफकार मारकर हाथ-भर ऊंचा खड़ा हो गया। बाला ने विवश नाग का मुंह पकड़कर कंठ में लपेट लिया और अपने मुंह के पास सांप का फन ले जाकर अपनी जीभ बाहर निकाली और नाग की चुटकी ढीली की। नाग ने फुंऊ करके बाला की जीभ पर दंश किया। बाला विष की ज्वाला से लहराने लगी।

आचार्य ने मद्यपात्र आगे सरकाकर कहा—मद्य पी ले कुण्डनी।—बाला ने मुंह लगाकर गटागट सारा मद्य पी लिया।

आचार्य ने कहा—कुण्डनी, तुझे अंगराज दधिवाहन पर अपने प्रयोग करने होंगे।

किन्तु बाला ने कहा—आप मार डालिए पिता, पर मैं चम्पा नहीं जाऊंगी।

आचार्य ने फिर चाबुक उठाया। अब तरुण आपे में न रह सका। खड्ग ऊंचा करके धड़धड़ाता गर्भगृह में घुंस गया। आचार्य और राजपुरुष दोनों हड़बड़ाकर खड़े हो गए। राजपुरुष ने क्रुद्ध होकर कहा—इस दुष्ट छिद्रान्वेषी का इसी क्षण वध करो।

परन्तु आचार्य ने कहा—नहीं, अभी बन्दी करो।

बन्दीगृह में युवक के पास जाकर आचार्य ने राजनीति के कूट दृष्टिकोण और युद्ध-अभियान में वैज्ञानिक प्रयोगों का महत्त्व समझाया और उसे इस बात पर राज़ी किया कि वह नागपत्नी कुण्डनी के साथ चम्पा जाए, जहां मगध महासेनापति भद्रिक ने घेरा डाल रखा था, और चम्पा-विजय में उनकी सहायता करे।

कुण्डनी और सोमप्रभ ने केवल पांच सैनिकों के साथ अत्यन्त गुप्त रूप से चंपा की ओर प्रस्थान किया। किन्तु वे चम्पारण्य को पार कर ही रहे थे कि आसुरी माया से वशीभूत होकर अवश अवस्था में शम्बर असुर की नगरी में जा पहुंचे। चम्पारण्य की इस असुरपुरी के बहुत-से विचित्र वर्णन उन्होंने सुने थे। कोई पुरुष उस मार्ग से शम्बर असुर के भय से जाता नहीं था, क्योंकि असुरपुरी में जाकर कोई

भी व्यक्ति जीवित लौटता नहीं था।

असुरपुरी एक कलापूर्ण स्वच्छ गांव था। घर सब गारे-पत्थर के थे। उनपर गोल बांधकर छप्पर छाए हुए थे। सड़कें चौड़ी और साफ थीं। पशु पुष्ट और उनके गवांठ कलापूर्ण थे। असुर-तरुणियां सुरमे के रंग की चमकती देह पर लाल मूंगा तथा हिमधवल मोतियों की माला धारण किए, चर्म के लहंगे पहने, कमर में स्वर्ण की करधनी और हाथों में स्वर्ण के मोटे-मोटे कड़े पहने कौतूहल से इन बंदियों का आगमन देख रही थीं। रूपसी कुण्डनी सम्पूर्ण असुर-बालाओं की स्पर्धा की वस्तु हो रही थी। वह निर्भय साहसपूर्वक आगे बढ़ रही थी। सोम ने कहा—मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस असुरपुरी में तुम निर्भय और विनोदी भाव से प्रवेश कर रही हो।

'भय क्या है ?'

'यह तो अभी पता लग जाएगा जब शम्बर आज रात को हमें देवता पर बलि देगा।'

जब वे असुरराज के सामने पहुंचे, तो सोमप्रभ ने आसुरी भाषा में असुर का अभिनन्दन करते हुए कहा कि मैं प्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार की ओर से मैत्री-स्थापन का प्रस्ताव लाया हूं।

शम्बर असुर अपनी विशाल गुहा में एक व्याघ्रचर्म पर बैठा था। उसका शरीर बहुत विशाल था। रंग काला था। अवस्था का पता नहीं चलता था। सिर खुला था। बाल लाल और घुंघराले थे। भुजबन्द पर स्वर्णमण्डित सुअर के दांत बंधे थे। सिर पर स्वर्ण-पट्ट में जड़े किसी पशु के सींग थे। मस्तक पर रक्त चन्दन का लेप था।

सोमप्रभ ने असुरराज का अभिनन्दन किया।

असुरराज ने उसकी ओर देखकर कहा :

'गन्धर्व है कि मनुष्य ?'

'मनुष्य'

'कहां का ?'

'मगध का।'

'मगध के सैनिप बिम्बसार को मैं जानता हूं, परन्तु वह मेरा मित्र नहीं है। तू मेरे राज्य की सीमा में क्यों घुसा ? अक्षम अपराध है, और उसका दण्ड मृत्यु है।'

'किन्तु यह नियम शत्रु के लिए है, मित्र के लिए नहीं। प्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार असुरराज से मैत्री-स्थापन किया चाहते हैं।'

'मागध बिम्बसार दनुकुल का था। अब वह मनुकुल में चला गया है, तथा मनुष्य-धर्म का पालन कर रहा है, इसीसे वह मेरा मित्र नहीं है। मनुकुल सदैव देवकुल का मित्र होता है, दनुकुल का नहीं।'

'परन्तु मागध बिम्बसार दनुकुल-भूषण सामर्थ्यवान शम्बर की मित्रता चाहता है। मैं उसका मैत्री-संदेश लाया हूं।'

'इसका क्या प्रमाण है?'

'यही कि मैं एकाकी आया हूं, विजयिनी मागध सैन्य नहीं लाया।'

शम्बर ने कुंडनी की ओर उंगली उठाकर कहा—वह सुन्दरी कौन है?

'वह भी मागधी है।'

'तब सैनिप बिम्बसार ऐसी सौ सुन्दरियां मुझे दे तो मैं बिम्बसार का मित्र हूं।'

'यह हो सकता है, पर मागधी तरुणियां विद्युत्प्रभ होती हैं। उन्हें भोगने की सामर्थ्य असुरों में नहीं है। उन्हें छूते ही असुरों की मृत्यु हो जाएगी। वह असुरों के लिए अगम्य है।'

'अच्छा, यहां एक मागधी तरुणी है ही, इसीपर असुरों की परीक्षा ली जाएगी। अभी तू असुरपुरी में हमारा अतिथि रह।'

उसने मांग में मोती गूंथे थे। उसकी सघन घनश्याम केशराशि मनोहर ढंग से उसके चांदी के समान उज्ज्वल मस्तक पर शोभायमान थी। लम्बी चोटी नागिन के समान चरण-चुम्बन कर रही थी। बिल्वस्तनों को रक्त कौशेय से बांधकर ऊपर से उसने नीलमणि की कंचुकी पहनी थी। कमर में लाल दुकूल और उसपर बड़े-बड़े पन्नों की कसी पेटी उसकी क्षीण कटि की ही नहीं—पीन नितम्बों और सुन्दर उरोजों के सौन्दर्य की वृद्धि कर रही थी। उसने पैरों में नूपुर पहने थे, जिनकी झंकार उसके प्रत्येक पाद-विक्षेप करने से हृदय को हिलाती थी।

सोम ने कहा—कुण्डनी, क्या आज असुरों को मोहने के लिए साक्षात् मोहनी अवतरित हुई है?

'हुई तो है, असुरों का भाग्य।'

'तुम्हें असुरों का भय नहीं?'

'असुर से भय करने ही को क्या कुंडनी बनी है ?'

'तुम्हारा इरादा क्या है ?'

'इरादा क्या ? शम्बर या तो हमारे मैत्री-संदेश को स्वीकार करे, नहीं तो आज सब असुरोंसहित मरे।'

'उसे कौन मारेगा ?'

'क्यों ? कुण्डनी।'

'परन्तु किस प्रकार ?'

'यह समय पर देखना।'

'पर हमारे शस्त्र छिन गए हैं।'

'तो क्या हुआ, बुद्धि तो है।'

'तो कुण्डनी, आज की मुहिम की तुम्हीं सेनानायिका रहीं।'

'ऐसा ही सही, चलो।'

वह बाहर आई और असुर-सरदार से अधिकारपूर्ण स्वर में कहा—सैनिकों से कह, बाजा और मशाल लेकर आगे-आगे चलें।'

सरदार ने आज्ञापालन किया।

और वह घुंघरू बजाती, विद्युत्प्रभा की साक्षात् मूर्ति-सी, मार्ग को प्रकाशित करती हुई असुरपुरी के राजमार्ग पर आगे बढ़ी। सैकड़ों असुर पीछे थे।

सोम ने कहा—मायाविनी, इस समय तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुम्हीं इस असुर-निकेतन की स्वामिनी हो।

'और सम्पूर्ण असुरों के प्राणों की भी।' उसने कुटिल मुस्कान से हास्य किया।

भोज की बड़ी भारी तैयारी की गई थी। एक बड़े भारी अग्निकुंड में समूचा भैंसा भूना जा रहा था। असुर-तरुण हाथों में भाले लिए खड़े थे। असुर-तरुणियां नृत्यगान को तैयार थीं। कुंडनी असम साहस कर असुरराज के सिंहासन पर जा बैठी और सोम को पुकारकर उसने कहा—असुरों से कहो सोम, सुरा-भाण्ड यहां ले आएं।—सोम के कहने पर असुर भाण्ड वहां ले गए। इसी समय बाजे बज उठे। असुरों ने भयभीत होकर देखा—शम्बर खूब शृंगार किए ठाठ से आ रहा है।

सोम ने कहा—कुंडनी, असुरराज का सिंहासन छोड़ दे।

पर कुंडनी ने उसकी बात पर कान नहीं दिया। सिंहासन पर खड़े होकर कहा—महासामर्थ्यवान शम्बर के स्वास्थ्य और दीर्घायु के नाम पर।—और प्याले भर-भरकर असुरों को देने लगी। असुर उस अनिन्द्य सुन्दरी के हाथ से मद्य पी-पीकर नाचने लगे।

शम्बर ने दोनों हाथ फैलाकर कहा—मुझे भी दे मानुषी, एक भाण्ड मद्य।—कुण्डनी खट से सिंहासन से कूद, मद्य-भांड हाथ में ले लीला-नृत्य करने और असुर-राज के चारों ओर घूमने लगी। उसका मदभरा यौवन, उज्ज्वल मोहक रूप और गज़ब की भावभंगी देख शम्बर काम-विमोहित हो गया और कुण्डनी के चारों ओर नाचने और बार-बार मद्य मांगने लगा। कुण्डनी ने समूचा सुरा-भाण्ड हंसते-हंसते शम्बर के मुंह से लगा दिया। असुर गटागट पूरा घड़ा कण्ठ से उतार गया।

कुण्डनी ने सोम से कहा—इन मूर्खों से चिल्लाकर कहो—खूब पियो, स्वयं ढालकर, सामर्थ्यवान शम्बर के नाम पर।—सोम के यह कहते ही असुर-दल ने सुरा-भाण्डों में मुंह लगा दिया। वे सब गटागट पीने लगे। कुण्डनी ने सन्तोष की दृष्टि से सोम की ओर देखकर कहा—ठीक हुआ। खूब पिलाओ मूर्खों को, आज मरेंगे ये सब।

'तुम अद्भुत हो कुण्डनी।'

मद्य असुरों पर प्रभाव दिखाने लगा। वे खूब हंसी-दिल्लगी करने लगे। स्त्रियों तथा बालकों ने भी मद्य पिया। सोमप्रभ उन्हें और भी उत्साहित करके बार-बार पिलाने लगा। बुद्धिहीन असुर अन्धाधुंध पी रहे थे। पीते-पीते बहुत-से तो वहीं लोट गए। शम्बर का बुरा हाल था। वह सीधा खड़ा नहीं रह सकता था। पर कुण्डनी उसे नचा रही थी। वह नाचता था, हंसता था और आसुरी भाषा में न जाने क्या-क्या अंट-शंट बकता था।

कुण्डनी ने सोम से कहा—इन्हें आकण्ठ पिला दो सोम, भाण्ड में एक बूंद भी मद्य न रहे।

शम्बर ने कुण्डनी की कमर में हाथ डालकर कहा—मानुषी, मेरे और निकट आ।

'अभागे असुर, तू मृत्यु का आलिंगन कर रहा है।'

शम्बर ने सोम से कहा—वह क्या कहती है हे मानुष?

'कहती है कि आज आनन्दोत्सव है, सब असुर-वीरों को छककर मद्य पीने

का आदेश दीजिए।'

'पिएं वे सब।' उसने हंसते-हंसते कहा। और एक घड़ा कुण्डनी ने शम्बर के मुंह से लगा दिया।

कुछ असुरों ने कहा—भोज, भोज, अब भोज होगा।

शम्बर के पैर डगमगा रहे थे। उसने हिचकी लेते-लेते कहा—मेरी इस मानुषी-सुन्दरी के सम्मान में सब कोई खूब खाओ, पियो। अनुमति देता हूं खूब खाओ-पियो।—वह कुण्डनी पर झुक गया।

असुरों की हालत अब बहुत खराब हो रही थी। उनकी नाक तक शराब ठुंस गई थी। उनके पैर सीधे न पड़ते थे। अब उन्होंने भैंसे का मांस हबर-हबर करके खाना प्रारम्भ किया।

कुण्डनी ने कहा—भाण्डों में अभी सुरा बहुत है, सोम, यह सब इन नीच असुरों के पेट में उंडेल दो।—सोमप्रभ असुरों को और कुण्डनी शम्बर को ढाल-ढाल कर पिलाने लगी।

शम्बर ने कहा—मानुषी, अब तू नाच।

सोम ने कुण्डनी का संकेत पाकर कहा—महान शम्बर ने जो मागध बिम्बसार की मैत्री स्वीकार कर ली है, क्या उसके लिए सब कोई एक-एक पात्र न पीए?'

'क्यों नहीं, पर बिम्बसार ऐसी सौ तरुणियां दे।'

इसी समय कुण्डनी ने भाव-नृत्य प्रारम्भ किया, और मदिरा से उत्तप्त असुर बेकाबू हो, असंयत भाव से कुण्डनी को अंकपाश में पकड़ने को लपके।

यह देख कुण्डनी का संकेत पा सोमप्रभ ने कहा—सब कोई सुनें। यह मागध सुन्दरी विद्युत्प्रभ है। जो कोई इसका आलिंगन-चुम्बन करेगा—वही तत्काल मृत्यु को प्राप्त होगा।

असुरों में अब सोचने-विचारने की सामर्थ्य नहीं रही थी—चुम्बन करो, चुम्बन करो।—सब चिल्लाने लगे।

शम्बर ने हाथ का मद्यपात्र फेंककर हकलाते हुए कहा—सब कोई इस मानुषी का चुम्बन करे।

कुण्डनी नृत्य कर रही थी। अब उसने एक छोटी-सी थैली वस्त्र से निकालकर उसमें से महानाग को निकाला, और कण्ठ में पहन लिया। यह देख असुर

भयभीत हो पीछे हट गए। कुण्डनी नाग के नेत्रों से नेत्र मिला भाव-नृत्य करने लगी।

असुर ने कहा—वह उस सर्प को लेकर क्या कर रही है ?

'यह मागधी नागपत्नी है। अब सर्वप्रथम नाग चुंबन करेगा। पीछे जिसे मृत्यु-कामना हो, वह उसका चुंबन करे।'

'तो, नाग-चुंबन होने दो।'

'अच्छा, तो उस मानुषी के नागपति के नाम पर सब कोई एक-एक पात्र मद्य पिएं।'

'पिओ, सब कोई।'

एक बार सब असुरों ने मद्य-भाण्डों में मुंह लगा दिया। उसी समय कुण्डनी ने नागदंश लिया। फिर नाग को थैली में रखा। उसके मस्तक पर स्वेद-बिन्दु झलक आए और वह विष के वेग से लहराने लगी। उस समय उसके नृत्य की अलौकिक छटा प्रदर्शित हुई। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह हवा में तैर रही हो। उसके अधर जैसे मद-निमन्त्रण दे रहे हों।

शम्बर ने चिल्लाकर कहा—चुंबन करो, चुंबन करो।

एक असुर-तरुण ने कुण्डनी को आलिंगन-पाश में कसकर चुंबन किया। वह तुरन्त बिजली से मारे हुए प्राणी की भांति निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुण्डनी ने उधर भ्रूपात नहीं किया। दूसरे तरुण की ओर मुस्कराकर देखा। उसने भी चुंबन किया और वही दशा हुई। असुरों में अब सोचने-विचारने की शक्ति नहीं रह गई थी। वे पागल की भांति चुंबन ले-लेकर पटापट मरने लगे। शम्बर निरंतर मद्य पी रहा था। असुरों के इस प्रकार आश्चर्यजनक रीति से मरने पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। प्रत्येक असुर के चुंबन लेने के बाद निष्प्राण होकर गिरने पर कुण्डनी मोहक हास्य से शम्बर की ओर ऐसे देखती कि वह समझ ही न पाता कि उसके तरुण मर रहे हैं या मूर्छित हो रहे हैं। सोमप्रभ बराबर मद्य के पात्र पर पात्र शम्बर के गले में उतार रहा था।

अब कुण्डनी एक-एक असुर के पास जा-जाकर चुंबन-निवेदन करने लगी। चुंबन ले-लेकर वे प्राण गंवाते गए। उस मोहनी मूर्ति के चुंबन-निवेदन को अस्वीकार करने की सामर्थ्य मद्य-विमोहित असुरों में न थी। उसने बलात् वृद्ध असुर-मन्त्रियों को आलिंगनपाश में बांधकर उनके होंठों पर चुंबन अंकित किए और वे

जहां के तहां मरकर ढेर हो गए।

अब शम्बर ने सावधान हो आंखें तरेरकर कुण्डनी की ओर देखा। कुण्डनी ने मुस्कराता हुआ बंकिम कटाक्ष मारकर एक परिपूर्ण मद्य-पात्र ले उसके होंठों से लगा दिया। पर उसने मद्य-पात्र फेंककर कहा—क्या तूने मेरे तरुणों का वध किया?

सोमप्रभ ने कहा—मैंने तो पहले ही कहा था कि यह नागपत्नी है। असुर अपने ही दोष से मरे हैं। शम्बर ने स्वयं ही उन्हें चुंबन की आज्ञा दी थी।

'परन्तु यह मानुषी अति भीषण है।' उसने प्यासी चितवन से कुण्डनी की ओर देखा। कुण्डनी ने समूचा भाण्ड उसके मुंह से लगा दिया। उसे पीकर होंठ चाटते हुए असुर ने उठना चाहा, पर लड़खड़ाकर गिर गया। कुण्डनी ने और एक भाण्ड उसके मुंह से लगा दिया। उसे भी पीकर असुर ने कुण्डनी को हृदय से लगाकर कहा—दे, मृत्यु-चुंबन दे, मानुषी। तेरे स्वर्ण-अधरों को एक बार चूमकर मरने में भी सुख है।

इस समय चारों ओर मृत असुरों के ढेर जहां-तहां पड़े थे। भयभीत असुर भाग रहे थे। बहुत-से बदमस्त पड़े थे। कुण्डनी ने यत्न से असुर के बाहुपाश से अपने को निकालकर दूसरा मद्य-पात्र उसके होंठों से लगा दिया। उसे पीकर शम्बर बदहवास आसन पर गिर गया। कुण्डनी को बरबस खींचकर वह अपनी अस्त-व्यस्त आसुरी भाषा में कहने लगा—द···द···दे मानुषी एक चुंबन, और मागध बिम्बसार के लिए मेरी मैत्री ले। दे चुंबन, दे।

कुण्डनी ने मर्म की दृष्टि से सोम की ओर देखा। उसका अभिप्राय यह था कि असुर को मारा जाए या नहीं। पर सोम ने खींचकर कुण्डनी को शम्बर के बाहुपाश से अलग किया और हांफते-कांफते कहा—नहीं, असुरराज को मारा नहीं जाएगा। बहुत हुआ, समझ गया, तुम विषकन्या हो।

फिर उसने शम्बर के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—महान शम्बर चिरंजीव रहें। वह मागध बिम्बसार का मित्र है। उसे मृत्यु-चुंबन नहीं लेना चाहिए।

शम्बर ने कुछ होंठ हिलाए, और आंखें खोलने की चेष्टा की, पर वह तुरन्त काठ के कटे कुंदे की भांति गिर गया। सोम ने कुण्डनी से कहा—उसे छोड़ दो, कुण्डनी।

'मूर्खता मत करो सोम, मरे वह असुर।'

'ऐसा नहीं हो सकता।'

उसने कुण्डनी को पकड़कर खींचा। अब वहां एक भी जीवित असुर न था, सब मरे पड़े थे। जो बचे थे——भाग रहे थे। सोम कुण्डनी का हाथ पकड़ उसी अंधकार में चम्पारण्य में विलीन हो गया।

वासवदत्ता

वासवदत्ता महाराज उदयन की कला पर आसक्त होकर उनसे नृत्य-संगीत सीखने लगी। दोनों में असीम प्रेम उत्पन्न हो गया। और अन्त में विवाह भी। इस कहानी में उदयन और वासवदत्ता की तत्कालीन भावनाओं का श्रेष्ठ चित्रण है।

एक समय कौशाम्बी के राजकुमार उदयन शिकार खेलने वन में गए। वहां जाकर उन्होंने देखा, एक मदारी एक बहुत बड़े और सुन्दर सर्प को ज़बर्दस्ती पकड़े लिए जा रहा है। सर्प उससे छूटने को छटपटा रहा है। राजकुमार उदयन को सर्प पर बड़ी दया आई और उन्होंने पुकारकर मदारी से कहा—अरे हमारे कहने से इस सर्प को छोड़ दे।

इसपर मदारी ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक राजा से कहा—मालिक, यह तो मेरी जीविका है। मैं बड़ा गरीब आदमी हूं। सदैव सर्पों का खेल दिखा-दिखाकर पेट भरता हूं। पुराने सब सर्प मर गए, अब बहुत ढूंढ़ने पर इस वन में मन्त्र और ओषधियों के बल से मैंने यह सर्प पकड़ पाया है। भला इसे मैं कैसे छोड़ दूं।

इसपर राजकुमार ने हंसते हुए अपने हाथों के सोने के कड़े उतारकर उस मदारी को दे दिए। और सर्प को छुड़वा दिया।

मदारी सोने के कड़े ले, प्रसन्न हो, राजकुमार को प्रणाम कर उनका जय-जयकार करता हुआ चला गया।

उसके चले जाने पर सर्प एक वीणाधारी दिव्य पुरुष हो गया, और राजकुमार के निकट आकर बोला—मैं वासुकि नाग का बड़ा भाई वसुनेमि नाग हूं। तुमने मुझे छुड़ाया है और मेरी रक्षा की है, इसलिए मैं तुम्हें मंजुघोषा नाम की यह वीणा देता हूं। यह दिव्य वीणा है। मैं तुम्हें ऐसी विधि बताता हूं कि तुम इसे एक ही काल में तीन ग्रामों में बजा सकोगे। जब यह वीणा तीन ग्रामों में एक ही काल में बजाई जाएगी तो विश्व के सब चराचर उसकी गत सुनकर विमोहित हो जाएंगे।

पृथ्वी पर कोई मनुष्य इसे तुम्हारे समान न बजा सकेगा। इसके साथ कभी न मुरझानेवाले दिव्य फूलों की माला और दिव्य ताम्बूल भी लो। तथा मैं तुम्हें कभी मैले न होनेवाले तिलक की भी युक्ति बताता हूं।

वह नाग इतना कह तथा वे सब वस्तुएं राजकुमार उदयन को दे अन्तर्धान हो गया। राजकुमार ऐसी अनोखी वस्तुएं पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह शीघ्र ही बड़ी दक्षता से वह वीणा बजाने लगा और दूर-दूर तक उदयन के वीणावादन की ख्याति हो गई। कुछ दिनों बाद महाराज सहस्मानीक वृद्ध हुए और पुत्र को राजा बनाकर तप करने के लिए वन में चले गए। राजा होकर भी महाराज उदयन अपने मन्त्री यौगन्धरायण पर राज्य का सब कार्य-भार डालकर आनन्द करने लगे। उन्हें हाथियों के शिकार का बड़ा शौक था। रात-दिन वे शिकार ही की धुन में रहने लगे। वासुकी नाग की दी हुई दिव्य वीणा वे रात-दिन बजाया करते। वन में उस वीणा से वशीभूत हो हाथियों का झुण्ड उनके पास चला आता जिन्हें बंधवाकर, अपने मन्त्रियों के पास भिजवाकर वे खूब प्रसन्न होते।

उन्हीं दिनों उज्जयिनी में प्रद्योत चण्डमहासेन नामक महाप्रतापी राजा राज्य करता था। उसकी एक कन्या बड़ी रूपवती और दिव्य गुणों से भूषिता थी। उसका नाम वासवदत्ता था, शरच्चन्द्र की चांदनी के समान वह उज्ज्वल और हरिण-शिशु के समान वह भोली थी। उसकी कांति हीरे के समान थी और सुकुमारता में कोई कुसुम उसके अनुरूप न था। देश-देश में उसके रूप, गुण, शील की चर्चा फैली थी। देश के प्रतापी राजकुमार उससे विवाह करने को लालायित थे।

महाराज उदयन की वीणावादन की कीर्ति देश-देश में फैल गई। वे कामदेव के समान सुन्दर भी थे। उनकी यह कीर्ति वासवदत्ता के कान में भी पड़ी। उसने बाल-हठ से कहा—पिता, मैं भी उदयन के समान वीणा बजाऊंगी और नृत्य सीखूंगी। आप उदयन को बुलाकर उससे कहिए कि वह मुझे अपने ही समान वीणा-वादन सिखाए, नहीं तो मैं जीवित नहीं रहूंगी।

प्यारी पुत्री का यह बाल-हठ देख महाराज चण्डमहासेन ने उसे बहुत समझाया-बुझाया और कहा—उदयन साधारण पुरुष नहीं है, वह हमारे ही समान राजा है। फिर वह बड़ा मानी, स्वतन्त्र और बलवान भी है। हम कैसे उससे कहें कि यहां आकर तुम्हें वीणा-वादन सिखाए? परन्तु राजनन्दिनी ने हठ नहीं छोड़ा। उसने

कहा—मैं नहीं जानती, उदयन चाहे जो भी हो, उसे यहां आकर वीणा-वादन सिखाना ही होगा।

इसपर चण्डमहासेन बड़े चिन्तित हुए। अन्ततः पुत्री के प्रेम के आगे उन्होंने हार मान ली और एक सन्देशवाहक को यह सन्देश लेकर उदयन के पास भेजा कि हमारी पुत्री वासवदत्ता तुमसे वीणावादन और नृत्य सीखना चाहती है, सो जो तुम्हें हमपर स्नेह हो तो यहां आकर उसे सिखाओ।

दूत ने कौशाम्बी पहुंचकर भरी सभा में उदयन को यह संदेश दिया। संदेश सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। परन्तु राजा ने दूत का अच्छी तरह सत्कार किया, और विश्राम करने की आज्ञा दी।

फिर अपने मंत्रियों से सम्मति ले चण्डमहासेन के पास दूत द्वारा यह संदेश भेजा कि यदि आपकी पुत्री हमसे गानविद्या सीखना चाहती है तो उसे यहां भेज दीजिए। यह सुनकर चण्डमहासेन ने उदयन को पकड़ने की एक युक्ति रची। उन्होंने कारीगरों से सलाह करके एक बड़ा भारी कल का हाथी बनवाया और उसके भीतर चालीस योद्धा छिपा दिए। फिर वह हाथी उसी वन में छुड़वा दिया जिसमें राजा उदयन वहुधा शिकार को जाया करता था।

राजा के गोहन्दों ने राजा को सूचना दी कि वन में हम लोगों ने एक हाथी ऐसा देखा है कि जैसा इस संसार-भर में कहीं नहीं है। वह इतना बड़ा है जैसे चलता-फिरता विन्ध्याचल हो। राजा यह सुनकर प्रसन्न हो गया। गोहन्दों को इनाम दिया और भोर होते ही विन्ध्याचल के वन की ओर उसने दलबलसहित प्रस्थान किया।

वन में पहुंचकर उसने सेना को तो दूर छोड़ा और वीणा हाथ में ले गोहन्दों के साथ वन में प्रवेश किया। हाथी को देखते ही राजा वीणा बजाता हुआ उसके निकट चला गया। वीणा सुनकर मस्त हुआ-सा वह हाथी दोनों कान उठाकर राजा के निकट आकर फिर एक ओर जाने लगा। राजा उसके पीछे-पीछे बहुत दूर निकल गया। इसी समय अवसर पाकर हाथी के पेट से बहुत-से सशस्त्र सैनिक निकल आए और उन्होंने राजा को चारों ओर से घेर लिया। यह देख राजा क्रुद्ध हो चक्कू निकालकर उनसे लड़ने लगा, पर उन लोगों ने शस्त्ररहित राजा को शीघ्र ही बेवस करके पकड़ लिया और उसे लेकर शीघ्रता से अंवती की ओर प्रस्थान किया।

राजा के पकड़े जाने का यह समाचार जब कौशाम्बी में पहुंचा तो वहां शोक छा गया। प्रजा उत्तेजित हो गई और सेना ने क्रुद्ध होकर अवन्ती पर चढ़ाई करने की तैयारी कर ली। परन्तु बुद्धिमान मन्त्री रुमण्वान ने सबको समझा-बुझाकर ठण्डा किया और कहा—यदि हम चढ़ाई करें और चण्डमहासेन हमारे महाराज को मार डाले तो बुरी बात होगी। फिर चण्डमहासेन बड़ा बलशाली राजा है। वहां युक्ति से काम करना होगा।—इसके बाद सब मंत्रियों ने सलाह पक्की कर महामंत्री यौगन्धरायण को उज्जयिनी भेजा। महामन्त्री यौगन्धरायण ने अपने साथ अपने विश्वस्त पुरुष वसन्तक को साथ लेकर उज्जयिनी को प्रस्थान किया।

राजा चण्डमहासेन ने महाराज उदयन का बड़ा सत्कार किया और अन्तःपुर में ले जाकर अपनी कन्या वासवदत्ता उसे सौंपकर कहा कि इसे आप गन्धर्व-विद्या सिखाइए। और किसी बात का खेद मत कीजिए—इससे आपका कल्याण होगा। वासवदत्ता को देखते ही राजा ने आपा खो दिया। उसका सम्पूर्ण क्रोध जाता रहा। उधर कामदेव के समान उदयन को देखकर वासवदत्ता के नेत्र और मन उदयन में उलझ गए। नेत्र तो लज्जा से हट गए पर मन वहीं रम गया।

राजा उदयन वासवदत्ता को नृत्य-संगीत सिखाता हुआ गन्धर्वशाला में रहने लगा। उस चित्त को प्रसन्न करनेवाली वासवदत्ता के सम्मुख वीणा बजा-बजाकर राजा गया करता और वासवदत्ता उस बन्धन में पड़े हुए राजा की यत्न से सेवा करके उसे अपने स्नेह-बन्धन में कसकर बांधने लगी। इस प्रकार परस्पर स्नेह के बंधन में कसकर बंधते हुए, वे दोनों संगीत और वीणावादन का आनन्द लेते रहे। दोनों को अब एक घड़ी-पल भी एक-दूसरे के बिना चैन न आता था।

मन्त्रिवर यौगन्धरायण बड़ी सावधानी से वसन्तक के साथ विन्ध्याचल के वन में घुसा। वहां उदयन का मित्र म्लेच्छराज पुलिन्दक रहता था, उससे उसने कहा—आप अपनी सेनासमेत तैयार रहिए, हम राजा को छुड़ाकर इसी मार्ग से लौटेंगे।

उज्जयिनी में आकर यौगन्धरायण ने महाकालेश्वर के श्मशान में रहनेवाले योगेश्वर नामक ब्रह्म-राक्षस से मित्रता कर ली और उसकी सहायता से एक बूढ़े-कुबड़े, मतवाले और गंजे आदमी का रूप धारण कर लिया। इस बूढ़े, गंजे, कुबड़े और पागल आदमी को देखकर सब नगर-निवासी हंसने और तंग करने लगे। अपने

साथी वसन्तक का भी उसने रूप बदल दिया, उसका पेट ऐसा फूला हुआ बना दिया कि उसकी सब नसें उसपर दिखाई देने लगीं और उसका मुंह बिगाड़कर बड़े-बड़े दांत बना दिए। अब यौगन्धरायण वसन्तक को नचाता-गवाता नगर के आबाल-वृद्धों में फिरा और राजमहल की ड्योढ़ियों पर जा पहुंचा। वहां उसने अपने खेल-तमाशों से रानियों-दासियों आदि को खूब प्रसन्न कर लिया। उसकी चर्चा वासवदत्ता ने भी सुनी और दासी को भेजकर उन्हें बुलवाया। वहां बन्दी हुए राजा को देखकर उसका चित्त बहुत दुःखी हुआ। उसने संकेत से राजा को अपना परिचय भी दे दिया। राजा भी अपने मंत्री को पहचान गया, पर यह बात राजकुमारी और उसकी सखियां न भांप सकीं।

इसके बाद संकेत पाकर वसन्तक रोने लगा। राजा ने कहा—हे ब्राह्मण, रोओ मत, तुम मेरे पास रहो, मैं तुम्हारा सब रोग दूर कर दूंगा।—वसन्तक ने कहा—यह आपकी बड़ी कृपा है।—वसन्तक ने ऐसा स्नेह जताया था कि उसे देखकर राजा को हंसी आ गई। इसपर राजकुमारी और सखियां भी हंसने लगीं। यह देख वसन्तक भी हंस दिया। वासवदत्ता ने उससे पूछा कि तू क्या काम करना जानता है। उसने कहा—मैं बहुत-सी कथा-कहानियां कहना जानता हूं।—इसपर प्रसन्न होकर राजकुमारी ने उसे अपने पास रख लिया।

अब राजा और वासवदत्ता में चुपचाप सलाह होने लगी। वासवदत्ता राजा के साथ भागने को राज़ी हो गई। वसन्तक ने कहा—राजा चण्ड आपको अपनी कन्या देना चाहता है, परन्तु अपनी अकड़ कायम रखने को उसने आपको पकड़ा है। अब आप भी उसकी कन्या का हरण करके अपमान का बदला लीजिए।

चण्डद्योत राजा ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को एक हथिनी दी थी, उसका नाम भद्रावती था। उस हथिनी की चाल की बराबरी राजा का नाड़ागिरि हाथी ही कर सकता था। पर वह हथिनी से नहीं लड़ता था। हथिनी का महावत आषाढ़क था। उसे यौगंधरायण ने सोना देकर मिला लिया और राजा को सन्देश दिया कि मैं आपके मित्र राजा पुलिन्दक के पास पहले ही से जाकर मार्ग की रक्षा का प्रबन्ध करता हूं, आप समय देखकर हथिनी पर सवार हो कुमारीसहित भाग आएं।

इसी योजनानुसार देवताओं की पूजा के बहाने हाथियों के प्रधान को मद्य से मतवाला कर, हथिनी पर सवार हो राजा राजकुमारी, वसन्तक तथा कुमारी की सखी कांचनमाला के साथ वीणा और शस्त्र ले रात्रि के समय भाग चले। मत-

वाले हाथी से परकोटा तुड़वाकर उज्जयिनी से बाहर निकले। रक्षकों को राजा ने तलवार की धार उतार दिया। हथिनी वेगपूर्वक दौड़ चली।

चण्डमहासेन को राजकुमारी तथा राजा के भाग जाने का समाचार ज्योंही मिला, उसने अपने पुत्र गोपालक को नाड़ागिरि पर सवार कराकर पीछे दौड़ाया। उसे राजा ने युद्ध में परास्त कर भगा दिया। हथिनी ने रात-भर और आधे दिन चलकर तिरेसठ योजन भूमि पार की और विंध्य-वन में पहुंची। यहां हथिनी को प्यास लगी। राजासहित सबके उतरने पर हथिनी ने पानी पिया तथा मर गई। इससे राजा और राजकुमारी को बहुत दुःख हुआ। उसने वसन्तक को आगे अपने मित्र पुलिन्दक को सूचना देने भेजा। पीछे धीरे-धीरे राजकुमारी के साथ आगे चलने लगे। इसी समय डाकुओं ने उन्हें घेर लिया। राजा ने धनुष-बाण ले उनमें से अनेकों को मार डाला। इसी समय पुलिन्दक और यौगन्धरायण सेनासहित आ मिले। पुलिन्दक राजा को अपने गांव में ले गया। वहां वन की कुशाओं से फटे पैर-वाली वासवदत्ता और राजा रात-भर रहे। प्रातःकाल मन्त्री रुमण्वान बहुत-सी सेना लेकर ठाट-बाट से राजा-रानी की अगवानी को आया। यहीं शक दूत ने राजा को सूचना दी कि राजा चण्डमहासेन ने अपना दूत भेजा है। दूत ने राजा की सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम कर कहा—महाराज महासेन आपपर प्रसन्न हैं और उन्होंने कहलाया है कि शीघ्र ही गोपालक आकर अपनी बहिन का विवाह विधिवत् कर जाएगा, तब तक आप ठहरें। ठहरने को कह कौशाम्बी के दूत ने पुलिन्दक के ग्राम में गोपालक के आने तक को प्रस्थान किया, जहां उसका खूब धूमधाम से स्वागत हुआ। राजा और रानी की समस्त पुरवासीजनों तथा सभागत राजाओं ने राजमहल में अभ्यर्थना की।

कुछ दिन बाद बहुत-सा धन, रत्न, हाथी, घोड़ा और खज़ाना लादकर गोपालक आया और उसने धूमधाम से बहिन का विवाह राजा से कर दिया। इससे उदयन की समृद्धि चौगुनी हो गई तथा वह अपनी प्रियतमा वासवदत्ता के साथ सुख से रहने लगा।

डाक्टर साहब की घड़ी

एक अद्भुत घड़ी की चोरी का मनोरंजक किस्सा, जिसका चोर एक प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ था।

डाक्टर वेदी एम० डी० रियासत के पुराने और प्रख्यात डाक्टर हैं। अपने गत पचास वर्ष के लम्बे जीवन में उन्होंने बड़े-बड़े मार्के के इलाज किए हैं। सिर्फ अपनी ही रियासत में नहीं, रियासत से बाहर भी अनेक राजपरिवारों में उनकी वैसी ही प्रतिष्ठा और धूमधाम है। उन्होंने बहुत धन कमाया ; एक से एक बढ़कर अनूठी चीज़ें रईसों से इनामों और भेंटों में लीं। उनका ड्राइंगरूम उन चीज़ों से ठसाठस भरा हुआ है। वे फुरसत के वक्त अक्सर इसी ड्राइंगरूम में बैठकर अपने दोस्तों को उन भेंटों में पाई हुई चीज़ों के सम्बन्ध में एक से एक बढ़कर अद्भुत बातें सुनाया करते हैं। कोई-कोई बात तो बड़ी ही सनसनी-भरी, आश्चर्यजनक और अत्यन्त प्रभावशाली होती है। अब वे प्रैक्टिस नहीं करते, यों कोई पुराना प्रेमी घसीट ले जाए तो बात जुदी है। आने-जानेवालों का तो उनके यहां तांता ही लगा रहता है ; क्योंकि वे मिलनसार, खुशमिज़ाज, उदार और 'नेकी कर कुएं में डाल' वाली कहावत को चरितार्थ करनेवाले पुरुष हैं। उनका लम्बा-चौड़ा डीलडौल, साढ़े तेरह इंच की बड़ी मूंछें, मोटी और भरी हुई भौंहें, तेज़ नुकीली नाक और मर्म-भेदिनी दृष्टि असाधारण हैं। छोटे से बड़े तक उनका रुआब है, पर वे छोटे-बड़े सबपर प्रेम-भाव रखते हैं। वे वास्तव में एक सहृदय और दयावान पुरुष हैं ; भाग्यवान भी कहना चाहिए। उनका जीवन सदा मज़े में कटा और अब भी मज़े में ही कट रहा है। वे सब प्रकार के शोक, सन्ताप, चिन्ता और वेदना से मुक्त आनन्दी पुरुष की भांति रहते हैं। बूढ़े भी उनके दोस्त हैं और जवान भी ; बालक भी दोस्त हैं। अपने पास आते ही वे सबको निर्भय कर देते हैं ; ऐसा ही उनका सरल स्वभाव है।

हां, तो मैं यह कह रहा था कि उन्होंने बड़े-बड़े मार्के के इलाज किए हैं और

बड़े-बड़े इनाम-इकराम और भेंटें प्राप्त की हैं, और इनाम और भेंटों की ये सब अनोखी चीज़ें उनके ड्राइंगरूम में सजी हुई हैं। बड़ी-बड़ी शेरों और चीतलों की खालें, मगर के ढांचे, असाधारण लम्बे पशुओं के सींग, बहुमूल्य कालीन, अलभ्य कारीगरी की चीज़ें, दुर्लभ चित्र और भारी-भारी मूल्य की रत्नजटित अंगूठियां, पिनें और कलमें। परन्तु इन सब में अधिक आश्चर्यजनक और बहुमूल्य वस्तु एक घड़ी है। यह घड़ी उन्हें एक इलाज के सिलसिले में नेपाल जाने पर वहां के दरबार से मिली थी। इसका आकार एक बड़े नींबू के समान है और यह नींबू के ही समान गोल है। उसमें कहीं भी घण्टे या मिनट की सुई नहीं, न अंक ही अंकित हैं। सारी घड़ी कीमती प्लाटिनम की महीन कारीगरी से कटी बूटियों से परिपूर्ण है और उसमें उज्ज्वल असल ब्रेज़ील के हीरे जड़े हैं। सिर्फ दो हीरे, जो सबसे बड़े हैं और जिनमें एक बहुत हलकी नीली आभा झलकती है, ऐसे मनोमोहक और कीमती हैं कि उन्हींसे एक छोटी-मोटी रियासत खरीद ली जा सकती है। उनमें जो बड़ा और तेजस्वी हीरा है उसपर उंगली की पोर के एक हलके-से स्पर्श का दबाव पड़ते ही घड़ी अत्यन्त मोहक सुरीली तान में घण्टा, मिनट, सैकंड सब बजा देती है। उसकी गूंज समाप्त होते-होते ऐसा मालूम देता है मानो अभी-अभी यहां कोई स्वर्गीय वातावरण छाया रहा हो। दूसरे हीरे को तनिक दबा देने से दिन, तिथि, तारीख, पक्ष, मास, संवत् सब ध्वनित हो जाते हैं। यही नहीं, घड़ी में हज़ार वर्ष का कैलेण्डर भी निहित है; हज़ार वर्ष पहले और आगे के चाहे जिस भी सन् का दिन, मास और तारीख आप मालूम कर सकते हैं। ऐसी ही वह आश्चर्यजनक घड़ी है, जिसे डाक्डर साहब अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। कहते हैं, एक बार हुज़ूर आलीजाह महाराज ने पचास हज़ार रुपये इस घड़ी के डाक्टर साहब को देने चाहे थे, जिसपर डाक्टर साहब ने घड़ी महाराज के चरणों में डालकर कहा था—अन्नदाता, मेरा तन, मन, धन सब आपका है, फिर घड़ी की क्या औकात है; पर इसे मैं बेच तो सकता ही नहीं! और महाराज हंसते हुए चले गए थे। यह घड़ी स्वीडन के एक नामी कलाकार से नेपाल के लोकविख्यात महाराज चन्द्रशमशेर जंगबहादुर ने, जब वे विलायत गए थे, मुंहमांगा दाम देकर खरीदी थी और अपने इकलौते पुत्र के प्राण बचाने पर संतुष्ट होकर उन्होंने वह डाक्टर को दे डाली थी। वह घड़ी वास्तव में नेपाल के उत्तराधिकारी के प्राणों के मूल्य की थी। कमरे के बीचों-बीच बिल्लौर की एक गोल मेज़ थी। यह मेज़ ठोस बिल्लौर की थी, उसका

ढांचा ही बिल्लौर का था। सर्पाकार एक पाये के ऊपर मेज़ रखी थी। यह मेज़ खास इसी मकसद के लिए डाक्टर साहब ने खास लन्दन से खरीदी थी। उस मेज़ पर इटली की बनी एक अति भव्य मार्बल की स्त्री-मूर्ति थी। यह मूर्ति रोमन कला की प्रतीक-रूप थी, जिसे डाक्टर साहब ने बड़ी खोज-जांच से खरीदकर उसके हाथ में एक चतुर कारीगर से एक स्प्रिंग लगवाया था, जिसमें ऐसी व्यवस्था थी कि घड़ी हमेशा उस पुतली के उसी हाथ में रखी रहती थी। ठीक समय पर घड़ी के हीरे पर स्प्रिंग का दबाव पड़ता तो घड़ी से ताल-स्वर-युक्त मधुर संगीत की ध्वनि निकलती। उस समय जैसे वह प्रस्तर-मूर्ति ही मुखरित हो उठती थी। मित्रगण घड़ी का यह चमत्कार देख, जब आश्चर्यसागर में गोते खाने लगते तो डाक्टर गर्वोन्नत नेत्रों से कभी घड़ी को और कभी मित्रों को घूर-घूरकर मन्द-मन्द मुस्कराया करते थे।

सावन का महीना था। रिमझिम वर्षा हो रही थी। ठण्डी हवा बह रही थी। काले-काले मेघ आकाश में छा रहे थे ; बीच-बीच में गम्भीर गर्जन हो रहा था। चारों ओर हरियाली अपनी छटा दिखा रही थी। दिन का तीसरा प्रहर था। डाक्टर साहब अपने तीन घनिष्ठ मित्रों के साथ उसी ड्राइंगरूम में बैठे आनन्द से धीरे-धीरे वार्तालाप कर रहे थे। उन मित्रों में एक मेजर भार्गव थे, दूसरे दीवान पारख थे, और तीसरे एक नवयुवक मिस्टर चक्रवर्ती आई० सी० एस० थे। एकाएक घड़ी में से मधुर गूंज उठी। मित्रमण्डली चकित होकर घड़ी की ओर देखने लगी। डाक्टर साहब आंखें बन्द किए सोफे पर उढ़ककर उस मधुर स्वरलहरी को जैसे कानों से पीने लगे। जब घड़ी का संगीत बन्द हुआ तो मिस्टर चक्रवर्ती ने कपाल पर आंखें चढ़ाकर कहा—अद्‌भुत घड़ी है यह आपकी डाक्टर साहब! —यह तो मानो घड़ी की कुछ तारीफ ही न थी। डाक्टर ने सिर्फ मुस्करा दिया। मेजर साहब ने कहा—अद्‌भुत ! अजी, इस घड़ी का तो एक इतिहास है ! —फिर उन्होंने डाक्टर की ओर मुंह करके कहा—वह सूबेदार साहब वाली घटना तो इसी घड़ी से सम्बन्ध रखती है न ?

डाक्टर साहब जैसे चौंक पड़े। एक वेदना का भाव उनके होंठों पर आया और उन्होंने धीमे स्वर से कहा—जी हां, वह दुःखदायी घटना इसी घड़ी से सम्बन्ध रखती है।

मित्रगण चौकन्ने हो गए। मिस्टर चक्रवर्ती बोल उठे—क्या मैं इस घटना का वर्णन सुन सकता हूं ?

डाक्टर ने उदास होकर कहा—जाने दीजिए मिस्टर चक्रवर्ती, उस दारुण घटना को भूल जाना ही अच्छा है, खासकर जब उसका सम्बन्ध मेरी इस परम प्यारी घड़ी से है।

परन्तु मिस्टर चक्रवर्ती नहीं माने, उन्होंने कहा—यह तो अत्यन्त कौतूहल की बात मालूम होती है। यदि कष्ट न हो तो कृपा कर अवश्य सुनाइए। यह ज़रूर कोई असाधारण घटना रही होगी, तभी उससे आप ऐसे विचलित हो गए हैं।

'असाधारण तो है ही!' कहकर कुछ देर डाक्टर चुप रहे। फिर उन्होंने एक-एक करके प्रत्येक मित्र के मुख पर दृष्टि डाली। सब कोई सन्नाटा बांधे डाक्टर के मुंह की ओर देख रहे थे। सबके मुख पर से उनकी दृष्टि हटकर घड़ी पर अटक गई। वे बड़ी देर तक एकटक घड़ी को देखते रहे, फिर एक ठण्डी सांस लेकर बोले—आपका ऐसा ही आग्रह है, तो सुनिए!

धीरे-धीरे डाक्टर ने कहना शुरू किया—चौदह साल पुरानी बात है। सूबेदार कर्नल ठाकुर शार्दूलसिंह मेरे बड़े मुरब्बी और पुराने दोस्त थे। वे महाराज के रिश्तेदारों में होते थे। उनका रियासत में बड़ा नाम और दरबार में प्रतिष्ठा थी। उनकी अपनी एक अच्छी जागीर भी थी। वह देखिए, सामने जो लाल हवेली चमक रही है, वह उन्हींकी है। बड़े ठाट और रुआब के आदमी थे, अपने ठाकुर-पने का उन्हें बड़ा घमण्ड था। उनके बाप-दादों ने मराठों की लड़ाई में कैसी-कैसी वीरता दिखाई थी—वे सब बड़ी दिलचस्पी से सुनाया करते थे। वे बहुत कम लोगों से मिलते थे, सिर्फ मुझीपर उनकी भारी कृपादृष्टि थी। जब भी वे अवकाश पाते, आ बैठते थे। बहुधा शिकार को साथ ले जाते थे। और हफ्ते में एक बार तो बिना उनके यहां भोजन किए जान छूटती ही न थी। उनके परिवार में मैं ही इलाज किया करता था। मैं तो मित्रता का नाता निबाहना चाहता था और उनसे कुछ नहीं लेना चाहता था, पर वे बिना दिए कभी न रहते थे। वे हमेशा मुझे अपनी औकात और मेरे मिहनताने से अधिक देते रहे। मेरे ऊपर उन्होंने और भी बहुत एहसान किए थे, यहां तक कि रियासत में मेरी नौकरी उन्होंने लगवाई थी और महाराज आलीजाह की कृपादष्टि भी उन्हींकी बदौलत मुझपर थी।

एक दिन सदा की भांति वे इसी बैठकखाने में मेरे पास बैठे थे। हम लोग बड़े प्रेम से धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। वास्तव में बात यह थी कि मैं उनका बहुत अदब करता था। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था, फिर मुझपर तो उनके बहुत-से एहसान थे। एकाएक मुझे ज़रूरी 'कॉल' आ गई। पहले तो सूबेदार साहब को छोड़कर जाना मुझे नहीं रुचा; परन्तु जब उन्होंने कहा कि कोई हर्ज नहीं, आप मरीज़ को देख आइए, मैं यहा बैठा हूं, तब मैंने कहा—इसी शर्त पर जा सकता हूं कि आप जाएं नहीं।—तो उन्होंने हंसकर मंजूर किया और पैर फैलाकर मज़े में बैठ गए।

मैंने झटपट कपड़े पहने, स्टेथस्कोप हाथ में लिया और रोगी देखने चला गया। रोगी का घर दूर न था। झटपट ही उससे निपटकर चला आया। देखा तो सूबेदार साहब सोफे पर बैठे मज़े से ऊंघ रहे हैं। मैंने हंसकर कहा—वाह, आपने तो अच्छी-खासी झपकी ले ली।—सूबेदार भी हंसने लगे। हम लोग फिर बैठकर गपशप उड़ाने लगे।

उसी दिन पांच बजे मुझे महलों में जाना था। एकाएक मुझे यह बात याद हो आई और मैंने अभ्यास के अनुसार मेज़ पर घड़ी को टटोला। तब तक यह बिल्लौरी मेज़ मैंने नहीं खरीदी थी, वह जो आफिस-टेबिल है, उसीपर एक जगह यह घड़ी मेरी आंखों के सामने रखी रहती थी। परन्तु उस समय जो देखता हूं तो घड़ी का कहीं पता न था! कलेजा धक् से हो गया। अपनी बेवकूफी पर पछताने लगा कि इतनी कीमती घड़ी ऐसी अरक्षित जगह रखी ही क्यों? मैं तनिक व्यस्त होकर घड़ी को ढूंढ़ने लगा, मेरी घड़ी कितनी बहुमूल्य है, यह तो आप जानते ही हैं। सूबेदार साहब भी घबरा गए। वे भी व्यस्त होकर मेरे साथ घड़ी ढूंढ़ने में लग गए। बीच में भांति-भांति के प्रश्न करते जाते थे। परन्तु यह निश्चय था कि थोड़ी ही देर पहले जब मैं बाहर गया था, घड़ी वहां रखी थी। मैंने उसे भली भांति अपनी आंखों से देखा था। पर यह बात मैं साफ-साफ सूबेदार साहब से नहीं कह सकता था, क्योंकि वे तब से अब तक यहीं बैठे थे, कहीं वे यह न समझने लगें कि हमीं-पर शक किया जा रहा है। खैर, घड़ी वहां न थी, वह नहीं मिलनी थी और नहीं मिली। मैं निराश होकर धम्म से सोफे पर बैठ गया पर ऐसी बहुमूल्य घड़ी गुमा देना और सब्र कर बैठना आसान न था। भांति-भांति के कुलाबे बांधने लगा। सूबेदार साहब भी पास आ बैठे और आश्चर्य तथा चिन्ता प्रकट करने लगे।

उन्होंने पुलिस में भी खबर करने की सलाह दी, नौकर-चाकरों की भी छानबीन की। परन्तु मेरा सिर्फ एक ही नौकर था। वह बहुत पुराना और विश्वासी नौकर था। गत पन्द्रह वर्षों से वह मेरे पास था। तब से एक बार भी उसने शिकायत का मौका नहीं दिया। फिर इतनी असाधारण चोरी वह करने का साहस कैसे कर सकता था! पर सूबेदार साहब उससे बराबर जिरह कर रहे थे और वह बराबर मेज़ पर उंगली टेक-टेककर कह रहा था कि यहां उसने झाड़-पोंछकर घड़ी अपने हाथ से सुबह रखी है। मैं आंखें छत पर लगाए सोच रहा था कि घड़ी आखिर गई तो कहां गई।

एकाएक सूबेदार साहब का हाथ उनकी पगड़ी पर जा पड़ा ; उसकी एक लट ढीली-सी हो गई थी, वे उसीको शायद ठीक करने लगे थे। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात है, पगड़ी के छूते ही वही मधुर तान पगड़ी में से निकलने लगी! पहले तो मैं कुछ समझ ही न पाया। नौकर भी हक्का-बक्का होकर इधर-उधर देखने लगा। सूबेदार साहब के चेहरे पर घबराहट के चिह्न साफ दीख पड़ने लगे। क्षण-भर बाद ही नौकर ने चीते की भांति छलांग मारकर सूबेदार साहब के सिर पर से पगड़ी उतार ली और उससे घड़ी निकालकर हथेली पर रखकर कहा—यह रही हुज़ूर आपकी घड़ी! अब आप ही इंसाफ कीजिए कि चोर कौन है?—उसके चेहरे की नसें उत्साह से उमड़ आई थीं और आंखें आग बरसा रही थीं। वह जैसे सूबेदार साहब को निगल जाने के लिए मेरी आज्ञा मांग रहा था। सब माजरा मैं भी समझ गया। सूबेदार साहब का चेहरा सफेद मिट्टी की माफिक हो गया था और वे मुर्दे की भांति आंखें फाड़-फाड़कर मेरी तरफ देख रहे थे। कुछ ही क्षणों में मैं स्थिर हो गया। मैंने लपककर खूंटी से चाबुक उतारा और एकाएक पांच-सात नौकर की पीठ पर जमा दिए। घड़ी उसके हाथ से मैंने छीन ली।

इसके बाद जितना कुछ स्वर बनाया जा सकता था, उतना क्रुद्ध होकर मैंने कहा :

'सुअर, इतने दिन मेरे पास रहकर तूने अभी यह नहीं सीखा कि बड़े आदमी का अदब कैसे किया जा सकता है! क्या दुनिया में मेरे ही पास घड़ी है? सूबेदार साहब के पास वैसी पच्चीस घड़ी हो सकती हैं।'

नौकर गाली और मार खाकर चुपचाप मेरा मुंह ताकता रहा। मेरा यह व्यवहार उसके लिए सर्वथा अतर्कित था। वह एक शब्द भी नहीं बोला।

इसके बाद मैं सूबेदार साहब के पास गया। उनका चेहरा सफेद, मुर्दे के समान हो रहा था। वे आंखें फाड़-फाड़कर मेरी ओर ताक रहे थे। मैंने नम्रता से उनसे कहा—सूबेदार साहब, मेरे नौकर ने जो आपके साथ बेअदबी की है वह उसका कसूर नहीं है, मेरा है; परन्तु पुराने ताल्लुकात और उन कृपाओं का खयाल करके, जो आपने हमेशा मेरे ऊपर की हैं, मैं आपसे क्षमा की आशा करता हूं।—यह कहकर मैंने घड़ी उनके हाथ पर रख दी।

सूबेदार साहब ने चुपचाप घड़ी ले ली और वे यन्त्रचालित से उठकर चुपचाप ही अपने घर को चल दिए। मैं द्वार तक उनके पीछे दौड़ा, परन्तु उन्होंने फिर मेरी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा।

मेरा मन कैसा कुछ हो गया था, कह नहीं सकता। परन्तु मुझे महल अवश्य जाना था और पांच बजने में अब देर नहीं थी। मैंने झटपट कपड़े पहने और घर से निकला। अभी मैंने गाड़ी में पैर ही किया था कि सूबेदार साहब का आदमी हांफता हुआ बदहवास-सा आया। उसने कहा—जल्दी चलिए डाक्टर साहब, सूबेदार साहब ने ज़हर खा लिया है और हालत बहुत खराब है!

मैं घबराकर सीधा उनके घर पहुंचा। एक कोहराम मचा था। भीड़ को पार करके मैं सूबेदार साहब के पलंग के पास गया। अभी वे होश में थे। मुझे देखकर टूटते स्वर में उन्होंने कहा—घड़ी मैंने आपकी चुराई थी डाक्टर साहब, परन्तु जीवन-भर में जो कुछ मैंने आपकी भलाई की थी, मेरी इज़्ज़त बचाकर उसका पूरा बदला आपने चुका दिया। लीजिए मेरे हाथ से अपनी घड़ी ले जाइए। अब मैं ज़िन्दा नहीं रह सकता। परन्तु आप इस चोर सूबेदार को भूलिएगा नहीं और उसे माफ कर देने की कोशिश कीजिएगा।

सूबेदार साहब की आंखें उलटी-सीधी होने लगीं। अब वास्तव में कुछ भी नहीं हो सकता था। मैंने चुपके से घड़ी जेब में डाल ली, और सबकी नज़र बचाकर आंखें पोंछ लीं। कुछ मिनटों में ही सूबेदार ने दम तोड़ा और मैं जैसे-तैसे उनके घरवालों को दम-दिलासा देकर डाक्टरी गम्भीरता बनाए अपने घर आ गया।...

डाक्टर ने एक गहरी सांस ली और एक बार मित्रों की ओर, और फिर उस घड़ी की ओर देखा। सभी मित्रों की आंखें गीली थीं और देर तक किसीके मुंह से आवाज़ नहीं निकली।

कलकत्ते में एक रात

बड़े-बड़े शहरों में आधुनिक सभ्यता के नये रंग-ढंग, छल-कपट के साधन भी बन गए हैं। इस कहानी का नायक उसीका शिकार है।

कलकत्ता जाने का मेरा पहला ही मौका था। मैं संध्या-समय वहां पहुंचा, और हरीसन रोड पर एक होटल में ठहर गया। होटल में जो कमरा मेरे लिए ठीक किया गया, उसमें सब सामान ठिकाने लगा थोड़ी देर मैं सुस्ताया। फिर स्नान कर, चाय पी, कपड़े बदल एक नज़र शहर को देखने बाहर निकला।

बरसात के दिन थे। अभी कुछ देर पहले पानी पड़ चुका था। ठंडी हवा के झोंके मन को हरा कर रहे थे। चलने को तैयार होकर मैं कुछ क्षण तक तो होटल के बरांडे में खड़ा होकर बाज़ार की भीड़-भाड़, चहल-पहल देखने लगा। गगन-चुम्बी अट्टालिकाएं, प्रशस्त सड़कें, उनपर पागल की भांति धुन बांधकर आते-जाते मनुष्यों की भीड़, मोटर, ट्राम-गाड़ी, यह सब देखकर मेरा दिल घबराने लगा। मैं खड़ा होकर सोचने लगा; आखिर यहां मन में कैसे शांति उत्पन्न हो सकती है।

अंधेरा हो गया था, परन्तु बाज़ार बिजली से जगमगा रहा था। कहना चाहिए, बाज़ार की शोभा दिन की अपेक्षा रात ही को अधिक प्रतीत होती है। जो दूकानें अभी दिन के प्रकाश में सुस्त और अंधकारपूर्ण थीं, इस समय वे जगमगा रही थीं। ग्राहकों की भीड़-भाड़ के क्या कहने थे, किसीको पलक मारने की फ़ुर्सत न थी।

कुछ देर बाज़ार की यह बहार देखकर मैं नीचे उतरा। होटल के नीचे ही एक पानवाले की बड़ी शानदार दूकान थी। दूकान छोटी थी, पर बिजली के तीव्र प्रकाश से जगमगा रही थी। सोडे की बोतलें, सिगरेट, पान सजे धरे थे। सोने के वर्क लगी गिलौरियां चांदी की तश्तरी में रखी थीं। मैं दूकान पर जा खड़ा हुआ। एक चवन्नी थाल में फेंककर दो बीड़ा पान लगाने को कहा। दूकानदार पान बनाने

लगा, और मैं सामने लगे कदे-आदम आईने में अपनी धज देखने लगा।

पान और रेज़गारी उसने मेरे हाथ में दिए। मैंने पान खाए, और एक दृष्टि हथेली पर धरे हुए पैसों पर डालकर उन्हें जेब में डालने का उपक्रम करता हुआ ज्योंही मैं दूकान से घूमा कि एक गौरवर्ण, सुन्दर, कोमल हाथ मेरे आगे बढ़कर फैल गया। मैं चलते-चलते ठिठककर ठहर गया। मैंने पहले उस हाथ को, फिर उस सुन्दरी नवोढ़ा को ऊपर से नीचे तक देखा। वह सिर से पैर तक एक सफेद चादर लपेटे हुए थी। चादर कुछ मैली ज़रूर थी, परन्तु भिखारियों जैसी नहीं। उसने अपना मुख भी चादर में छिपा रखा था। सिर्फ दो बड़ी-बड़ी आंखें चमक रही थीं। आंखें खूब चमकीली और काली थीं। उनके ऊपर खूब पतली, कोमल भौंहें और उनके ऊपर चांदी के समान उज्ज्वल, साफ, चिकना ललाट। चिकने और घूंघरवाले बालों की एकाध लट उसपर खेल रही थी। यद्यपि एक प्रकार के भद्दे ढंग से अपने शरीर को उस साधारण चादर में लपेट रखा था, परन्तु उसमें से उसकी सुडौल देहयष्टि और उत्फुल्ल यौवन फूटा पड़ता था। उसके मुख के शेष भाग को देखने का उपाय न था। परन्तु उसपर दृष्टि डालते ही उसे देखने की प्यास आंखों में पैदा हो जाती थी।

मैंने क्षण-भर ही में उसे देख लिया। उसने मुझसे कुछ कहा नहीं। वह एक हाथ से अपनी चादर को शरीर से ठीक-ठीक लपेटे दूसरा हाथ मेरे आगे पसारकर खड़ी रही। उसकी दृष्टि में भीख की याचना थी, और एक गहरी करुणा भी। वह मानो कोई भेद छिपाए फिर रही थी। मैं एकाएक पागल-सा हो गया, कुछ कह न सका। मैंने हाथ के कुल पैसे उसे दे दिए।

पैसे पाकर उसने उन्हें बिना ही देखे मुट्ठी में भर लिया। फिर उसने एक विचित्र दृष्टि से मेरी ओर देखा। वह धीरे-धीरे वहां से खिसककर, सड़क के दूसरे छोर पर एक खम्भे के सहारे खड़ी हो मेरी ओर देखने लगी।

मुझे मालूम हुआ, वह मुझसे कुछ कहना चाहती है। मेरे मन में कुछ विचित्र गुदगुदी-सी पैदा होने लगी। बड़े नगर के विचित्र जीवन का मुझे कुछ ज्ञान न था। मैं देहात के शांत वातावरण में रहनेवाला आदमी। परन्तु वह स्त्री वहां खड़ी मेरी तरफ देखती ही रही। जहां वह खड़ी थी, वहां काफी अंधेरा था। कुछ देर खड़ा मैं उसे देखता रहा। मुझे उसके निकट जाना चाहिए या नहीं, मैं यही सोचने लगा। अन्त में मैं साहस करके उसके पास गया।

मुझे निकट आया देख उसने अपने मुख से चादर का आवरण हटा लिया, और बड़ी-बड़ी आंखों से मेरी तरफ अभिप्रायपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। जैसे अजगर अपनी प्रथम दृष्टि से अपने शिकार को स्तम्भित कर देता है, उसी प्रकार मैं स्तम्भित-सा हो गया। उस अन्धकार में भी उसके मुख-चन्द्र की आभा फूटकर निकली पड़ती थी। उसने मृदु-कोमल स्वर में कहा :

'आप डरते तो नहीं ?'

प्रश्न सुनकर मैं अकचका गया। मैंने कहा—नहीं। कहो, क्या बात है ?

'मेरे साथ आइए, मैं इसी ट्राम पर सवार होती हूं। आप भी इसीपर चढ़ जाइए, मुझसे दूर बैठिए, मैं जहां उतरूं, आप भी उतर जाइए।'

वह बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए ही सामने जाती हुई ट्राम पर चढ़ गई, और मैं विकारग्रस्त रोगी की भांति बिना कुछ सोचे-विचारे कूदकर ट्राम पर चढ़ गया।

बाजारों, चौराहों और पार्कों को पार करती हुई ट्राम चली जा रही थी। वह रहस्यमयी स्त्री एक खिड़की के बाहर मुंह निकाले बैठी थी। उसके अंग का कोई भी हिस्सा नहीं दिखाई पड़ता था। मेरा दिल घबराने लगा। कई बार मैंने ट्राम से उतरने की इच्छा की, पर जैसे शरीर कीलों से जड़ दिया गया हो, मैं उठ ही नहीं सकता था।

अब उजाड़-सा मुहल्ला आ रहा था। शायद कोई मैदान था। बाज़ार पीछे छूट गए थे। दूर-दूर बिजली की बत्तियां टिमटिमा रही थीं। ट्राम कड़कती जा रही थी। रात अंधेरी थी, और बिजली के खंभों के चारों ओर अन्धकार कुछ अद्‌भुत-सा लग रहा था। सड़कें सुनसान थीं। बहुत कम आदमी सड़कों पर आते-जाते दिखाई पड़ते थे।

अब मैं ऊब उठा। मेरे मन में कुछ सन्देह उठ रहे थे। बड़े शहरों में बहुत-सी ठगी होती है, यह सुना था। इससे मन बहुत चंचल हो रहा था। ज्योंही ट्राम ठहरी, मैं उसपर से कूद पड़ा, साथ ही वह स्त्री भी उतर पड़ी। मैं एक ओर चलने को उद्यत हुआ ही था कि उसने बारीक और कोमल स्वर में कहा :

'उधर नहीं इधर आइए।'

मैंने रुककर देखा। उसने पास आकर वही जादू-भरी आंखें मेरी आंखों में

डालकर कहा :

'तुमने कहा था, मैं डरता नहीं।'

'मैं डरता तो नहीं।'

'तब आगा-पीछा क्या सोच रहे हो, भागने की जुगत में हो ?'

'मैं जानना चाहता हूं, तुम क्या चाहती हो ।'

'क्या यहां खड़े-खड़े आप मेरा मतलब जानना चाहते हैं ?'

'अनजाने मैं कहीं जाना नहीं चाहता।'

'तब यहां तक क्यों आए ?'

'तुम कौन हो ?'

'एक दुखिया स्त्री।'

'कहां रहती हो ?'

'निकट ही, वह क्या मकान दिखाई दे रहा है।'

उसने सामने एक साधारण घर की ओर संकेत किया।

'वहां और कौन हैं ?'

'मेरा पति है।'

'वह कोई काम क्यों नहीं करता ? तुम्हें भीख मांगकर उसे खिलाना पड़ता है।'

'आप तो सब बातें यहीं खत्म कर देना चाहते हैं।'

'मैं घर नहीं जाना चाहता, तुम्हें यदि कुछ सहायता चाहिए तो मैं तुम्हें दे सकता हूं।'

'आप चले जाइए, मुझे आपकी सहायता नहीं चाहिए।' उसने हंसकर कहा और फिर ऐंठकर चल दी।'

वह अद्भुत अज्ञात सुन्दरी बाला मुझ अपरिचित से सुनसान रात्रि में ऐसी नोक-झोंक से बातें करके चल दी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह किसी रस्सी से बांधकर मुझे खींचे लिए जा रही है।

मैंने कहा—ठहरो, नाराज़ क्यों होती हो ?

वह खड़ी हो गई।

मैंने पास जाकर कहा—आखिर तुम्हारा मतलब क्या है ? साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो ?

उसने क्षण-भर उन चमकीली आंखों से मेरी तरफ देखा, मुख पर से

चादर का आवरण हटाया। उस अन्धकार में भी मैं उस मोहक लावण्य को देख-कर विचलित हो गया। उसने कहा—एक औरत से डरते हो?

'डरता नहीं हूं।'

'तब चले आओ।'

वह बिना मेरा मत जाने ही चल दी। मैं मन्त्रमुग्ध की भांति उसके पीछे चल दिया।

सड़क से गलियों में और गली से एक बहुत ही सकरी गली में वह घुसती ही चली गई। अन्त में एक मकान के द्वार पर जाकर उसने कुछ संकेत किया। एक बूढ़े आदमी ने आकर द्वार खोल दिया। वह मेरी तरफ भीतर आने का संकेत कर आगे बढ़ गई। मैं भी धड़कते हृदय से भीतर घुसकर उसके पीछे-पीछे चल दिया। मेरे भीतर आने पर बूढ़ा द्वार अच्छी तरह बन्द करके हमारे पीछे-पीछे आने लगा।

दूसरी मंज़िल पर पहुंचकर उसने बूढ़े से कहा—बाबू को तुम ऊपर ले जाकर बैठाओ। मैं अभी आती हूं।—यह कहकर वह तेज़ी से आगे बढ़ गई। मैं वहीं खड़ा उस बूढ़े का मुंह देखने लगा। उस स्थान पर बहुत अन्धकार न था, फिर भी बूढ़े का चेहरा साफ-साफ नहीं दिखलाई पड़ता था। उसने अदब से झुककर कहा—चलिए।—वह आगे-आगे चल दिया।

मैं उसके पीछे चढ़ता ही गया। चौथी मंज़िल पर एक खुली छत थी। उस-पर एक अच्छा खासा कमरा था। कमरा बंद था। बूढ़े ने अपनी जेब से चाभी निकालकर उसे खोला, स्विच दबाकर ज्वलंत रोशनी करके मुझे भीतर आने का इशारा किया। भीतर कदम रखते ही मैं दंग रह गया। वह कमरा ऐसे अमीरी ठाठ से सजा हुआ था कि क्या कहूं? दीवारों पर खूब बढ़िया तस्वीरें लगी थीं। एक ओर पीतल के काम का कीमती छपरखट पड़ा था। फर्श पर आधे में ईरानी कालीन बिछा था, और शेष आधे में बालिश्त-भर मोटा गद्दा, जिसपर स्वच्छ चांदनी बिछी थी। दस-बारह छोटे-बड़े तकिये उसमें सजे थे। फर्नीचर बहुत नफा-सत से सजाया गया था। कई वाद्ययन्त्र और ग्रामोफोन केबिनेट भी वहां रखे थे।

यह सब कुछ देखकर मेरी आंखें चौंधिया गईं। एक भिक्षुक स्त्री का यह ठाठ। उसका मुझे फंसाकर लाने में क्या अभिप्राय हो सकता है। वह भिक्षुकी तो है नहीं,

निस्सन्देह कोई मायाविनी है। उसके सौन्दर्य को तो मैं प्रथम ही भांप चुका हूं। अब उसके धन-वैभव का भी यह रंग-ढंग दिखलाई पड़ रहा है।

मैं महामूर्ख की भांति हक्का-बक्का होकर कमरे की प्रत्येक चीज़ को देख रहा था। बीच-बीच में घबरा भी उठता था कि कहीं कोई आफत न सिर पर आ टूटे।

वही बूढ़ा एक बड़ी ट्रे में बहुत-सा नाश्ते का सामान ले आया। उसमें अनेक बंगाली-अंग्रेज़ी मिठाइयां, नमकीन, चाय, फल, मेवा और न जाने क्या-क्या चीज़ें थीं। सब कुछ बहुत बढ़िया था। राजाओं को भी ऐसा नाश्ता शायद ही नसीब होता हो।

बूढ़े ने नाश्ता सामने रखकर कहा—मालकिन अभी तशरीफ ला रही हैं, तब तक आप थोड़ा जल खा लीजिए।

मेरा मन क्या जल खाने में था। मैंने अकचकाकर कहा—तुम्हारी मालकिन कौन हैं, कहां हैं? जो मुझे लाई थीं क्या वही हैं?

बूढ़े ने विनीत स्वर में कहा—सरकार, यह सब कुछ आप उन्हींसे पूछ लीजिए।

वह चला गया। मैं उठकर टहलने लगा। जलपान मैंने नहीं किया। अगर इसमें ज़हर मिला हो तब? कोई धोखे की बात हो तो? मैं उस आफत से भागने की जुगत लड़ाने लगा। परन्तु रह-रहकर मेरे पैर जकड़े जाते थे।

मैं अभी सोच ही रहा था कि एक परम सुन्दरी युवती ने कमरे में कदम रखा। वह बहुमूल्य साड़ी पहने थी, जिसके जिस्म पर सोफियाने और नाज़ुक रत्नजटित गहने थे। वह मुस्कराती आई और मेरे पास मसनद पर बैठ गई। उसके रूप की दुपहरी मुझसे सही न गई। मेरी आंखें चौंधियाने लगीं। वह रूप और यौवन, ऐश्वर्य और मादकता! मेरे होश उड़ गए।

उसने वीणा-विनिंदित स्वर में कहा—आपको बहुत देर इन्तज़ार करना पड़ा। आप शायद नाराज़ हो गए, क्यों?—वह हंस दी। मैं हंस न सका। मेरे मन में उसे देख वासना तो उद्दीप्त हो गई थी, पर मैं बुरी तरह घबरा रहा था। इस मायाजाल के भीतर क्या है, मैं जानने को छटपटा रहा था।

वह और मेरे निकट खिसक आई। उसने उसी भांति हंसकर कहा—आपने नाश्ता भी नहीं किया और अब बोलते भी नहीं। इसका सबब?

उसने एक तीखे कटाक्ष का वार किया। मैंने देखा और समझा—वही है। परन्तु इसका क्या कारण हो सकता है कि यह अद्‌भुत स्त्री इस प्रकार भिखारिणी बनकर लोगों को फांसकर ले आती है।

मैंने उससे पूछा—तब वहां आप ही थीं ?

'कहां ?'

'बाज़ार में और मेरे साथ भी ?'

'वाह, वहां मैं क्यों होने लगी ?' वह हंस दी। उसकी प्रगल्भता बढ़ रही थी और वह अधिकाधिक मेरे निकट आ रही थी।

उसने निकट आकर स्निग्ध स्वर में कहा—आप शायद मेरी दासी की बात कह रहे हैं।

'यदि वह आपकी दासी थी तो क्या आप कृपा कर मुझपर यह भेद खोल सकेंगी कि किस कारण आप इस प्रकार ज़ाल में फांस-फांसकर लोगों को घर में बुलाती हैं ?'

मेरी बात सुनकर वह एकदम उदास हो गई।

उसने आंखों में आंसू भरकर कहा—आपको यदि कुछ ज़्यादा कष्ट हुआ हो, तो आप जा सकते हैं। मैंने तो आपको एक धर्मात्मा आदमी समझकर इस आशा से कष्ट दिया था कि एक दुखिया अबला का कष्ट आप दूर करेंगे, परन्तु मर्द, जैसे सब हैं, वैसे ही आप भी हैं।

वह सिसकियां लेने लगी। मैं बहुत लज्जित हुआ। वास्तव में मैंने बहुत रूखी बात कह दी थी।

मैंने कहा—आपको इतना क्या दुःख है ? मुझसे कहिए, तो मैं अपनी शक्ति-भर उसे दूर करने का उपाय करूं।

'इसपर मुझे विश्वास कैसे हो ?' उसने आंसुओं से भीगी हुई पलकों को मेरी ओर उठाकर कहा।

उस दृष्टि से मैं विचलित हो गया। मैंने कहा—यद्यपि मेरी आदत नहीं, फिर भी मैं कसम खाने को तैयार हूं।

उसके होंठों पर मधुर मुस्कराहट फैल गई। उसने कहा—अब मुझे विश्वास हो गया।

इतने ही में वही बूढ़ा एक ट्रे में शराब की एक बोतल, गिलास और कुछ नम-

कौन ले आया।

शराब से यद्यपि मुझे परहेज़ न था, परन्तु उस समय मैंने शराब पीने से साफ इनकार कर दिया। इसपर उसने बड़े तपाक से कहा—बस, तो इसीपर आप कसम खा रहे थे। आपने अगर पहले कभी नहीं पी है, तो मैं ज़िद नहीं करती, परन्तु यदि पीते हैं, तो शौक कीजिए। गरीबों की आखिर कुछ चीज़ तो मंज़ूर फर्माइए।

उसने इस अंदाज़ से यह बात कही, और बोतल से शराब उंडेलकर मेरे मुंह में लगा दी कि मैं कुछ भी न कह सका। गले में शराब से सिंचन पाकर मैंने मन में उत्तेजना का अनुभव किया। मैं अपनी परिस्थिति को भूल गया। धीरे···

जब मेरी आंख खुली, तो मैंने अपने को अपने होटल के कमरे में पलंग पर पड़ा पाया। धीरे-धीरे मैंने आंखें खोलीं। प्रातःकाल की धूप खिड़की से छनकर कमरे में आ रही थी। मेरा सिर चकरा रहा था, और शरीर में बड़ा दर्द था। कई मिनट तक मैं बिना हिले-डुले पड़ा रहा, जैसे शरीर का सत निकल गया हो। धीरे-धीरे मुझे रात की सब घटना स्मरण हो आई। मैं हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। पहले मुझे यह नहीं मालूम हुआ कि मैं होटल में हूं। पीछे मैंने अपने कमरे को पहचाना। सब बातें स्वप्न के समान आंखों में घूमने लगीं। सिर अब भी दर्द से फटा पड़ता था। मैं उठकर बैठ गया, और दोनों हाथों से सिर को दबाकर बैठा रहा।

मैं यहां कैसे आ गया? रात क्या-मैं वहां नहीं गया था? नहीं-नहीं, सचमुच गया था। मैंने देखा, मेरे शरीर पर वही कपड़े थे, जो मैंने शाम को घूमने जाने के समय पहने थे। एकाएक मैंने देखा, मेरे हाथ की हीरे की अंगूठी गायब है। घड़ी की चेन भी नदारद है। जेब का मनीबेग भी नहीं है।

यह देखकर तो मैं बिलकुल बौखला गया। मैंने घंटी बजाई। नौकर ने आकर बताया कि आप बहुत रात गए आए थे। आपने ज़्यादा शराब पी ली थी, इससे बदहवास हो गए थे। आपके जिन मित्र के यहां आपकी दावत थी, उनके दो नौकर आपको यहां गाड़ी पर पहुंचा गए थे।

मैंने जल्दी-जल्दी कोट बदन पर डाला, और धड़धड़ाता हुआ पुलिस-आफिस में पहुंचा। सब घटना की मैंने रिपोर्ट लिखाई। मेरा वर्णन सुनकर इंस्पेक्टर मुस्क-

राने लगे। वे तुरंत ही दो कांस्टेबिलों को लेकर मेरे साथ चल दिए।

मैं अनायास ही ठिकाने पर जा पहुंचा। जिस घर में जाकर मैं बेवकूफ बना था, इस समय उसके दरवाज़े में ताला पड़ा था, और उसपर 'टू लेट' का साइन-बोर्ड लगा था। पूछने पर पड़ोस के एक संभ्रांत बंगाली महाशय ने आकर कहा कि यह मकान उन्हींका है, और किराये को खाली है, तथा कई महीने से इसमें कोई नहीं रहता है। जब मैंने उनसे रात की घटना का ज़िक्र किया, तो वह हंसने लगे। उन्होंने कहा—बाबू का दिमाग फिर गया है। आप किसी दूसरे मकान में आए होंगे।—वे हाथ का नारियल पीते हुए भीतर चले गए। हम लोग कोई सुराग न पाकर चले आए।

लगभग ढाई हज़ार के नोट और जवाहरात के अलावा मेरे बहुत कीमती कागज़ात भी गायब हो गए थे। वे सब उसी दिन मुझे अदालत में पेश करने थे। उसी काम से मैं कलकत्ता गया था। मुझे कोर्ट में यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनमें से कुछ ज़रूरी कागज़ात प्रतिपक्षी वकील की फाइल में हैं, और उनसे मेरे विरुद्ध सबूत जुटाया जा रहा है। कहना न होगा, वह चालीस हज़ार का मुकदमा मैं उन कागज़ों को गंवाकर उसी तारीख को हार बैठा।

उसी दिन मैंने कलकत्ता त्यागा। घर आकर बहुत कोशिश उस भेद को खोलने की की, पर शोक, कुछ पता न चला। इस प्रकार कलकत्ते की वह एक रात मेरे जीवन में एक काल-रात बन गई।

प्यार

रूप की पिपासा जब प्यार में परिणत हो जाती है तो पुरुष अपनी प्रेमिका को पाने में क्या कुछ नहीं कर बैठता ! वातावरण का चित्रण इसमें सुन्दर बन पड़ा है ।

भादों की भरी रात । घना अन्धकार । दामोदर नद का सीमाहीन विस्तार । समस्त प्रकृति जड़, स्तब्ध । समीप ही एक राजोद्यान, विविध विटप-लता-वेष्टित । अन्धकार में अन्धकार । मेंढक, झींगुर और दूसरे जीवों का तीव्र स्वर दामोदर की उत्तुंग तरंग-राशि के हुंकार में मिला हुआ । जब-तब किसी विहंग का करुण क्रन्दन । निस्तब्धता का आर्तनाद । उद्यान की मध्य-भूमि में एक धवल प्रासाद, अन्धकार पर मुस्कान बिखेरता हुआ, गगनचुंबी किन्तु स्तब्ध । नीरव, निस्पन्द । अर्द्धरात्रि ।

कक्ष में दीप जल रहा था । एक भद्र-वेशधारिणी वृद्धा बहुत-सी छोटी-बड़ी पोटलियां कभी खोलती, कभी बांधती, कभी आप ही आप बड़बड़ाती । वृद्धा के बाल श्वेत थे, शरीर गौर था, आंखें बड़ी-बड़ी थीं, वस्त्र सादा, निरलंकार शरीर कुछ स्थूल था । नाक ज़रा ऊंची, दृष्टि पैनी, और इस वेला चंचल । हवा के झोंके से दीप बुझने को हो जाता । उसकी लौ कांपती, और फिर स्थिर हो जाती । कुछ पोटलियां बंधी थीं, कुछ खुली पड़ी थीं । उनमें से किसीमें हीरे-मोती, मणि, माणिक, किसीमें स्वर्ण की मुहरें, किसीमें जड़ाऊ गहने, किसीमें बहुमूल्य कम-खाब और जरबफ्त की पोशाकें । सभी कुछ सामने फैला पड़ा था । क्या साथ ले, क्या छोड़ दे, वृद्धा इसी असमंजस में बैठी, बड़बड़ाती हुई, कभी इस और कभी उस पोटली को बांध और खोल रही थी ।

इसी समय एक कृशांगी बाला ने निःशब्द कक्ष में प्रवेश किया । बाला की आयु कोई इक्कीस बरस की थी । लम्बा, छरहरा कद, बड़ी-बड़ी उज्ज्वल आंखें । चांदी-सा चमकता श्वेत माथा, सीप-से दमकते हुए कपोल, जैसे हिलते ही रक्त टपक पड़ेगा, ऐसे होंठ । मलिनमुखी, मलिनवसना, करुणा की सजीव मूर्ति-

सी। वृद्धा को उसके आने का भान नहीं हुआ। वह उसी भांति उन मूल्यवान कंकड़-पत्थरों को जल्दी-जल्दी इधर-उधर करती, खोलती-बांधती, साथ ही बड़बड़ाती जा रही थी।

रमणी ने देखकर दीर्घ निःश्वास छोड़ा। फिर आहिस्ता से कहा—मरजाना, यह सब क्या है?

'जो-जो साथ ले चलना है, वही सब बांध-बूंध रही हूं।'

'तो तू समझती है कि मैं ससुराल जा रही हूं?'

वृद्धा की आंखों में आंसू आ गए। उसने एक बार रमणी की ओर देखा, फिर आंखें नीची करके कहा—बीबी, यह सब आगरा में काम आएंगे।

'तुझसे किसने कहा कि मैं आगरा जाऊंगी?'

'तो फिर नाव क्यों मंगाई है?'

'उस पार जाने के लिए।'

'उस पार कहां जाओगी?'

'जहां आंखें ले जाएं।'

रमणी ने बांदी के सामने कातर भाव प्रकट नहीं होने दिया। आंसुओं को आंखों ही में पी लिया।

बूढ़ी दासी बीबी को प्यार करती थी। उसने गुस्सा होकर कहा—आगरा भी नहीं जाओगी, यहां भी नहीं रहोगी। तो फिर इस दुनिया में तुम्हारे लिए ठौर कहां है?

बरवस एक आंसू रमणी की आंख से टपक ही पड़ा। पर उसे मरजाना ने देखा नहीं। उसने आहिस्ता से कहा—बीबी जान, जितना ज़रूरी है, वही ले चल रही हूं।

'आखिर किसलिए?'

'अपने काम आएगा, बीबी, अभी ज़िन्दगी बहुत है।'

'बोझ तो ज़िन्दगी का ही काफी है। इन कंकड़-पत्थरों का बोझ लादकर क्या करेगी?'

'ज़िन्दगी का बोझ हलका करूंगी। बीबी, तुम्हें नहीं लादना होगा। मैं ही ले चलूंगी।'

'नहीं, मरजाना, यह सब दामोदर के पानी में फेंक दे।'

बांदी ने खीझकर कहा—यह सब दामोदर के पानी में फेंक दोगी, तो खाओगी क्या ?

'हाथी से चींटी तक को जो देता है, वही दाता इस यतीम बेवा को भी देगा। न होगा तो राह-बाट में कहीं भूख से मर जाऊंगी। कुत्ते और सियार जिस्म को ठिकाने लगा देंगे।'

'तौबा, तौबा ! यह क्या कलमा कहा बीबी ?'

'तेरा इन कंकड़-पत्थरों पर मोह है, तो तू इन्हें ले जा। तुझे छुट्टी है।'

'खूब छुट्टी दी बीबी ! छाती पर बोझ लेकर दामोदर के पानी में डूब मरने में इस बदबख्त बुढ़िया को कुछ तकलीफ न होगी।'

'नाराज़ हो गई मरजाना ? राह में चोर-डाकुओं का क्या डर नहीं है ? हम औरत जात किस-किस मुसीबत का सामना करेंगी ? यह भी तो सोच।'

मरजाना की आंखों से टप से दो बूंद आंसू टपक पड़े।

रमणी ने देखा, न देखा। उसने कहा—अब देर न कर। तीन पहर रात बीत चुकी। दिन निकलने पर निकलना न हो सकेगा।

मरजाना ने झटपट सब हीरे-जवाहर कूड़े के ढेर की तरह एक गठरी में बांधे, और उसे बगल में दबाकर उठ खड़ी हुई। फिर एक दीर्घ निःश्वास फेंककर कहा —चलो, बीबी। लेकिन बच्ची सो रही है। तुम यह गठरी लो। मैं बच्ची को लिए लेती हूं।

'नहीं, बच्ची को मैं ही ले चलती हूं।'

युवती ने बच्ची को गोद में ले लिया, काले वस्त्र से शरीर को अच्छी तरह लपेटा, एक नज़र उस भव्य अट्टालिका पर डाली, एक गहरी सांस छोड़ी, और चल दी। पीछे-पीछे मरजाना थी।

दोनों असहाय स्त्रियां प्रासाद की सीढ़ियां उतर, निविड़ अन्धकार में पौरी, द्वार, आंगन, दालान पार कर, बाग की रविशों पर चलती हुई, नदी-तीर की ओर बढ़ चलीं। सामने दामोदर का विशाल विस्तार है। हवा तीर की तरह चल रही है। हवा के एक झोंके ने बाला का वस्त्र उड़ा दिया। उसे अच्छी तरह शरीर से लपेट, और बच्ची को छाती से लगा, बाला ने कदम बढ़ाए।

पीछे से आंचल खींचकर मरजाना ने कहा—बीबी, बड़ा डर लग लग रहा है। चलो, लौट चलें।

'लौट चलने को घर से नहीं निकली हूं। और पास आ जा। किनारा दूर नहीं है। वह सामने किश्ती है। किश्ती पर चिराग जल रहा है।'

'लेकिन यह पैरों की आहट कैसी है?...कोई आ रहा है!'

'जंगल है। सियार-कुत्ते रात में घूमते ही हैं।'

'बड़ी खौफनाक रात है बीबी। कोई हरबा-हथियार भी साथ नहीं लिया। बड़ी गलती की।'

'सबसे बड़ा हथियार है मेरे पास—तेज़ ज़हर। आनन-फानन तमाम डर-खतरों को दूर करने की इसमें ताकत है।'

'यह तो अपनी ही जान खोना हुआ। दुश्मन का इससे क्या बिगड़ेगा?'

'मैं यतीम बेवा औरत दुश्मन का क्या बिगाड़ सकती हूं? फिर बिगाड़-सुधार जो होना था, हो चुका। किस्मत में जो लिखा है, वही तो होगा। फिर दुश्मन पर गुस्सा क्या, किसीसे शिकायत क्या?'

भय से मरजाना की चीख निकल गई। उसने कहा—बीबी, वह क्या है?

काली-काली भूत-सी दो मूर्तियां अंधकार में आगे बढ़ रही थीं। देखकर बाला रुक गई। बच्ची को उसने ज़ोर से छाती पर कस लिया।

पास आने पर बाला ने देखा—आनेवाले दो पुरुष थे। दोनों उच्च सैनिक पदाधिकारी प्रतीत होते थे। उनकी कीमती पोशाक पर शस्त्र अंधेरे में भी चमक रहे थे।

जो आगे था, उसीने रोब-भरे स्वर में कहा—आप लोग कौन हैं?

इधर से किसीने कोई जवाब नहीं दिया। उस पुरुष ने फिर वैसे ही स्वर में कहा—आप जो कोई भी हों; जहां हैं, वहीं खड़े रहें।

उसने अपने साथी को मशाल जलाने को कहा। साथी के एक हाथ में नंगी तलवार थी, और दूसरे में मशाल। तलवार म्यान में करके उसने मशाल जला दी। मशाल के पीले, कांपते प्रकाश में उस व्यक्ति ने देखा, दो स्त्रियां हैं। आगे एक अनिंद्य सुन्दरी बाला है।

वह दो कदम आगे बढ़ आया।

बाला ने जलद-गम्भीर स्वर में कहा—तुम लोग कौन हो? और किसके हुक्म से तुमने हमारे बाग में घुस आने की जुर्रत की?'

'मुआफ कीजिए! मैं आज्ञाकारी सेवक हूं।'

'किसके ?'

'नूरुद्दीन गाज़ी मुहम्मद जहांगीर शहनशाहे-हिन्द का।'

'लेकिन यह तो शहनशाहे-हिन्द का दौलतखाना नहीं है।'

'जी, जानता हूं।'

तुम क्या मुझे पहचानते हो ?'

'पहचानता हूं।'

'तुम्हारा रुतबा क्या है ?'

'मैं शाही सेना का एक सिपहसालार हूं।'

'तो हज़रत बादशाह ने तुम्हें मेरा घर-बार लूटने के लिए भेजा है ?'

'जी नहीं। बेअदबी मुआफ हो। हम लोग आपको बाइज़्ज़त दिल्ली ले जाने के लिए आए हैं।'

'तुम्हारे साथ फौज कितनी है ?'

'पांच हज़ार सवार।'

'एक बेबस बेवा को कैद करने के लिए शहनशाहे-हिन्द ने इतनी बड़ी फौज भेजी है ? यह तो शहनशाह की शान के खिलाफ है।'

'बेअदबी माफ हो ! कैद करने के लिए नहीं। शहनशाहे-हिन्द का हुक्म है कि आपको बाइज़्ज़त दिल्ली ले जाया जाए।'

'लेकिन तुम तो चोर की तरह रात को मेरे महल में घुसे हो। क्या यह शर्म की बात नहीं ? तुम शाही सेनापति हो, फिर भी…'

'गुलाम हुक्म का बन्दा है। इसमें हमारा कुसूर नहीं है।'

'खैर, तो तुम मेरे साथ कैसा सलूक किया चाहते हो ? तुमने कहा था—बा-इज़्ज़त…'

'जी हां। बादशाह का हुक्म है कि आपके साथ हर तरह एक मलिका के दर्जे का व्यवहार किया जाए।'

'तो तुमने महल क्यों घेरा ?'

'मुझे खबर मिली थी कि आप आज रात बर्दवान छोड़ रही हैं। अगर आप चली जातीं, तो मेरा सिर धड़ से उड़ा दिया जाता।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'रहमतखां।'

'कै हज़ारी का रुतबा है?'

'तीनहज़ारी।'

'क्या तुम मेरी एक आरज़ू पूरी कर सकते हो?'

'आपके हर हुक्म को बजा लाने का मुझे शाही हुक्म है।'

'तो मेरे पास जो ज़र-जवाहिर है, वह सब मैं तुम्हें देती हूं। इसके अलावा दस हज़ार अशर्फियां और। तुम मुझे चली जाने दो।'

'बादशाह को क्या जवाब दूंगा?'

'कह देना कि कैदी ने रास्ते में ज़हर खा लिया। इतमीनान रखो, तुम फिर कभी यह सूरत दुनिया में न देखोगे।'

'शहनशाहे-हिन्द के जांनिसार नौकर नमकहराम और दगाबाज़ नहीं होते।'

'खैर, देखूं, शाही फरमान कहां है?'

'रहमतखां ने अंगरखे की जेब से निकालकर फरमान रमणी के हाथ में दे दिया। मशाल की रोशनी में उसने पढ़ा। लिखा था :

'शेरअफगन की बेवा को बाइज़्ज़त ले आओ।'

फरमान पढ़कर एक वक्र मुस्कान रमणी के होंठों पर खेल गई। उसने घृणा से फरमान रहमतखां को वापस देते हुए कहा—यह तो मेरे नाम नहीं, तुम्हारे नाम है। जब तक मेरे नाम फरमान नहीं आता, मैं दिल्ली नहीं जाऊंगी।

'आपका हुक्म मुझे बसरोचश्म मंज़ूर है। आप महल में तशरीफ ले जाएं। मैं दूसरा शाही परवाना मंगाता हूं।'

सेनापति ने झुककर सलाम किया, और पीछे हट गया। रमणी क्षण-भर खड़ी रही, और फिर पीछे लौट पड़ी। पीछे-पीछे मरजाना थी।···

'मरजाना, बूढ़ा पूरा घाघ है। झुककर मीठी बातें बनाता है। मगर नज़र किस कदर सख्त है कि महल को तातारी बांदियों ने घेर रखा है। बाहर फौज का घेरा है। महल में पंछी भी पर नहीं मार सकता।'

रात बीत रही थी। आसमान में बादल छाए थे। सुबह का धुंधला प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। उस प्रकाश में सामने फैला हुआ दामोदर नद समुद्र-सा लग रहा था। बगीचे में चम्पा, चमेली, रजनीगन्धा, जुही, नागकेसर के फूलों की

महक भर रही थी। एकाध पक्षी जगकर कभी-कदा बोल उठता था।

मरजाना ने कहा—अब क्या होगा बीबी ?

'तुझे अभी जाना होगा।'

'कहां ?'

'काटवा।'

'काटवा किसलिए ?'

'महारानी कल्याणी के पास जा, और उन्हें संग ले आ। ले, खर्च के लिए दस अशर्फी। एक पालकी ले आना।'

'लेकिन जाऊंगी कैसे ? महल तो हथियारबन्द तातारी बांदियों ने घेर रखा है।'

रमणी कुछ देर सोचती रही। फिर उसने दस्तक दी। एक तातारी बांदी हाथ बांधकर आ खड़ी हुई। उसने कोर्निश करके पूछा—क्या हुक्म है, बेगम साहबा ?

'रहमतखां सिपहसालार को अभी हाज़िर कर।'

बांदी सिर झुकाकर चली गई।

थोड़ी देर में वृद्ध रहमतखां ने ड्योढ़ी पर आकर सलाम किया।

रमणी ने परदे की आड़ ही से कहा—एक कैदी के साथ इस कदर अदब-आदाब की ज़रूरत नहीं। मैंने एक बात जानने के लिए तुम्हें तकलीफ दी है।

'मैं आपका गुलाम हूं। हुक्म दीजिए।'

'मेरी बांदी एक जगह जा रही है। किसी सिपाही को उसके साथ भेज दो। वहां से मेरी एक सहेली आएंगी। खबरदार, उनकी पालकी की जांच कोई न करे।'

'यह तो मुमकिन नहीं है, बेगम साहबा।'

रमणी की त्योरियों में बल पड़ गए। उसने कहा—क्या मुमकिन नहीं है ?

'बगैर जांच-पड़ताल के कोई पालकी भीतर नहीं आ सकती।'

'बादशाह ने क्या तुम्हें ऐसा भी हुक्म दिया है ?'

'जी नहीं। लेकिन हिफाज़त के खयाल से हमें मजबूरन यह करना पड़ता है।'

'लेकिन तुमपर हमारे हर हुक्म की तामील लाज़िम है। क्या तुम्हें बादशाह ने ऐसा हुक्म नहीं दिया है ?'

'दिया है, बेगम साहबा।'

'तो मेरा हुक्म है कि जो सवारी आ रही है, उसकी जांच-पड़ताल न की जाए, और वह बाइज़्ज़त हमारे पास आने दी जाए।'

'सवारी कहां से आ रही है?'

'काटवा से।'

'काटवा से कौन आ रही हैं?'

'काटवा के किलेदार महाराज जगपतिसिंह की महारानी कल्याणीदेवी। वह मेरी सहेली हैं। आड़े वक्त पर मैं उनसे सलाह-मशविरा लेती हूं। दिल्ली की बाबत मैं उनसे मशविरा करना चाहती हूं।'

'बहुत खूब! मैं खुद काटवा जाकर महारानी को साथ ले आता हूं। आप आराम फरमाएं।'

वृद्ध सेनापति दाढ़ी में मुस्कराता हुआ चला गया।

बाला ने एक दीर्घ निःश्वास खींचा।···

महल के झरोखे में खड़ी बाला अस्तंगत सूर्य की शोभा निहार रही थी। अमराई में आम के बड़े-बड़े वृक्ष हवा के झोंकों के साथ झूम रहे थे। उनपर सूर्य की लाल किरणें पड़कर उनमें लज्जा से लाल नववधू के मुख की सी लालिमा उत्पन्न कर रही थीं। पक्षी अपने घोंसलों को लौट रहे थे।

किसीने पुकारा—मेहर!

'आह, जो पुरुष अब दुनिया में नहीं रहा, वही तो इस तरह पुकारता था!'

मेहर ने मुंह फेरकर देखा। और वह दौड़कर रानी कल्याणी के गले से लिपट गई।

कल्याणी ने व्यथावरुद्ध स्वर में कहा—इतना हो गया, और मुझे खबर भी नहीं दी! दो ही दिन में यह सूरत बन गई। चेहरा स्याह हो गया। बिखरे-रूखे बाल, सूखे होंठ। जैसे कमल पर बिजली गिरी हो! बहिन, मुझे खबर क्यों नहीं दी?

मेहर के मुंह से बात नहीं फूटी। कल्याणी के वक्ष पर सिर रखकर वह फफक-फफककर रोने लगी।

'अब रोने-धोने से क्या होगा? जो होना था, हो गया। अब आगे की बात सोचो।'

'जो हुआ वह शायद काफी न था। इसीसे उस संगदिल बादशाह ने मुझे गिरफ्तार करके आगरा ले जाने के लिए फौज़ भेजी है।' मेहर ने रुंधे कंठ से कहा।

'आगरा तो अब तुम्हें जाना ही होगा और उपाय ही क्या है?'

'मैं रास्ते में ज़हर खा लूंगी, पर उस संगदिल बादशाह का मुंह न देखूंगी!'

रानी कल्याणी सोचने लगीं। उनका मुंह भरे बादलों जैसा गम्भीर हो उठा। उन्होंने कहा—कौन जाने, तुम्हारी किस्मत में शायद हिन्दुस्तान की मलिका होना ही लिखा हो।

'आप इस कदर बेरहम न बनें महारानी। मैंने बड़ी बहिन समझकर इस बिपता में आपको मशविरा करने के लिए बुलाया है।'

'मेहर, मैं भाग्य में विश्वास करती हूं। जो कुछ हुआ, सब भाग्य का खेल था। अब आगे जो भाग्य में है, उसे कौन मेट सकता है? तुम जानती हो कि जन्नतनशीन बादशाह अकबर यदि ज़िद न पकड़ते, तो तुम शाहज़ादा सलीम की बीवी बनतीं, और आज हिन्दुस्तान की अधीश्वरी होतीं। लेकिन भाग्य बड़ा प्रबल है। उसने तुम्हारे लिए अब फिर भारत की अधीश्वरी होने का द्वार खोल दिया है। जाओ, आगरा जाओ। बर्दवान का यह पुराना महल तुम्हारे रहने के योग्य नहीं है।'

'नहीं महारानी, मैं उस संगदिल बादशाह की मर्ज़ी का खिलौना नहीं बनूंगी। मेरे नेक, बहादुर खाविन्द के खून का दाग उसके दामन पर है।'

'मेहर, तुम्हें आगरा ले जाने के लिए फौज आई है। अब तुम क्या कर सकती हो?'

'रास्ते में ज़हर खा लूंगी। मेरी मिट्टी ही आगरा पहुंचेगी!'

'छिः, छिः! तुम अपनी ज़िन्दगी को इतनी बेकार चीज़ समझती हो? मरने से तुम्हारा सब कुछ नष्ट हो जाएगा और बादशाह का क्या बिगड़ेगा?...नहीं, मेहर, तुम्हें एक बार बादशाह के सामने जाना ही चाहिए।'

'तो मैं उसकी छाती में लात मारकर कहूंगी—तुम दीनो-दुनिया के बादशाह हो, लेकिन मैं तुमसे नफरत करती हूं! तुमने एक हंसती-खेलती दुनिया को बर-बाद किया है—एक मासूम, बेगुनाह औरत को बेवा बनाया है।'

'मेहर, लात खाकर भी अगर बादशाह इन चरणों को चूम ले, और इनका सदा के लिए दास बन जाए, तो?'

'ऐसी बात मत कहो, बहिन।'

'तो बहिन, किस्मत के दरिया में अपनी ज़िन्दगी की किश्ती को छोड़ दो और देखो कि वह कहां जाकर ठहरती है। पहले ही से कोई इरादा पक्का न करो। जब जैसा देखना, वैसा ही करना। तुम समझदार औरत हो।'

'तो आप क्या सलाह देती हैं?'

'आगरा जाओ, और अवसर मिले तो हिन्दुस्तान की मलिका बनो, और ऐसी हकूमत करो कि हिन्दुस्तान तुम्हारी एक नज़र से कांप उठे। बादशाह को अपने चरणों का गुलाम बनाओ। लेकिन अनादर ही पाओ, तो बेशक ज़हर पी लो।'

मेहर निरुत्तर हो गई। वह सिर नीचा करके सोचने लगी।

उसे अपनी छाती के निकट खींचकर रानी ने कहा—मेहर, भारत की अधीश्वरी होकर तुम बहुतों का भला करोगी। इतिहास में तुम्हारा नाम अमर हो जाएगा। आशीर्वाद देती हूं। जाओ, एक दिन तुम्हें सलाम करने मैं भी आगरा आऊंगी।...

आगरा के रंगमहल में रूप और धन-रत्न का अटूट भण्डार भरा था। हीरा, मोती, माणिक कंकड़-पत्थरों की भांति समझे जाते थे। षोडशी रूपवती नवयुवतियों का वहां जमघट था। देश-देश के एलची, सूबेदार, कारबरदार सालाना खिराज़ और नज़राने के तौर पर अपने प्रदेशों की षोडशी अनिन्द्य सुन्दरी कुमारियों को बादशाह के हरम में भेजते रहते थे। उन्हें नाचने, गाने, सेवा करने और कसीदाकारी तथा चित्रकारी के फन में निपुण किया जाता था। और तब उन्हें शाही खिदमत में ले लिया जाता था। जिन लड़कियों को शाही खिदमत करने का सौभाग्य प्राप्त होता था, उनकी किस्मत खुल जाती थी। उनका परिवार सोने और हीरे-मोतियों से लद जाता था। लेकिन हरम से बाहर कदम रखने का उन्हें हुक्म न था। बाहरी हवा में सांस लेना उनके लिए निषिद्ध था। हरम के भीतर वे फूलों से भरी क्यारियों में किल्लोल करतीं, फौवारों से अठखेलियां करतीं, इत्र में स्नान करतीं, ऐश्वर्य और आनन्द की बहार लूटतीं। परन्तु हरम से बाहर निकलने पर खूंख्वार कुत्तों से नुचवा डाली जाती थीं। यही सज़ा उनकी भी थी, जो किसी मर्द से बातें करती या हंसती-बोलती देखी जाती थीं। शाही हरम के सभी रंग-ढंग निराले थे, जहां अकेला बादशाह स्वतन्त्र था, और सब लोग उसकी इच्छा

के दास थे।

हरम का प्रत्नेक कक्ष अतिशय भव्य होता था, और ऐश्वर्य और विलास की सामग्री से भरपूर रहता था। वहां बादशाह की चहेतियां यद्यपि बन्दिनी का जीवन व्यतीत करती थीं, परंतु वे बड़े ठाट-बाट से मलिकाओं की भांति रहती थीं। हीरा, मोती उनके लिए कंकड़-पत्थर के समान थे। लेकिन यह सब ठाट-बाट तभी तक रहता था, जब तक उनका रूप-यौवन उभार पर होता था। रूप-यौवन के ढलान पर उनका जादू खत्म हो जाता था, और उनकी कोई पूछ न रह जाती थी।

मेहरुन्निसा आगरा पहुंची। लेकिन बादशाह ने उससे मुलाकात नहीं की। उसने उसे हरम के एक साधारण कक्ष में रहने की आज्ञा दी, और उसे अपनी माता की सेवा में नौकर रख दिया।

मेहर यद्यपि बादशाह से अत्यन्त रुष्ट थी, पर उसे उससे ऐसे निष्ठुर व्यवहार की आशा न थी। उसके भावुक और गर्वीले हृदय को इससे ठेस पहुंची। उसे वे दिन भूले नहीं थे, जब बादशाह शाहज़ादा सलीम था, और उसने उसके प्रति प्रेम में अन्धे होकर कितनी विकलता प्रकट की थी। वह यह भी जानती थी कि उसी-को प्राप्त करने के लिए बादशाह ने उसके प्यारे पति को मरवा डाला, और उसे सेना भेजकर आगरा बुलाया है। लेकिन आगरा आने पर उसके साथ ऐसा व्यव-हार, उसकी ऐसी उपेक्षा!

उसने बादशाह की आज्ञा मानकर राजमाता की सेविका होना स्वीकार कर लिया। पर माहवारी मुशाहरा लेने से इनकार कर दिया। उसके पास काफी धन था। उसमें से बहुत-सा उसने बांदियों को बांट दिया। और स्वयं एक प्रतिष्ठित विधवा की भांति रहने लगी। वह अपने कक्ष की बारादरी में, जो राजमहल के बाग के सामने पड़ता था, कीमती ईरानी कालीन पर ज़रदोज़ी की मसनद पर बैठकर हुक्का पीती। उसकी जवाहिरात से जड़ी हुई सोने की मुनाल उसके सुन्दर मुख में लगी रहती।

उसने चुनकर सुन्दरी दासियां अपनी सेवा में रखी थीं। वे हर समय उसकी सेवा में उपस्थित रहतीं। पर वह बहुत कम उनसे सेवा लेती। वह उन्हें सखियों की भांति खूब ठाट से सजा-धजाकर रखती। यद्यपि वह स्वयं सादा वेश में रहती, पर अपनी दासियों को हीरे-मोती और जड़ाऊ पोशाक में सजाए रखती थी। वह अरब से लाए हुए बहुमूल्य इत्र-गुलाब का खास शौक रखती थी। उसके चारों

तरफ का वातावरण निहायत खुशनुमा रहता था। परन्तु उसका हृदय उदास रहता। वह बहुधा फारसी के प्रसिद्ध कवि हाफिज़ का एक शेर गुनगुनाया करती, जिसका भावार्थ यों था : पछुवा हवा का एक झोंका वातावरण को सुरभित कर देगा। और तब पुरानी दुनिया नई में बदल जाएगी।—परन्तु उसके इस बन्दी-जीवन के दिन बीतते चले जा रहे थे। पर उसके निराश जीवन में न पछुवा का वह झोंका आता था, और न उसकी दुनिया बदलती थी।

कलमी तस्वीरें बनाकर और कसीदाकारी का काम करके उसने अपनी आजीविका चलाना आरम्भ किया। शीघ्र ही उसके हाथ की बनी वस्तुएं दिल्ली और आगरा में ऊंचे मूल्य पर बिकने लगीं। राजधानी में इन वस्तुओं का बड़ा महत्त्व हो गया। दिल्ली और आगरा की ऊंची घराने की महिलाएं और अमीर-उमरा मेहरुन्निसा के हाथों से रेशम पर बने चित्रों और कसीदों के प्रशंसक हो गए। दिल्ली और आगरा की महिलाओं में उसने एक नये फैशन और सुरुचि का प्रसार किया।

जिस-जिससे उसका सम्पर्क हुआ, उसपर उसने उच्च चारित्र्य-सम्बन्धी प्रभाव डाला। परन्तु उसकी आशाएं मुर्झा रही थीं। वह चिड़चिड़ी हो गई थी, और शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाती थी। वह सुखी नहीं थी। अपने बेबस बन्दी-जीवन को वह भार समझती थी। अपने जीवन और जीवन के ध्येय के सम्बन्ध में वह बहुधा विचार करती। वह समझती थी कि वह इस प्रकार अपने जीवन को नष्ट करने के लिए पैदा नहीं हुई है। वह उपेक्षिता थी, परन्तु वह अपनी आत्मा के तेज और अहं के दर्प से परिपूर्ण थी।

अचानक उसने सुना कि हरम में एक ऐसी औरत आई है, जो भविष्यवाणी करती है, और मनुष्य के भाग्य के रहस्यों को बताती है। उसने उसे बुलाया।

रम्माला बुढ़िया बहुत बूढ़ी थी। उसके बाल सन के समान सफेद थे। इस उम्र में भी उसकी दृष्टि सतेज थी। शेरअफगन की विधवा को देखते ही उसने अपने दोनों दुबले-पतले हाथ ऊपर उठाए, और दोनों हाथों की उंगलियों को परस्पर उमेठते हुए विक्षिप्त-सी मुद्रा में असम्बद्ध शब्द कहने आरम्भ किए। वे शब्द बड़े प्रभावशाली थे।

मेहरुन्निसा ने कुछ-कुछ भीत मुद्रा में कहा—बड़ी बी, तुम्हारी इन बातों का मतलब क्या है ? मैं अपने भाग्य और भावी जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानना

चाहती हूं। क्या तुम मुझे इस सम्बन्ध में कुछ बता सकती हो? यदि नहीं बता सकतीं, तो यह लो, और यहां से चली जाओ।—यह कहकर उसने उसके हाथ पर सोने की एक मुहर रख दी।

चमचमाती मुहर को हथेली पर देखकर, वृद्धा की आंखों में चमक आ गई। उसने कहा—ऐ नेकबख्त, तू रेगिस्तान में पैदा हुई, लेकिन तेरी मौत तख्त पर होगी। बचपन में जिसे भूखी रहना पड़ा, जवानी में वह दुनिया को रोज़ी देगी। भरोसा रख, और इस दूसरी हथेली पर अपने विश्वास का सबूत दे।—और उसने दूसरी हथेली फैला दी।

मेहरुन्निसा ने कांपते हाथ से एक और मुहर उसकी दूसरी हथेली पर रख दी। वृद्धा पागलों की भांति हंसती और बड़बड़ाती चली गई।…

मेहरुन्निसा भविष्यवाणी जैसी बातों को यद्यपि संदिग्ध मानती थी, फिर भी कहीं उसके अन्तस्तल में इनपर विश्वास भी था। बुढ़िया की अटपटी भविष्यवाणी सुनकर उसका कलेजा उछलने लगा। उसके मन में निराशा और अवसाद का जो अन्धकार बढ़ता चला आ रहा था, वह जैसे छिन्न-भिन्न होने लगा। एक अज्ञात आशा वृद्धा की अटपटी बातों से पल्लवित हो उठी। वह महत्त्वाकांक्षिणी स्त्री थी, और उसके मन में हुकूमत की लालसा थी। एक शहनशाह से उसके मानसिक दांव-पेंच चल रहे थे। वह शक्ति-भर अपनी प्रतिष्ठा-वृद्धि का कोई अवसर न चूकती थी। वह जानती थी कि उसके अप्रतिम सौन्दर्य, सुरुचि और उच्च चरित्र की चर्चा हरम में दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी।

इसी तरह दिन बीतते गए। इसी बीच एक असाधारण घटना घटी। एकाएक यह अफवाह फैल गई कि एक अत्युच्च अमीर उससे प्रेम करता है, और उसने उससे विवाह का प्रस्ताव किया है, जिसे मेहर ने स्वीकार कर लिया है। एक दिन वह अधीर, उतावला प्रेमी उसके कक्ष में बिना उसकी अनुमति के जा पहुंचा, और अत्यन्त नग्न और बेतुके ढंग से अपना प्रेम प्रकट करने लगा। मेहर ने उसे तुरन्त बाहर चले जाने का आदेश दिया। पर वह वासना का पुतला उसके आदेश की परवाह न करके उसे ज़बर्दस्ती आलिंगन करने को बढ़ा। मेहर ने सिंहनी की भांति उछलकर अपनी कटार मूंठ तक उसकी छाती में भोंक दी। आक्रमणकारी खून से लथपथ होकर फर्श पर छटपटाने लगा। आग की तरह यह खबर हरम में

फैल गई।···

पूर्व-स्मृतियां दोनों तरफ हृदयों को आन्दोलित कर रही थीं। बादशाह जब युवराज थे, और मेहरुन्निसा नवयुवती थी, तभी दोनों का प्रथम साक्षात्कार हुआ था। उन क्षणों की झांकियां मधुर स्वप्न की भांति दोनों की आंखों में छा जाती थीं।

उस समय सलीम की आयु छब्बीस बरस की थी। उसे युवराज का पद मिल चुका था। एक दिन गयासबेग उसे सादर आमंत्रित कर अपने घर ले गया। युव-राज के स्वागत-सत्कार में बहुत-से अमीर-उमरा आए। नाच-गाने हुए। मनो-रंजन की अनेक व्यवस्थाएं की गईं। ठाटदार दावत हुई। जब जश्न खत्म हो गया, और बाहरी मेहमान विदा हो गए, तो एकान्त-कक्ष में शाहज़ादा को ले जाकर बैठाया गया। शराब के जाम पेश किए गए और रस्म के मुताबिक घर की महि-लाएं शाहज़ादे के सामने सलाम करने को हाज़िर हुईं। उस समय मेहरुन्निसा की आयु केवल चौदह बरस की थी। उसने भी नीची आंखें किए उठकर शाहज़ादे के सामने आकर कोर्निश की। सुर्ख-सफेद रंग, ताज़ा काश्मीरी सेब के समान मुख, उज्ज्वल हीरे के समान दमकती आंखें, अर्धविकसित यौवन, फूलों के ढेर के समान शरीर-सम्पत्ति, सांचे में ढला एक-एक अंग, तिसपर लज्जा, भावुकता, सुकुमारता, भोली अल्हड़ता। सलीम ने देखा, तो आपा खो दिया। वह उसे अपलक देखता ही रह गया। उसने गाया, तो वह सकते के आलम में आ गया। उसने नृत्य किया, तो उसे अपने आसन पर बैठे रहना दूभर हो गया। शाहज़ादे की जलती हुई नज़रें जब उस मुग्धा पर पड़ रही थीं, अकस्मात् ही उसका दुपट्टा हवा के एक झोंके से उड़ गया, और सलीम की आंखों में सौन्दर्य के जादू का समुद्र लहरा उठा। शेष समय वह खामोश बैठा रहा।

चिराग जल गए। शराब के प्याले पेश किए जा रहे थे। और वह चुपचाप पीता जा रहा था। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे उसकी रगों में खून नहीं, पिघला हुआ सीसा बह रहा हो।

वह प्रेम का घाव खाकर लौटा। खाना, पीना, सोना उसके लिए दूभर हो गया। वह ठंडी सांसें लेता और बेचैनी से करवटें बदलता रहता। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। वह इतनी बड़ी बादशाहत का उत्तराधिकारी था, पर इस समय वह एक दीन-हीन, आकुल-व्याकुल प्रेमी था।

बादशाह अकबर से भी शाहज़ादे की यह दशा छिपी न रही। वह एक दूर-दर्शी बादशाह ही न था, नई जातीयता और नई भावनाओं को जन्म देने की आकांक्षा भी रखता था। भारत में हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त जीवन का महत्त्व उसने समझ लिया था। सात सौ वर्ष से चले आते हुए धर्मविग्रह को उसने त्यागकर हिन्दुओं के सामने मैत्री का हाथ बढ़ाया था। वह चाहता था कि हिन्दू-मुसलमानों में रोटी-बेटी के सम्बन्ध जारी हों, और दोनों जातियां एक हो जाएं। इसीसे उसने सलीम का ब्याह एक राजपूत राजकुमारी से किया था। वह नहीं चाहता था कि शाहज़ादे की इस नवीन आयु में ही राजपूत बाला के प्रेम पर डाका पड़े। उसने राजपूत बाला को सलीम की प्रधान बेगम बना दिया था, और तय किया था कि उसीका पुत्र बादशाह होगा। उसका दृष्टिकोण शुद्ध राजनीतिक था। उसे सलीम के प्रेम को जानकर चिन्ता हुई। उसने तत्काल शेरअफगन के साथ मेहरुन्निसा की निस्वत पक्की करा दी।

यह खबर सलीम के लिए मौत से बढ़कर थी। उसने पिता के कदमों में गिरकर निवेदन किया कि वह मेहर की शादी उससे करा दे। सलीम ने कहा—बिना मेहर के मैं ज़िन्दा न रहूंगा। सलीम अकबर का बड़ी साध का बेटा था। फिर भी बादशाह ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। उसने अपने वज़ीर अबुल-फज़ल से सलाह ली। मेहरुन्निसा का निकाह शेरअफगन के साथ कर दिया गया। और शेर-अफगन को बर्दवान का हाकिमे-आला बनाकर बंगाल भेज दिया गया।

सलीम छटपटाकर रह गया। उसी क्षण से वह अपने प्रतिद्वंद्वी का जानी-दुश्मन बन गया। अपने पिता बादशाह अकबर के प्रति भी वह उद्धत और क्रुद्ध हो उठा। उसने पिता से विद्रोह किया। जिस समय अकबर दक्षिण में असीरगढ़ के किले का मुहासिरा कर रहा था, सलीम ने इलाहाबाद में अपने को बादशाह घोषित कर दिया। इस सलीम की आयु तैंतीस बरस की थी।

अकबर का साम्राज्य अब सुसंगठित हो चुका था, और साम्राज्य की वार्षिक आय साढ़े सत्रह करोड़ रुपयों के लगभग थी। जिस अबुलफज़ल ने अकबर को मेहर की शादी शेरअफगन से करने की सलाह दी थी, उसे भी सलीम ने ओरछा के राजा बीरसिंह बुंदेला के हाथ से मरवा डाला। अकबर इन सब बातों से सलीम पर एकदम अप्रसन्न हो गया। बादशाह का एक पुत्र मुराद अत्यधिक शराब पीने से पहले ही मर चुका था और अब दूसरा दानियाल भी शराब पीने से मर गया।

तब बेगमात के कहने-सुनने से उसने सलीम को क्षमा कर दिया। अब वही उसका इकलौता उत्तराधिकारी था। यद्यपि वह भी अपने भाइयों के समान शराबी था, परन्तु उसकी आयु शेष थी, उसके भाग्य में बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक घटना का केन्द्र होना बदा था।

बाहशाह अकबर और अधिक दिन जीवित न रहे। सलीम के विद्रोह के तीन वर्ष बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। जिस समय सलीम ने सिंहासन पर आरोहण किया, उसकी आयु छत्तीस बरस की थी। वह एक सुन्दर, छरहरे बदन और लम्बे कद का आकर्षक व्यक्ति था। रंग उसका गोरा था। वह गलमुच्छे रखता था, और आंखें उसकी तेज़ और चमकदार थीं। शिष्टाचार वह खूब जानता था, स्वभाव का सरल, और वातचीत में पटु था। दरबार के सब लोगों को उसने अपने व्यवहार से प्रसन्न कर लिया। अपने विरोधियों को भी उसने क्षमा कर दिया। उसकी न्यायप्रियता की शीघ्र ही लोगों पर धाक बैठ गई।

जहांगीर को अब सब कुछ मिल गया था, पर मेहरुन्निसा का कांटा उसके कलेजे में अब भी कसक रहा था। मेहरुन्निसा को वह नहीं भूल सका था। उसके रंगमहल में अनगिनत सुन्दरियां थीं, पर वह चौदह बरस की अल्हड़ मेहर, जिसका अकस्मात् ही दुपट्टा उड़ गया था, और क्षण-भर के लिए जिसके यौवन का सम्पूर्ण खज़ाना प्रकट हो गया था, उसके दिल से दूर नहीं हो सकी थी।

शेरअफगन अब बर्दवान में एक बहुत बड़े बाग में आलीशान महल बनवाकर रह रहा था। वह अपनी प्रिय पत्नी के दुर्लभ, अछूते यौवन का आनन्द दामोदर की तरंगित धाराओं के समान ले रहा था। दोनों सुखी थे, प्रसन्न थे। मेहर के हृदय में भी सलीम की वह नज़र खुब गई थी। वह कभी-कभी सलीम की उस चितवन के सम्बन्ध में सोचा करती थी। उसे यह भी ज्ञात था कि सलीम उससे विवाह करना चाहता था। वह कभी-कभी यह भी सोचती थी कि यदि ऐसा होता, तो वह एक दिन हिन्दुस्तान की मलिका बन जाती। परन्तु ये सब बातें धुंधली होती जा रही थीं। शेरअफगन का प्यार उसे झकझोर रहा था। वह अपने बर्दवान के महल में आनन्दित थी। अपने सौभाग्य पर उसे गर्व था। इसी समय उसे एक पुत्री की उपलब्धि हुई।

इस समय बंगाल राजविद्रोह का अड्डा बना हुआ था। बंगाल का सूबेदार इस समय कुतुबुद्दीन था। उसके पास एक गुप्त शाही फरमान आया। कुतुबुद्दीन ने शेर-

अफगन को अपने दरबार में बुलाकर कहा—तुमपर राजविद्रोह का अभियोग है। उसने शेरअफगन के साथ कुछ ऐसा अशिष्ट व्यवहार किया कि शेरअफगन क्रुद्ध हो उठा। दोनों आपस में तलवार लेकर जुट गए, और दोनों ही लड़कर मर गए। इसके बाद ही शेरअफगन की बेवा मेहरुन्निसा को आगरा ले जाने के लिए शाही फौज आई, और उसे जाना ही पड़ा।

तीन बरस बीत गए। इस बीच मानसिक द्वन्द्व ने दोनों को आन्दोलित किया। बादशाह बड़ी सावधानी से उसकी गतिविधि को देखता, और अप्रकट रूप से इस बात की व्यवस्था रखता कि उसे कोई कष्ट न होने पाए। सच पूछा जाए तो मेह-रुन्निसा के कसीदों और चित्रों की इतनी प्रशंसा तथा अच्छे दामों में उनकी बिक्री होना भी बादशाह के संकेतों पर ही था।

मेहर की दुर्दमनीय महत्त्वाकांक्षा कह रही थी कि वह इस प्रकार कसीदे वगैरा बनाने के लिए पैदा नहीं हुई है। तभी वृद्धा की भविष्यवाणी से उसकी आशाओं को पर लग गए। उसके बाद ही वह अमीरवाली घटना हुई। बादशाह के कानों तक इसकी खबर पहुंची। मेहर ने सुना कि बादशाह ने उसके साहस की प्रशंसा की है। सुनकर उसके होंठ फड़कने लगे, और उसे एक नई बेचैनी सताने लगी, जैसे वह किसी आनेवाले की प्रतीक्षा कर रही हो। परन्तु वह आनेवाला कौन था, जिसके पैरों की आहट के लिए उसके कान चौकन्ने हो रहे थे?…

ईद का दिन था, संध्या का समय। रंगमहल में जश्न मनाया जा रहा था। मेहरुन्निसा अपने कक्ष में कालीन पर बैठी, अस्तंगत सूर्य की नज़रबाग में पड़ती आड़ी-तिरछी सुनहरी किरणों को निहार रही थी। उसकी बांदियां लक-दक पोशाक पहने, उसके आसपास खड़ी थीं।

अचानक बांदियों के मुंह से चीख निकल गई। मेहर समझ गई कि कक्ष में कोई आया है। उसने आंख उठाकर देखा—दीनो-दुनिया के मालिक शहनशाह जहांगीर थे।

बादशाह उसके रूप को देखकर धक् रह गया। अब वह उसकी पुरानी परिचिता अस्फुट कली न थी, उसका यौवन भरपूर निखरा हुआ था। वह ऐसा प्रखर था कि उसकी चकाचौंध से आंखें झंप जाती थीं। मेहर ने उस समय कोई खास पोशाक नहीं पहन रखी थी। वह मस्लिन की सफेद सादा पोशाक पहने बैठी थी। किन्तु उसमें से छनकर भी उसका रूप अपनी अद्‌भुत छटा दिखा रहा था। कदाचित् रत्न-

जटित पोशाक में वह इतनी सुन्दर न प्रतीत होती।

बादशाह को देखते ही मेहर हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। और उसने अपनी आंखें ज़मीन में गड़ा दीं। लाज की ललाई उसके सुन्दर मुंह पर फैल गई।

बादशाह दो कदम आगे बढ़े। उन्होंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—स्त्रियों में सूर्य के समान मेहर इस तरह बांदियों की पोशाक में क्यों है?

चारों ओर रंग-बिरंगी जड़ाऊ पोशाकें पहने बांदियां खड़ी थीं।

मेहर ने सीने पर हाथ रखकर, और सिर झुकाकर, जवाब दिया—बांदियां उसकी मर्ज़ी के अनुकूल रहती हैं, जिसकी सेवा में वे नियुक्त होती हैं। ये सब मेरी बांदियां हैं, और अपनी हैसियत के अनुसार मैं इन्हें सजाती-पहनाती हूं। लेकिन शहनशाह, मैं जिनकी बांदी हूं, वे मुझे जिस तरह रखना चाहते हैं, मैं उसी तरह रहने को मजबूर हूं!

'मेहर, शहनशाहे-हिन्द, तेरे रूप का पुजारी यह जहांगीर तेरे कदमों पर अपने प्रेम के फूल चढ़ाता है। क्या तुझे जहांगीर की सुलताना बनने में कोई उज्र है?'

मेहर ने नज़र उठाकर क्षण-भर बादशाह की ओर देखा, और फिर नज़र नीची करके कहा—ऐ शहनशाह, आपके जामे के बटन में जो लाल लगा हुआ है, उससे ऐसा लगता है कि जैसे किसी पीड़ित का खून शहनशाह से इन्साफ चाहता है!

बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़ा उसे निहारता रहा। फिर उसने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—ऐ शहनशाहे-हिन्द की सुलताना, अब से तू ही इन्साफ की तराजू को संभाल। जहांगीर तो सिर्फ तेरी मुहब्बत का भिखारी है।

और उसने उसे खींचकर हृदय से लगा लिया। मेहर ने बादशाह की छाती को आंसुओं से तर कर दिया।

मेहतर की बेटी का भात

बादशाह के लिए ऊंच-नीच सब एक समान है। विवाह, शादी के अवसर पर लड़केवाला लड़कीवाले से बड़ा हो जाता है। दूल्हा अपने को सारी बस्ती का मेहमान समझता है। इसी भाव-व्यंजना का चरित्र-चित्रण इस कहानी में हुआ है।

इस समय जहां हापुड़ का रेलवे स्टेशन है, वहां उन दिनों एक छोटा-सा गांव बहादुरपुरा था। यह गांव बहादुरशाह को, जब वे शाहज़ादे थे, पानदान के खर्चे के लिए दिया गया था। उसकी पूरी मालगुज़ारी उन्हींको मिलती थी। बादशाह होने के बाद भी वह उन्हींकी व्यक्तिगत जागीर रहा। और उसकी मालगुज़ारी उन्हींको मिलती रही।

रूपराम चौधरी इस गांव के ज़मींदार और नम्बरदार थे। हर तीसरे साल वे मालगुज़ारी बादशाह के हुज़ूर में जाकर अदा कर देते थे। इस अवसर पर वे ज़रा धूम-धाम, बाजे-गाजे के साथ जाते थे। साथ में दस-बीस आदमी भी होते थे। बादशाह दिल्ली में सबका आतिथ्य-सत्कार करते थे। रूपराम चौधरी थे कांटे के आदमी। आसपास के गांवों में उनकी बड़ी धाक थी। वे एक हौसले के आदमी थे—यद्यपि छोटे ही ज़मींदार थे—पर इज़्ज़त उनकी बहुत थी।

मालगुज़ारी अदा करने का समय आ गया और चौधरी मालगुज़ारी की रकम साथ लेकर धूम-धाम से दिल्ली चले। साथ में रथ, मझोली, फिरक, घोड़े, प्यादे-सवार, सब मिलकर कोई बीस-पच्चीस आदमियों का हजूम। आगे-आगे ऊंट पर धौंसा बजता जाता था। उन दिनों रईस लोग इसी तरह सफर किया करते थे। अब तो दिल्ली और हापुड़ डेढ़-दो घण्टे का ही सफर है। उन दिनों यह सफर तीन मंज़िल में पूरा होता था।

चौधरी की सवारी शहादरा तक आ पहुंची। शाम का झुटपुटा हो चला था। उन दिनों शहादरा एक सैनिक उपनिवेश था, जो जमुना के पूर्वी तट की रक्षा की

दृष्टि से बसाया गया था। दैव-संयोग की बात कि शहादरा के किसी मेहतर की लड़की की उसी दिन शादी हो रही थी और भातई की प्रतीक्षा की जा रही थी। भातई लोग इसी दिशा से आनेवाले थे, जिधर से चौधरी की सवारी आ रही थी। देर काफी हो रही थी, और भातई आ नहीं रहे थे। बिना भात चढ़ाए शादी रुक रही थी। जब चौधरी की सवारी बाजा बजाते शहादरा के सिवाने पर पहुंची तो बेटीवाले मेहतर ने समझा कि भातई आ गए। उसने आगे बढ़कर चौधरी की अगवानी की और आदरपूर्वक डेरा दिया। सन्ध्या के अंधकार में चौधरी भी वास्तविक स्थिति न भांप सके। उन्होंने यही समझा कि कोई बिचारा गरीब आदमी है। हमको बड़ा आदमी समझकर सत्कार करता है। उसका मन अवश्य रखना चाहिए, इस विचार से चौधरी ने मुकाम कर लिया।

परन्तु बहुत देर हो जाने पर भी खाने-पीने की किसीने न पूछी। हकीकत यह है कि कायदे के अनुसार भातई जब तक भात देने की रस्म अदा नहीं कर देते, तब तक उन्हें भोजन नहीं दिया जाता। अब दिल्लगी देखिए कि मेहतर तो सोच रहा है कि भात देने में क्यों देर की जा रही है। भात की रस्म अदा हो जाए तो खाना-पीना हो। और चौधरी समझ रहे हैं—अजब तमाशा है, जब तो इतनी आवभगत से रोका, अब कोई खाने को भी नहीं पूछता।

काफी रात बीत गई और तब तक एकाएक असली भातई लोग आ गए। मेहतर भौंचक रह गया। भातई ये हैं—तो वे लोग कौन हैं। और तब उसे ज्ञात हुआ कि वे भातई नहीं, बहादुरपुरा के चौधरी हैं।

मेहतर की फूंक सरक गई। वह हाथ जोड़े आकर चौधरी के कदमों में गिर गया और कहने लगा—माई-बाप, बड़ी चूक हुई, बड़ी बेअदबी हुई। मैंने आपको भातई समझ लिया।

सारी बात सुनकर चौधरी रूपराम खिलखिलाकर हंस पड़े। मेहतर को उठाकर गले से लगा लिया और कहा—बस, अब तो हम तुम्हारे भातई बन ही गए। फिक्र न करो—इतना कहकर मालगुज़ारी के लिए लाया हुआ सारा रुपया भात में दे दिया। चौधरी रूपराम की दरियादिली और उदारता की यह घटना, जिसने सुनी, दांतों तले उंगली दबाई। सर्वत्र चौधरी की बड़ाई और जयजयकार होने लगा। उस रात चौधरी ने वहीं मुकाम किया।

दूसरे दिन नावों का पुल पार करके चौधरी लालकिले पहुंचे और बादशाह को दीवाने-आम में जाकर मुजरा किया, कोर्निश की। बादशाह ने नज़रे-इनायत चौधरी पर डाली। कुशल-प्रश्न पूछा। और शाही मेहमानखाने में डेरा दिया। मोदी के नाम परवाना जारी कर दिया कि खाने-पीने की सब रसद चौधरी को मिल जाए। परन्तु चौधरी ने हाथ बांधकर कहा—जहांपनाह, मुझ सेवक को मुहलत मिलनी चाहिए।

'कैसी मुहलत ?'

'मालगुज़ारी की रकम घर से लाने की मुहलत ?'

'इसके क्या माने ? क्या तुम मालगुज़ारी की रकम लेकर घर से नहीं चले थे ?'

'घर से तो रकम लेकर ही चला था हुज़ूर।'

'तो क्या रास्ते में डाका पड़ा ? रकम लुट गई ?'

'जी नहीं, लुट नहीं गई। खर्च हो गई।'

बादशाह की त्यौरियां चढ़ गईं। उन्होंने समझा बेअदबी की जा रही है। पर चौधरी रूपराम ने दस्त-बस्ता सारी घटना बादशाह के रूबरू अर्ज़ कर दी।

सुनकर बादशाह कुछ देर चुप खामोश बैठे रहे। फिर उन्होंने गीली आंखों से चौधरी की ओर देखकर कहा :

'मालगुज़ारी तो तुम उसी वक्त अदाकर चुके चौधरी, जब घर से रकम लेकर चले। अब वह रकम हमारी थी। और मेहतर की बेटी को भात तुम्हारी ओर से नहीं, हमारी ओर से अदा किया गया है।—इसके बाद ही बादशाह ने मीर मुन्शी को बुलाकर हुक्म दिया—चन्द जड़ाऊ ज़ेवर, कपड़े और कुछ नकदी और वहां पहुंचा दो और कह दो कि यह शाही भात बादशाह ने तुम्हारी बेटी को दिया है।

सिंहगढ़-विजय

वीर शिवाजी और उनके सहयोगी तानाजी की वीरता की उत्कृष्ट कहानी। लेखक की यह कहानी बहुत प्रसिद्ध है।

रात बहुत अंधेरी थी। रास्ता पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ था। आकाश पर बदली छाई हुई थी, और अभी कुछ देर पूर्व ज़ोर की वर्षा हो चुकी थी। जब ज़ोर की हवा से वृक्ष और बड़ी-बड़ी घास सांय-सांय करती थी, तब जंगल का सन्नाटा और भी भयानक मालूम होता था।

इस समय उस जंगल में दो घुड़सवार बढ़े चले जा रहे थे। दोनों के घोड़े खूब मज़बूत थे, पर वे पसीने से लथपथ थे। घोड़े पग-पग पर ठोंकरें खाते थे, पर उन्हें ऐसे बीहड़ रास्तों में, ऐसे संकट के समय अपने स्वामी को ले जाने का अभ्यास था। सवार भी असाधारण धैर्यवान और वीर पुरुष थे। वे चुपचाप चल रहे थे। घोड़ों की टापों और उनकी प्रगति से कमर में लटकती हुई उनकी तलवारों और बर्छों की खरखराहट उस सन्नाटे के आलम में एक भयपूर्ण रव उत्पन्न करती थी।

हठात् घोड़े ने एक ठोकर खाई, और एक मंद आर्तनाद अग्रगामी सवार के कान में पड़ा। उसने घोड़े की बाग खींचते हुए कहा—धांधूजी ?

'महाराज !' पीछेवाला सवार क्षण-भर में अग्रगामी सवार के सन्निकट आ गया, और उसने बिजली की भांति अपनी तलवार खींच ली। अग्रगामी सवार का घोड़ा खड़ा हो गया था। उसने भी तलवार नंगी करके कहा—देखो, क्या है ? घोड़े ने ठोकर खाई है, यह आर्तनाद कैसा है ?

धांधूजी घोड़े से उतर पड़े, उन्होंने झुककर देखा और कहा—महाराज, एक मनुष्य है।

'क्या घायल है ?'

'खून में लथपथ प्रतीत होता है।'

'जीवित है ?'

इसी समय पड़े हुए व्यक्ति ने फिर आर्तनाद किया। महाराज उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही घोड़े से कूद पड़े। उन्होंने धांधूजी को प्रकाश करने का आदेश दिया, और स्वयं मार्ग में पड़े व्यक्ति के सिरहाने घुटनों के बल बैठ गए। उन्होंने उसका सिर गोद में रख लिया, नाड़ी देखी, हृदय का स्पंदन देखा और कहा—जीवित है, पर मालूम होता है, बहुत घाव खाए हैं, रक्त बहुत निकल गया है।

धांधूजी ने तब तक चकमक पत्थर से अबरख की बनी चोर-लालटेन जला ली थी। वे उसे घायल के मुख के पास लाए। देखकर कहा—अरे, बड़ा अल्प-वयस्क बालक है!

'परन्तु अंग में अनेक घाव हैं, मालूम होता है वीरतापूर्वक युद्ध किया है।'

मुमूर्षु ने प्रकाश और मनुष्य-मूर्ति को देखा, और जल का संकेत किया। महाराज ने स्वयं उसके मुख में जल डाला। जल पीकर उसने आंखें खोलीं, और क्षीण स्वर में कहा—आप कौन हैं प्राणरक्षक?—और फिर कुछ ठहरकर कहा—आप चाहे जो भी हों, यह प्राण और शरीर आपके हुए।—उसके होंठों पर मंद हास्य की रेखा आई।

महाराज ने कहा—धांधूजी, इसका रक्त बन्द होना चाहिए। देखिए, सिर से अब तक रक्त बह रहा है। और, पार्श्व का यह घाव भी भयानक है—इसके बाद दोनों व्यक्तियों ने उसके सभी घाव बांधकर उसे स्वस्थ किया। फिर वे सलाह करने लगे—अब इसे कहां ले जाया जाए? समय कम है और हमारा गंतव्य पथ लम्बा।

युवक ने स्वयं कहा—यदि मुझे घोड़े पर बैठा दिया जाए, तो मैं मजे में चल सकूंगा।

'क्या निकट कोई गांव है?'

'है, पर एक कोस के लगभग है।'

'वहां कोई मित्र है?'

'हैं। वहां मेरी बहिन का घर था, बहनोई हैं।' युवक का स्वर कम्पित था।

महाराज ने कहा—बहिन नहीं है?

'नहीं।' युवक का कंठ अवरुद्ध हुआ। उसके नेत्रों से झरझर आंसू बहने लगे। वह फिर बोला—उसे आज तीसरे पहर विदा कराके घर ले आ रहा था। बह-

नोई उस बाग तक साथ ग्राए थे। उन्हें लौटते देर न हुई, ज्योंही हम लोग इस खेड़े के निकट पहुंचे, कोई पांच सौ यवन सैनिकों ने धावा बोल दिया। मेरे साथ केवल ग्राठ ग्रादमी थे। शायद सभी मारे गए। मैंने यथासाध्य विरोध किया, पर कुछ न कर सका। वे बहिन का डोला ले गए। मैंने मूर्छित होने से प्रथम ग्रच्छी तरह देखा, पर मैं तलवार पकड़ ही न सका, फिर मेरी तलवार टूट भी गई थी।—युवक उद्वेग से मूर्छित हो गया।

महाराज ने होंठ चबाया। एक बार उन्होंने ग्रपने सिंह के समान नेत्रों से उस चोर-लालटेन के प्रकाश में चारों ग्रोर देखा—टूटी तलवार, वर्छा, दो-चार लाशें ग्रौर रक्त की धार। उन्होंने युवक से कहा—तुम्हारे घर पर कौन है ?

'वृद्धा विधवा माता।'

'गांव कौन है ?'

'मौरावां।'

'दूर है ?'

'ग्राठ कोस होगा।'

'तुम्हारा नाम ?'

'तानाजी।'

'घोड़े पर चढ़ सकोगे ?'

'जी।'

महाराज ग्रौर धांधूजी ने युवक को घोड़े पर लादा। धांधूजी उसके पीछे बठे, ग्रौर महाराज भी ग्रपने घोड़े पर सवार हुए। इस बार ये यात्री ग्रपना पथ छोड़कर युवक के ग्रादेशानुसार गांव की ग्रोर बढ़े, पगडंडी सकरी ग्रौर बहुत खराब थी। जगह-जगह पानी भरा था, पर जानवर सधे हुए ग्रौर बहुत ग्रसील थे। गांव निकट ग्रा गया। युवक के बताए मकान के द्वार पर जाकर धांधूजी ने थपकी दी। एक युवक ने ग्राकर द्वार खोला। धांधूजी ने उसकी सहायता से घायल तानाजी को उतारकर घर में पहुंचाया। संक्षेप में दुर्घटना का हाल सुनकर गृह-पति मर्माहत हुग्रा। धांधूजी ने ग्रवकाश न देखकर कहा—तुम लोग परसों इसी समय हमारे यहां ग्राने की प्रतीक्षा करना ग्रौर इस घटना का कहीं भी ज़िक्र न करना।

तानाजी ने व्यग्र होकर कहा—महोदय, ग्रापका परिचय ? मैं किसके प्रति

कृतज्ञ होऊं ?

'छत्रपति हिन्दू-कुल-सूर्य महाराजाधिराज शिवाजी के प्रति।'

धांधूजी ने अब विलम्ब न किया, वे लपककर घोड़े पर चढ़े, और दोनों असाधारण सवार उस अंधकार में विलीन हो गए।

पूना से पश्चिम ओर, विंध्याचल-शृंग के एक दुरूह शिखर पर एक अति प्राचीन, शायद बौद्धकालीन गुफा है। उसके निकट घने वृक्षों का झुरमुट है। एक अमृत के समान मीठे पानी का झरना भी है। इसी गुफा के सम्मुख कोई एक तीर के अंतर पर एक विस्तृत मैदान है। उसे खास तौर पर साफ और समतल बनाया गया है।

वहां एक बलिष्ठ युवक बर्छा फेंकने का अभ्यास कर रहा था। युवक गौर-वर्ण, सुन्दर, ठिगना और लोहे के समान ठोस था। उसने अपने सुगठित हाथों में बर्छा उठाया और तौलकर एक वृक्ष को लक्ष्य करके फेंका। बर्छा वृक्ष को चीरता हुआ पार निकल गया। गम्भीर स्वर में किसीने कहा—ठीक नहीं हुआ, तुम्हारा लक्ष्य चलित हो गया।

युवक ने माथे का पसीना पोंछकर पीछे फिरकर देखा। एक जटिल संन्यासी तीव्र दृष्टि से युवक को ताक रहे थे। युवक ने सिर झुका लिया। संन्यासी अग्रसर हुए। उन्होंने बर्छे को क्षण-भर तोला, और विद्युत-वेग से फेंक दिया। बर्छा स्थूल वृक्ष को चीरता हुआ क्षण-भर ही में धरती में घुस गया। उत्साहित होकर युवक ने एक ही झटके में बर्छा उखाड़ा, और महावेग से फेंका। इस बार बर्छा वृक्ष को चीरकर धरती में घुस गया। संन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा—हां, यह कुछ हुआ। वत्स, मैं तो वृद्ध हुआ, युवक-सा पौरुष कहां ? हां, तुम अभी और भी स्फूर्ति उत्पन्न करो।

युवक ने गुरु के चरणों में प्रणाम किया, और दोनों ने तलवारें निकाल लीं। प्रथम मंद, फिर वेग और उसके बाद प्रचण्ड गति से दोनों गुरु-शिष्य तलवारें चलाने लगे, मानो बिजलियां टकरा रही हों। दोनों महाप्राण पुरुष पसीने से लथपथ हो गए। श्वास चढ़ गया, परन्तु उनका युद्ध-वेग कम न हुआ। दोनों ही चीते की भांति उछल-उछलकर वार कर रहे थे। तलवारें झनझना रही थीं। गुरु ने ललकारकर कहा—बेटे, लो, एक सच्चा वार तो करो। देखें शत्रु का तुम किस भांति हनन

करोगे।

युवक ने आवेश में आकर संन्यासी के मोढ़े पर एक भरपूर वार किया। संन्यासी ने कतराकर एक जनेवा का हाथ जो दिया, तो युवक की तलवार झन्ना-कर दस हाथ दूर जा पड़ी। संन्यासी ने युवक के कंठ पर तलवार रखकर कहा—वत्स, बस यही तुम्हारा कौशल है? इस समय शत्रु क्या तुम्हें जीवित छोड़ता?

युवक ने लज्जा से लाल होकर गुरु के चरण छुए, और फिर तलवार उठा ली। इस बार उसने अंधाधुन्ध वार किए, पर संन्यासी मानो विदेह पुरुष थे। उनका शरीर मानो दैव-कवच से रक्षित था। वह वार बचाते, युवक को सावधान करते और तत्काल उसके शरीर पर तलवार छुवा देते थे। अंत में युवक का दम बिलकुल फूल गया। उसने तलवार गुरु के चरणों में रख दी, और स्वयं भी लोट गया। गुरु ने उसे छाती से लगाया और कहा—वत्स, आज ही श्रावणी पूर्णिमा है, महाराज अभी आते होंगे। आज तुम्हें इस संन्यासी को त्यागना होगा। और जिस पवित्र व्रत को तुमने लिया है, उसमें अग्रसर होना होगा। यद्यपि मैं जैसा चाहता था, वैसा तो नहीं, पर फिर भी तुम पृथ्वी पर अजेय योद्धा हो। तुम्हारी तलवार और बर्छे के सम्मुख कोई वीर स्थिर नहीं रह सकता।

युवक फिर गुरु-चरणों में लोट गया। उसने कहा—प्रभो, अभी मुझे और कुछ सेवा करने दीजिए।

'नहीं वत्स, अभी तुम्हें बहुत कार्य करना है, उसकी साधना ही मेरी चरण-सेवा है।'

हठात् वज्र-ध्वनि हुई—छत्रपति महाराज शिवाजी की जय!

दोनों ने देखा, महाराज घोड़े से उतर रहे हैं। उन्होंने धीरे-धीरे आकर संन्यासी की चरण-रज ली, और संन्यासी ने उन्हें उठाकर आशीर्वाद दिया। युवक ने आकर महाराज के सम्मुख घुटनों के बल बैठकर प्रणाम किया। महाराज ने कहा—युवक, आज वही श्रावणी पूर्णिमा है।

'जी।'

'आज उस घटना को तीन वर्ष हो गए, जब तुम्हें घायल करके शत्रु तुम्हारी बहिन को हरण करके ले गए थे, तुम्हें स्मरण है?'

'हां महाराज, और आपने मुझे जीवन-दान दिया था, मैंने यह प्राण और शरीर आपकी भेंट किए थे।'

'और तुमने प्रतिशोध की प्रतिज्ञा भी की थी ?'

'जी हां।'

'मैंने तुम्हें गुरुजी की सेवा में तीन वर्ष के लिए इसलिए रखा था कि तुम शरीर, आत्मा और भावना से गम्भीर एवं दृढ़ बनो, तामसिक क्रोध का नाश करो, सात्विक तेज की ज्वाला से प्रज्वलित होओ।'

'हां महाराज, गुरु-कृपा से मैंने आत्मशुद्धि की है।'

'और अब तुम वैयक्तिक स्वार्थ के दास तो नहीं ?'

'नहीं प्रभो।'

'प्रतिशोध लोगे ?'

'अवश्य।'

'अपनी बहिन का ?'

'नहीं, एक हिन्दू अबला के स्वतन्त्रता-हरण का, मर्यादारहित पाप का।'

'और तुममें वह शक्ति है ?'

'गुरु-चरणों की कृपा और महाराज की छत्रछाया में मैं उसे प्राप्त करूंगा।'

'तुम्हारी तलवार में धार है ?'

'है।'

'और तुम्हारी कलाई में उसे धारण करने की शक्ति ?'

'है।'

'समय की प्रतीक्षा का धैर्य ?'

'प्रतीक्षा का धैर्य ?' युवक ने अधीर होकर कहा।

'हां, धैर्य !' महाराज ने कठोर स्वर में कहा।

युवक का मस्तक झुक गया, और उसके नेत्रों से आंसुओं की धारा बह चली। उसने कहा—महाराज, धैर्य तो नहीं है।—वह महाराज के चरणों में गिर गया।

महाराज ने उठाकर उसे छाती से लगाया। वे संन्यासी की ओर देखकर हंस दिए। उन्होंने कहा—गुरुजी की क्या आज्ञा है ?

'ताना तैयार है, मैंने उसे गुरु-दीक्षा दे दी है।' फिर कहा—वत्स !

युवक ने गुरु की ओर आंखें उठाईं। वे अब भी आंसुओं से तर थीं।

'शांत हो, देखो, सदैव कर्तव्य समझकर कार्य करना, फल की चिंतना न करना।' युवक चुप रहा।

'यदि फल की आकांक्षा करोगे, तो धैर्य से च्युत हो जाओगे और कदाचित् कर्त्तव्य से भी।'

'प्रभो, मैं अपनी भूल समझ गया।'

'जाओ पुत्र, महाराज की सेवा में रहो, विजयी बनो। भारत के दुर्भाग्य को नष्ट करो। नवीन जीवन, नवीन युग का प्रवर्तन करो। धर्म, नीति, मर्यादा और सामाजिक स्वातन्त्र्य के लिए प्राण और शरीर एवं स्वार्थों का विसर्जन करो।'

युवक ने गुरु-चरणों में मस्तक नवाया। संन्यासी के नेत्रों में आंसू आ गए। उन्होंने कहा—वत्स जाओ, जाओ। संन्यासी को अधिक आप्यायित न करो। वीतराग संन्यासी किसीके नहीं।

इसके बाद उन्होंने महाराज से एक संकेत किया। महाराज संन्यासी को अभिवादन कर घोड़े पर चढ़े। एक घोड़े पर युवक चढ़ा, और धीरे-धीरे वे उस पर्वत-शृंग से उतर चले।

संन्यासी शिलाखंड की भांति अचल रहकर उन्हें देखते रहे, जब तक कि वे आंख से ओझल नहीं हो गए।

ग्राम में बड़ा कोलाहल था। बालक धूम मचा रहे थे। और, विविध वस्त्र पहने स्त्री-पुरुष काम-काज में व्यस्त इधर से उधर दौड़-धूप कर रहे थे। तानाजी का विवाह था। द्वार पर नौबत झर रही थी। आगतजनों की काफी भीड़ थी।

सन्ध्या होने में अभी विलंब था। एक श्रमिक, शिथिल सांड़नी-सवार ने नगर में प्रवेश किया। थोड़े-से बालक कौतूहल-वश उसके पीछे हो लिए। ग्राम के चौराहे पर जाकर उसने अपनी बगल से छोटी-सी तुरही निकालकर फूंकी। देखते-देखते दस-बीस नर-नारी और बहुत-से बालक एकत्र हो गए। सवार ने एक वृद्ध को लक्ष्य करके कहा—मुझे तानाजी के मकान पर अभी पहुंचना है।

तुरन्त दस-पांच आदमी साथ हो लिए। सम्मुख ही तानाजी का घर था। वहां पहुंच कर उसने फिर तुरही बजाई। कोलाहल बन्द हो गया। सभी व्यग्र होकर आगंतुक को देखने लगे। उसने ज़रा उच्च स्वर से पुकारकर कहा—छत्रपति शिवाजी महाराज की जय हो! मैं तानाजी के पास महाराज का अत्यावश्यक सन्देश लेकर आया हूं। अभी तत्क्षण तानाजी से मुलाकात न होने से महाराज विपत्ति में पड़ेंगे।—उपस्थित जनमंडल ने चिल्लाकर कहा—छत्रपति महाराज की जय!

हल्दी से शरीर लपेटे, ब्याह का कंगना हाथ में बांधे तानाजी बाहर निकल आए। धावन ने उन्हें पत्र दिया। पत्र पढ़कर तानाजी क्षण-भर को विचलित हुए। इसके बाद ही उन्होंने अग्निमय नेत्रों से उपस्थित जनसमूह को देखा। वे उछल-कर एक ऊंचे स्थान पर चढ़ गए, और गम्भीर, उच्च स्वर से कहना प्रारम्भ किया —सज्जनो! महावीर छत्रपति महाराज ने मुझे इसी क्षण बुलाया है। बीजापुर-शाह महाराज पर चढ़ दौड़े हैं। यह शरीर और प्राण महाराज का है। फिर बहिन के प्रतिशोध का भी यही महायोग है। मैं इसी क्षण जाऊंगा। आप लोग कल प्रातः-काल ही प्रस्थान करें। विवाह-समारोह अनिश्चित समय के लिए स्थगित किया गया।

तानाजी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए चीते की भांति उछलकर कूद पड़े, और घर में चले गए। कुछ ही क्षण बाद वह अपने प्यारे बर्छे और विशाल तलवार के साथ सज्जित होकर घोड़े पर सवार हुए। विवाह का आनन्द-समारोह स्तब्ध हो गया। पिता और गुरुजन को प्रणाम कर उन्होंने बढ़ते हुए संध्या के अंधकार में डूबते हुए सूर्य को लक्ष्य कर उन दुर्गम पर्वत-उपत्यकाओं में घोड़ा छोड़ दिया।

'महाराज की जय हो, मेरी एक विनती है।'

'क्या कहते हो?'

'बीजापुर की सेना परसों अवश्य ही दुर्ग पर आक्रमण करेगी।'

'सो तो सुन चुका हूं।'

'दुर्ग की पूरी मरम्मत नहीं हो पाई है, ऐसी दशा में वह आक्रमण न सह सकेगा।'

'मालूम तो ऐसा ही होता है।'

'परन्तु कल सन्ध्या तक दुर्ग बिलकुल सुरक्षित हो जाएगा।'

'यह तो अच्छी बात है।'

'परन्तु महाराज, अपराध क्षमा हो।'

'कहो।'

'एक निवेदन है।'

'क्या?'

'केवल एक-एक मुट्ठी चना मेरे सैनिकों और मज़दूरों को मिल जाए, तो फिर

वे कल संध्या तक और कुछ नहीं चाहते।'

'यह तो तुम जानते ही हो, वह मैं न दे सकूंगा।'

तानाजी चुप रहे। महाराज भी चुप हो गए। वे चंचल गति से इधर-उधर घूमने लगे।

एक प्रहरी ने सम्मुख आकर कहा—महाराज, एक फिरंगी दुर्ग-द्वार पर उप-स्थित है, दर्शनों की विनती करता है।

महाराज ने चकित होकर कहा—फिरंगी? वह कहां से आया है?

'सूरत से आ रहा है।'

'साथ में कौन है?'

'दो सवार हैं।'

'क्या चाहता है?'

'महाराज से मुलाकात करना।'

क्षण-भर महाराज ने कुछ सोचा, इसके बाद तानाजी को आज्ञा दी—उसे महल के बाहरी कक्ष में ले आओ।—तानाजी ने 'जो आज्ञा' कहकर प्रस्थान किया, और महाराज भी कुछ सोचते हुए महल की ओर चले गए।

'तुम्हारा देश कौन-सा है?'

'मैं फ्रांस देश का अधिवासी हूं।'

'क्या चाहते हो?'

'महाराज, मैं कुछ हथियार बीजापुर के बादशाह के हाथ बेचने लाया था, परन्तु यहां आने पर आपकी यशोगाथा का विस्तार प्रजा में सुनकर इच्छा होती है, वे हथियार मैं आपको दे दूं, यदि महाराज प्रसन्न हों। मेरे पास पचास तो छोटी विलायती तोपें, पांच हज़ार बंदूकें और इतनी ही तलवारें हैं। सभी हथियार फ्रांस देश के बने हुए हैं। और भी युद्ध-सामग्री है।'

महाराज ने मंद हास्य से पूछा—उनका मूल्य क्या है?

'महाराज को मैं यह सब दस लाख रुपये में दे दूंगा। यद्यपि माल बहुत अधिक मूल्य का है।'

महाराज की दृष्टि विचलित हुई। परन्तु उन्होंने दृढ़, गंभीर स्वर से कहा—मैं कल इसी समय इसका उत्तर दूंगा। अभी तुम विश्राम करो।

फिरंगी चला गया। महाराज अत्यन्त चंचल गति से टहलने लगे। रात्रि का अन्धकार आया। तानाजी मशालें लिए किले की मरम्मत में संलग्न थे। महाराज ने बुलाकर कहा—तानाजी, अब समय आ गया। अभी सारी सेना को तैयार होने का आदेश दे दो।

'जो आज्ञा महाराज, कूच कहां को करना होगा ?'

'इस फिरंगी का जहाज़ लूटना होगा।'

तानाजी आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। क्षण-भर बाद बोले—महाराज की जय हो! यह क्या आज्ञा दे रहे हैं ?

महाराज ने लपककर तानाजी की कलाई कसकर पकड़ ली। उन्होंने कहा—युवक सेनापति! देखते हो, दुर्ग छिन्न-भिन्न और अरक्षित है। सेना के पास न शस्त्र, न घोड़े, और खज़ाने में इनको देने के लिए एक मुट्ठी चना भी नहीं। उधर विजयिनी यवन-सेना बीजापुर से धावा मारकर आ रही है। क्या मैं समय और उपाय रहते पिस मरूं ? ये हथियार भवानी ने मुझे दिए हैं। छोड़ूंगा कैसे ? उस फिरंगी को कैद कर लो। उसे रुपया देकर मुक्त कर दिया जाएगा। जाओ, सेना को अभी तैयार होने का आदेश दो। ठीक दो पहर रात्रि व्यतीत होते ही कूच होगा।

तानाजी कुछ कह न सके। वह सेना को आदेश देने चल दिए।

महाराज बैठे-बैठे ऊंघ रहे थे। पीछे दो शरीररक्षक चुपचाप खड़े थे। तानाजी ने सम्मुख आकर कहा—महाराज की जय हो, कूच का समय हो गया है, सेना तैयार है।

महाराज चौंककर उठ बैठे। वे चमत्कृत थे। उन्होंने कहा—तानाजी ?

'महाराज।'

'मुझे भवानी ने स्वप्न में आदेश दिया है।'

'वह कैसा आदेश है महाराज!'

'यह सम्मुख मन्दिर की पीठ दिखाई पड़ती है न ?'

'हां, महाराज।'

'अभी मैं बैठे-बैठे सो गया, इसमें वह जो मोखा है, उसमें से एक रत्नजटित गहनों से लदा हुआ हाथ निकलकर इसी स्थान की ओर संकेत करने लगा। मैंने स्पष्ट सुना, किसीने कहा—यहीं खोदो।'

'महाराज की क्या आज्ञा है ?'

'भवानी का आदेश अवश्य पूरा होना चाहिए। उस स्थान को खुदवाओ।'

तत्काल चार बेलदारों ने खोदना प्रारम्भ किया। देखते-देखते बड़ा भारी गहरा गड्ढा हो गया। मिट्टी का ढेर लग गया। तानाजी ने ऊबकर कहा—महाराज, अब केवल एक पहर रात्रि रही है।

'ठहरो, क्या नीचे मिट्टी ही मिट्टी है ?

भीतर से एक बेलदार ने चिल्लाकर कहा—महाराज! पत्थर पर कुदाल लगी है।

महाराज ने व्यग्र स्वर में कहा—सावधानी से खोदो।

'महाराज की जय हो! नीचे पटिया है। उसमें एक लोहे का भारी कुण्डा है।'

'उसे बलपूर्वक उखाड़ लो।'

'महाराज, नीचे सीढ़ियां प्रतीत होती हैं। प्रकाश आना चाहिए।'

प्रकाश आया। तानाजी नंगी तलवार लेकर गड्ढे में कूद गए। दो और भी वीर कूद गए। महाराज विकलता से खड़े गंभीर प्रतीक्षा करते रहे।

तानाजी ने बाहर आकर वस्त्रों की धूल झाड़ते हुए अपनी तलवार ऊंची की। और फिर तीन बार खूब ज़ोर से कहा—छत्रपति महाराज शिवाजी की जय! —निकट खड़ी सेना प्रलय-गर्जन की भांति चिल्ला उठी—छत्रपति महाराज की जय!

इसके बाद तानाजी महाराज के निकट खड़े हो गए।

महाराज ने पूछा—भीतर क्या है ?

'भवानी का प्रसाद है।'

'कितना है ?'

'चालीस देगें मुहरों की भरी रखी हैं। चांदी के सिक्के भी इतने ही हैं। एक चांदी की संदूकची में बहुत-से रत्न हैं।'

महाराज एक बार प्रकंपित वाणी से चिल्ला उठे—जय भवानी माता की! —एक बार फिर वज्र-गर्जन हुआ। इसके बाद महाराज ने तानाजी को आदेश दिया—सेना को विश्राम की आज्ञा दी जाए। और सब खज़ाना सुरक्षित रूप से निकालकर तोशाखाने में दाखिल कर दिया जाए।

नगर के गण्य-मान्य जौहरी बैठे थे। वहीं चांदी की संदूकची सम्मुख रखी थी। महाराज ने कहा—इसका क्या मूल्य है ?

'महाराज, इसका मूल्य कूतना असंभव है। यह मोतियों की माला ही अकेली दस लाख से कम मूल्य की नहीं।'

महाराज ने उन्हें विदा करके उस फ्रेंच को बुलाकर कहा—क्या तुम इन रत्नों का कुछ मूल्य अंकित कर सकते हो ?

फिरंगी रत्नों की राशि देखकर दंग रह गया। उसने बड़े ध्यान से मोतियों की माला को देखकर कहा—यदि महाराज की आज्ञा हो, तो मैं इस अकेली माला के बदले में अपने संपूर्ण हथियार दे सकता हूं।

महाराज मुस्कराए। उन्होंने कहा—इसे तुम रख लो, मेरे निकट यह कंकड़-पत्थर के समान है। वे सभी हथियार और सामग्री मुझे आज संध्या से पूर्व ही मिल जानी चाहिए।

'जो आज्ञा महाराज।' फिरंगी चला गया।

चोबदार ने प्रवेश करके कहा—महाराज की जय हो ! एक चर सेवा में उपस्थित हुआ चाहता है।

'उसे अभी भेज दो।'

चर ने महाराज के चरणों में सिर झुकाया।

'तुम हो महाभद्र ?'

'महाराज की जय हो, सेवक इसी क्षण सुसमाचार निवेदन किया चाहता है।'

'क्या समाचार है ?'

'बीजापुर-शाह का खज़ाना इसी मार्ग से जा रहा है।'

'कितना खज़ाना है ?'

'पैंतीस खच्चर मुहरें हैं।'

'सेना कितनी है ?'

'पांच हज़ार।'

'शेष सेना कहां है।'

'वह सिंहगढ़ में महाराज पर आक्रमण की तैयारी में सन्नद्ध है। खज़ाना

पहुंचा, और आक्रमण हुआ।'

'निश्चित रहो, खज़ाना वहां कभी न पहुंचेगा। जाओ तानाजी को भेज दो, और स्वयं यह पता लगाओ कि खज़ाना आज दो पहर रात तक कहां पहुंचेगा।'

'जो आज्ञा।' कहकर चर ने प्रस्थान किया।

क्षण-भर बाद तानाजी ने प्रवेश कर कहा—महाराज की क्या आज्ञा है ?

'क्या वे सब हथियार मिल गए ?'

'जी महाराज !'

'तोपें कैसी हैं ?'

'अत्युत्तम, वे सभी बुर्जियों पर चढ़ा दी गईं।'

'बंदूकें ?'

'सब नई और उत्तम हैं। सब बंदूकें, बर्छे और तलवारें भी बांट दी गई हैं।'

'तुम्हारे पास कुल कितने घुड़सवार हैं ?'

'सिर्फ पांच सौ।'

'शेष।'

'शेष सब अशिक्षित किसानों की भीड़ है। उन्हें शस्त्र अवश्य मिल गए हैं, परन्तु उन्हें चलाना कदाचित् वे नहीं जानते।'

'बहुत ठीक, बीजापुर-शाह का खज़ाना सिंहगढ़ जा रहा है। वह अवश्य वहां न पहुंचकर यहां आना चाहिए। परन्तु उसके साथ पांच हज़ार चुने हुए सवार हैं। तुम अभी पांच सौ सैनिक लेकर उनपर धावा बोल दो।'

'जो आज्ञा।'

'परन्तु युद्ध न करना, जैसे बने, उन्हें आगे बढ़ने में बाधा देना।'

'जो आज्ञा।'

'मैं प्रभात होते-होते समस्त पैदल सेनासहित तुमसे मिल जाऊंगा।'

'जो आज्ञा।'

तानाजी ने तत्काल कूच कर दिया।

दुपहरी की तीव्र सूर्य-किरणों में धूल उड़ती देखकर यवन सैनिक सजग हो गए। उनके सरदार ने ललकारकर व्यूह-रचना की, और खच्चरों को खास इन्तज़ाम में रखकर मोर्चेबन्दी पर डट गए। कूच रोक दिया गया।

तानाजी धुआंधार बढ़े चले आ रहे थे। दोपहर होते-होते ही उन्होंने खज़ाना धर दबाया था। उन्होंने देखा, यवन-दल कूच रोककर, मोर्चा बांधकर युद्ध-सन्नद्ध हो गया है। तानाजी ने भी आक्रमण रोककर वहीं मोर्चा डाल दिया। यवनदल ने देखा—शत्रु जो धावा बोलता हुआ पीछा कर रहा था, आक्रमण न करके वहीं मोर्चा बांधकर रुक गया है। इसके क्या माने? यवन-सेनापति ने स्वयं आक्रमण कर दिया।

यवनसेना को लौटकर धावा करते देख तानाजी ने शीघ्रता से पीछे हटना प्रारम्भ कर दिया। दो-तीन मील तक पीछा करने पर भी जब शत्रु भागता ही चला गया, तब यवन सेनापति ने आक्रमण रोककर सेना की शृंखला बना फिर कूच कर दिया।

परन्तु यह देखते ही तानाजी फिर लौटकर यवन सेना का पीछा करने लगे। यवन सेनापति ने यह देखा। उसने सोचा, डाकू घात लगाने की चिन्ता में हैं। उसने क्रुद्ध होकर फिर एक बार लौटकर धावा किया, पर तानाजी फिर लौटकर भाग चले।

संध्या-काल हो गया। यवन सेनापति ने खीजकर कहा—ये पहाड़ी चूहे न लड़ते हैं और न भागते हैं, अवश्य अन्य सेना की प्रतीक्षा में हैं। साथ ही कम भी हैं।—अतः उसने व्यवस्था की कि तीन हज़ार सेना के साथ खज़ाना आगे बढ़े और दो हज़ार सेना इन डाकुओं को यहां रोके रहे। इस व्यवस्था से आधी सेना के साथ खज़ाना आगे बढ़ गया। शेष दो हज़ार सैनिकों ने वेग से तानाजी पर आक्रमण किया। तानाजी बड़ी फुर्ती से पीछे हटने लगे। धीरे-धीरे अंधकार हो गया। यवन-दल लौट गया। परन्तु चतुर तानाजी समझ गए कि खज़ाना आगे बढ़ गया है। वे उपाय सोचने लगे। एक सिपाही ने घोड़े से उतरकर तानाजी की रकाब पकड़ी। तानाजी ने कहा—क्या है?

'आप जो सोच रहे हैं, उसका उपाय मैं जानता हूं।'

'क्या उपाय है?'

'यहां से बीस कोस पर एक गांव है।'

'फिर?'

'वहां मेरे बहुत सम्बन्धी हैं।'

'अच्छा।'

'उस गांव के पास एक घाटी है, जिसके दोनों ओर दुरूह, ऊंचे पर्वत हैं, और बीच में सिर्फ दो सवारों के गुज़रने योग्य जगह है। यह घाटी लगभग पौन मील लम्बी है।'

तानाजी ने विचलित होकर कहा—तुम चाहते क्या हो?

'यवन सेना वहां प्रातःकाल पहुंचेगी।'

'अच्छा फिर?'

'मैं एक मार्ग जानता हूं, जिससे मैं पहर रात्रि गए वहां पहुंच सकता हूं। श्रीमान्, मुझे केवल पचास सवार दीजिए। मैं गांववालों को मिला लूंगा, और घाटी का द्वार रोक लूंगा। यवनदल रक्षा की धारणा से तुरन्त घाटी में प्रवेश करेगा। पीछे से आप घाटी के मुख को रोक लीजिए। शत्रु चूहेदानी में मूसे के समान फंस जाएंगे।'

तानाजी गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे। अन्त में उन्होंने कहा—मैं तुम्हारी तजवीज़ पसन्द करता हूं। पचास सैनिक चुन लो।

सिपाही ने पचास सैनिक चुनकर चुपचाप खेत की पगडंडी का रास्ता लिया। तानाजी ने यवनदल पर फिर आक्रमण करने की तैयारी की।

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे को चीरकर तुरही का शब्द हुआ। सोए हुए ग्रामवासी हड़बड़ाकर उठ बैठे। देखा, ग्राम के बाहर थोड़े-से घुड़सवार खड़े हैं।

गांव के पटेल ने भयभीत होकर पूछा—तुम लोग कौन हो, और क्या चाहते हो?

सैनिकों ने चिल्लाकर कहा—हिन्दू-धर्म-रक्षक छत्रपति महाराज शिवाजी की जय!

गांव के निवासी भी चिल्ला उठे—जय, महाराज शिवाजी की जय!

एक सवार तीर की भांति दौड़कर ग्रामवासियों के निकट आया। उसने कहा—सावधान रहो, छत्रपति महाराज शिवाजी ने हिन्दू धर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया है। वे साक्षात् शिव के अवतार हैं। आज सूर्योदय होते ही तुम्हें उनके दर्शन होंगे।

यह सुनते ही ग्रामवासी चिल्ला उठे—महाराज शिवाजी की जय।

'पर सुनो, आज इस गांव की परीक्षा है। भाइयो, यवन सेना इधर को आ

रही है। आज इसी गांव में उनका अंत होगा, और वीरता का सेहरा इस गांव के नाम बंधेगा।'

ग्रामवासियों ने उत्साह से कहा—हम तैयार हैं, हम प्राण देंगे।

'भाइयो, हमारी विजय होगी। प्राण देने की आवश्यकता नहीं। अभी दोपहर का समय हमें है। आओ, घाटी का उस पार का द्वार वृक्षों और पत्थरों से बंद कर दें और सब लोग पर्वतों पर चढ़कर छिप बैठें। बड़े-बड़े पत्थर इकट्ठे रखें, ज्योंही यवनदल घाटी में घुसे, देखते रहो। जब सब सेना घाटी में पहुंच जाए, ऊपर से पत्थरों की भारी मार करो। पीछे के मार्ग को महाराज शिवाजी स्वयं रोकेंगे।' समस्त गांव जय शिवाजी महाराज कहकर कार्य में जुट गया।

प्रातःकाल होने से पूर्व ही यवन दल तेज़ी से घाटी में घुसा। तानाजी पीछे धावा मारते आ रहे हैं, यह वे जानते थे। घाटी पार करने पर वे सुरक्षित रहेंगे, इसका उन्हें विश्वास था। परन्तु एकबारगी ही आगे बढ़ती हुई सेना की गति रुक गई। बड़ी गड़बड़ी फैली। कहां क्या हुआ, यह किसीने नहीं जाना। परन्तु घाटी का द्वार भारी-भारी पत्थरों और बड़े-बड़े वृक्षों को काटकर बन्द कर दिया गया था। उसके बाहर खड़े ग्रामवासी और सवार दरारों के द्वारा तीर छोड़ रहे थे।

सारी यवन सेना में गड़बड़ी फैल गई। यवन सेनापति ने पीछे लौटने की आज्ञा दी। परन्तु अरे! यहां तानाजी की सेना मुस्तैदी से खड़ी तीर फेंक रही थी। अब एक और भारी विपत्ति आई। ऊपर से अगणित बाणों की वर्षा होने लगी, और भारी-भारी पत्थर लुढ़कने लगे। घोड़े, खच्चर, सिपाही सभी चकनाचूर होने लगे। भयानक चीत्कार मच गया। मुहाने पर दो-चार सिपाही आकर युद्ध करके कट गिरते थे। लाशों का ढेर हो रहा था।

यवन सेनापति ने देखा, प्राण बचने का कोई मार्ग नहीं। सहस्रों सिपाही मर चुके थे। जो थे, वे क्षण-क्षण पर मर रहे थे। उसने तानाजी से कहला भेजा, खज़ाना ले लीजिए और हमारी जान बख्श दीजिए।

तानाजी ने हंसकर कहा—जान बख्श दी जाएगी, पर खज़ाना, हथियार और घोड़े तीनों चीज़ें देनी होंगी।—विवश यही किया गया।

एक-एक मुगल सिपाही आता, घोड़ा और हथियार रखकर एक ओर चल देता। ग्रामवासियों ने मार बन्द कर दी थी। बहुत कम यवन सैनिक प्राण बचा

सके। घोड़े, शस्त्र और खज़ाना तानाजी ने कब्ज़े में कर लिया। सूर्य की लाल-लाल किरणें पूर्व में उदय हुईं। तानाजी ने देखा, दूर से गर्द का पर्वत उड़ा आता है। उन्होंने सभी ग्रामवासियों को एकत्र करके कहा—सावधान रहो, महाराज आ रहे हैं।

महाराज ने घोड़े से उतरकर तानाजी को गले से लगा लिया। ग्रामवासियों ने महाराज की पूजा की, और लूटा हुआ सभी माल लेकर शिवाजी अपने किले में लौटे। इस प्रकार संयोग, प्रारब्ध और उद्योग ने सोलह पहर के अंतर में ही असहाय महाराज शिवाजी को सर्व-साधन-सम्पन्न बना दिया, जिसके बल पर वे अपना महाराज्य कायम कर सके।

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे में सैनिकों का प्रशांत दल चुपचाप आगे बढ़ा जा रहा था। सकरी पगडंडी के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे सरकंडे के झाड़ खड़े थे। तारों के क्षीण प्रकाश में घोड़ों को कष्ट होता था, पर सेना की अबाध गति जारी थी।

हठात् सैनिक रुक गए। अग्रगामी सैनिक ने पंक्ति से पीछे हटकर कहा—श्रीमान, बस यही स्थान है।

'आगे रास्ता नहीं ?'

'नहीं श्रीमान।'

'तब यहां से क्या उपाय किया जाए ?'

'इस ढालू चट्टान पर चढ़ना होगा।'

'यह बहुत कठिन है।'

'परन्तु दूसरा उपाय ही नहीं है।'

'तब चढ़ो।' सेनानायक चट्टान को दोनों हाथों से दृढ़ता से पकड़कर खड़ा हो गया।

देखते-देखते दूसरा सैनिक छलांग मारकर चट्टान पर हो रहा, और सेना-नायक को खींच लिया। उस बीहड़ और सीधी खड़ी चट्टान पर धीरे-धीरे ये हठी सैनिक उस दुर्भेद्य अन्धकार में चढ़ने लगे। दुर्ग-प्राचीर के निकट आकर नायक ने कहा—अब रस्सियां चाहिएं।

'रस्सियां उपस्थित हैं।'

रस्सियों को फेंककर प्राचीर के कंगूरे में अटका दिया गया। और क्षण-भर में नायक प्राचीर पर चढ़कर लेट गया। इसके बाद दूसरा और फिर तीसरा। इस प्रकार बारह सैनिक दुर्ग-प्राचीर पर चढ़कर, अवशिष्ट सैनिकों को समुचित आदेश देकर किले में उतर गए। दुर्ग में सन्नाटा था। सब चुपचाप दीवारों की छाया में छिपते हुए फाटक की ओर बढ़ रहे थे। फाटक पर प्रहरी असावधान थे। एक ने सजग होकर पुकारा—कौन ?

दूसरे ही क्षण एक तलवार का भरपूर हाथ उसपर पड़ा। सभी प्रहरी सजग होकर आक्रमण करने लगे। देखते ही देखते किले में कोलाहल मच गया। जगह-जगह योद्धा शस्त्र बांधने और चिल्लाने लगे। मशालों के प्रकाश में इधर-उधर घूमने लगे।

बारहों व्यक्ति चारों ओर से घिर गए। परन्तु वे भीम वेग से फाटक की ओर बढ़ रहे थे। प्रहरी मन में भयभीत थे। तानाजी ने एक वार प्रचण्ड जयघोष किया और उछलकर फाटक पर चढ़ बैठे। बारहों साथियों ने शत्रुदल को तलवार के बल चीर डाला; और तानाजी ने साहस करके फाटक खोल दिया।

हर-हर महादेव करती हुई महाराष्ट्र-सेना किले में घुस पड़ी। बड़ा भारी घमासान मच गया। रुंड-मुंड डोलने लगे। घोड़ों की चीत्कार, योद्धाओं की ललकार और तलवारों की झनकार ने भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया।

तानाजी ने ललकार कहा—किधर है यवन सेनापति, जो मर्द की भांति युद्ध करे।

यवन सेनापति ने ज़ोर से कहा—काफिर, मैं यहां हूं। सामने आ, गरीब सिपाहियों को क्यों काटता है।

तानाजी उछलकर सेनापति के सम्मुख गए। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। दोनों तलवार के धनी थे। मशालों के धुंधले प्रकाश में दोनों योद्धाओं का असाधारण युद्ध देखने को सेना स्तब्ध खड़ी हो गई। तानाजी ने कहा—सेनापति, पहले तुम वार करो, आज मैं तुम्हें मारूंगा।

'काफिर, अभी तेरे टुकड़े किए डालता हूं।' उसने तलवार का भरपूर वार किया।

'अरे यवन, आज बहुत दिन की साध पूरी होगी।'—बदले में तलवार का जनेवा हाथ फेंकते हुए तानाजी ने कहा—लो।

सेनापति के मोढ़े पर तलवार लगी, और रक्त की धार बहने लगी। उसने तड़पकर एक हाथ तानाजी की जांघ में मारा। जांघ कट गई।

तानाजी ने गिरते-गिरते एक बर्छा सेनापति की छाती में पार कर दिया। दोनों वीर घोड़ों से गिर पड़े।

अब सेना में घमासान मच गया। उदयभानु की राजपूत सेना और यवन सेना परास्त हुई। सूर्योदय से पूर्व ही किले पर भगवा झंडा फहराने लगा।

लाशों के ढेर से तानाजी का शरीर निकाला गया। अभी तक उसमें प्राण था। थोड़े उपचार से होश में आकर उन्होंने कहा—क्या किला फतह हो गया ?

'हां महाराज।'

'यवन-सेनापति क्या जीवित हैं ?'

यवन-सेनापति भी जीवित था। उसका शरीर भी वहीं था। तानाजी ने क्षीण स्वर में पुकारा—सेनापति !

'काफिर !'

'पहचानते हो ?'

'दुश्मन को पहचानना क्या ? तुम कौन हो ?'

'पन्द्रह वर्ष प्रथम जिसे आक्रांत करके तुमने उसकी बहिन का हरण किया था।'

सेनापति उत्तेजना के मारे खड़ा हो गया। फिर धड़ाम से गिर गया, उसके मुख से निकला—तानाजी !

'आज बहिन का बदला मिल गया।'

यवन सेनापति मर रहा था, उसका श्वास ऊर्ध्वगत हो रहा था, और आंखें पथरा रही थीं। उसने टूटते स्वर में कहा—तुम्हारी हमशीरा और बच्चे इसी किले में हैं, उनकी हिफाज़त······

यवन सेनापति मर गया। तानाजी की दशा भी अच्छी नहीं थी, परन्तु ये शब्द उन्होंने सुन लिए। उन्होंने टूटते स्वर में कहा—महाराज से कहना, तानाजी ने जीवन सफल कर लिया। महाराज बहिन की रक्षा करें।

तानाजी ने अन्तिम श्वास लिया !

शुभ मुहूर्त में छत्रपति महाराज ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया।

प्रांगण में विषण्ण-वदन सैनिक नीची गर्दन किए खड़े थे। घोड़े से उतरते हुए

शिवाजी ने कहा—मेरा मित्र तानाजी कहां है ?

एक अधिकारी ने गंभीर मुद्रा से कहा—वे वीर वहां बरामदे में श्रीमान की अभ्यर्थना को बैठे हैं।

अधिकारी रोता हुआ पीछे हट गया। महाराज ने पैदल आगे बढ़कर देखा।

वह निश्चल मूर्ति सैकड़ों घाव छाती और शरीर पर खाकर वीरासन से विराजमान थी। महाराज की आंखों से टपाटप आंसू गिरने लगे। उन्होंने शोक-कंपित स्वर में कहा—सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया।

शेरा भील

मुगल सैन्य ने गांव पर धावा बोल दिया। उस समय गांव में केवल एक वृद्ध भील उपस्थित था। उन्होंने उनसे मोर्चा लिया और प्राणों की आहुति दी। उस वीर वृद्ध की स्मृति में आज भी भील बालाएं गीत गाती हैं।

जिन दिनों औरंगज़ेब ने मेवाड़ की भूमि को चारों तरफ से घेर रखा था, उन दिनों की बात है। सारे राज्य-भर में सन्नाटा छा गया था। गांव उजाड़ दिए गए थे। कुएं पाट दिए गए थे। खेत जला दिए गए थे, और सब प्रजाजन अपने पशुओंसहित अरावली की दुर्गम घाटियों में चले गए थे।

मुगलों को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा था। हुकूमत और घमण्ड से मुगलों के प्रत्येक सिपाही का मिज़ाज चौथे आसमान पर चढ़ा रहता था। ऐयाशी और रंगीली तबियतदारी उनमें हो ही गई थी। बादशाह के प्रति कुछ उनकी ऐसी ज़्यादा श्रद्धा भी न थी, क्योंकि शाही सेना में सिर्फ मुगल ही हों, यह बात न थी। मुगल, पठान, सैयद, शेख और न जाने कौन-कौन धुनिये-जुलाहे भर गए थे। वे सिर्फ अपनी नौकरी बजाने को सिपाहीगीरी करते थे। प्रत्येक सिपाही अपने जान-माल की हिफाज़त करने के लिए व्यग्र रहता था, और यथाशक्ति आरामतलबी चाहता था।

इसके विपरीत राजपूतों में अपने देश के लिए रस था। वे प्राणों को हथेली पर रख रहे थे। वे लड़ते थे अपनी प्रतिष्ठा के लिए, अपनी भूमि के लिए, अपनी जाति के लिए। वे अपने राजा को प्यार करते थे। राजा उनका स्वामी नहीं, मित्र था, इससे राजा के लिए प्राण तक देना उनके लिए परम आनन्द की बात थी।

लूनी नदी की क्षीण धारा टेढ़ी-तिरछी होकर उन ऊबड़-खाबड़ मैदानों से होती हुई अरावली की उपत्यका में घुस गई थी। उसका जल थोड़ा अवश्य था, परंतु बहुत स्वच्छ और मीठा था। नदी के उत्तर की ओर सीधा पहाड़ खड़ा था, और बड़ा घना जंगल था। उस जंगल में भीलों की बस्तियां थीं। भीलों की जीविका

जंगल ही से चलती थी। शहद, लकड़ी, मोम, पत्ते, टोकरी आदि बेचकर वे काम चलाते थे। समय पाने पर लूटमार भी करते थे। वे अरावली की तराई में लम्बी-लम्बी और अगम्य घाटियों में अपनी बस्तियां बसाए रहते थे। वे ऐसे अगम्य स्थल थे कि अजनबी आदमी का एकाएक वहां पहुंचना असंभव ही था। इसीलिए महाराणा ने उनके कुछ गांवों को जहां-तहां रहने दिया था। उनसे महाराणा को बहुत सहायता मिलती थी। वे प्रकट में अत्यन्त जंगली भाव से रहते थे। वे बड़े निर्भय वीर थे। उनके पैने, विषैले बाणों का एक हलका-सा घाव भी प्राणांतक होता था। परन्तु वे बाहर से जैसे असभ्य थे, वैसे भीतर से नहीं। वे अपने सरदार के अनन्य भक्त थे, उनमें अपना निजी संगठन था। वे अपने को राणा के कृत दास समझते थे। वे निर्भय होकर वन-पशुओं का शिकार करते थे, खाते थे, और फिर दिन-दिन-भर खोते में लड़ना उनका सबसे ज़रूरी काम था।

वे इस बात की ताक में सदैव रहते थे कि धावा मारें, और मुगल छावनी को लूट लें। बहुधा वे ऐसा करते भी थे। मुगल सरदार उनसे बहुत दुखी थे। वे उनका कुछ भी न बिगाड़ सकते थे, और उनसे वे सदैव चौकन्ने रहते थे। कभी तो वे रात को एकाएक मुगल छावनी पर धावा मारते और किसान जैसे खेत काटता है, उसी भांति मार-काट करके भाग जाते थे। वे इस सफाई से भागते और ऐसी चालाकी से जंगलों में छिप जाते कि मुगल-सिपाही चेष्टा करके भी उन्हें न ढूंढ़ पाते थे।

उनके सरदार की शक्ल भेड़िये के समान थी। सब लोग उसे भेड़िया ही कहते थे। उसमें असाधारण बल था। सब दलों के सरदार उसका लोहा मानते थे। उसने युद्ध में सैकड़ों आदमी मार डाले थे, और सबकी खोपड़ियां ला-लाकर खूंटी पर टांग रखी थीं।

सर्दी के दिन थे, रात का सुहावना समय। वे आग के चारों तरफ बैठे तंबाकू पी रहे थे। उनके काले और चमकीले नंगे शरीर आग की लाल रोशनी में चमक रहे थे। एक राजपूत सिपाही ने आकर, धरती पर भाला टेककर भील सरदार का अभिवादन किया। भील सरदार ने खड़े होकर राजपूत से संदेश पूछा। तुरन्त ढोल पीटे गए। और, क्षण-भर में दो हज़ार भील अपने-अपने भालों को लेकर आ जुटे।

सैनिक राजपूत ने उच्च स्वर से पुकारकर कहा—भील सरदारो! राणा

का हुक्म है कि आप लोगों के लिए राज्य की सेवा का सुअवसर आया है। दुश्मन ने देश को चारों ओर से घेर रखा है। राणा ने आपकी सेवा चाही है। अपना धर्म पालन करो।

भीलों के सरदार ने अपने विकराल मुंह को फाड़कर उच्च स्वर से कहा—राणाजी के लिए हमारा तन-मन हाज़िर है।

उसी रात्रि में, तारों की परछाईं में, दो हज़ार भील वीर चुपचाप उस राजपूत सैनिक का अनुसरण कर रहे थे। सबके हाथ में धनुष-बाण थे। वे सब अरावली की चोटियों पर रातोंरात चढ़ गए। उन्होंने अपने मोर्चे जमाए, पत्थरों के बड़े-बड़े ढेले एकत्र किए, और छिपकर बैठ गए।

दोपहर की चमकती धूप में भील रमणियां मूंगे की कण्ठी कण्ठ में पहने, भारी-भारी घांघरे का काछा कसे लूनी के तीर से पानी ला रही थीं। कोई जल में किलोल कर रही थी। लूनी का क्षीण कलेवर उन्हें देखकर कल-कल कर रहा था। एक युवती मिट्टी के घड़े को पानी में डाले उसमें जल के घुसने का कौतुक देख रही थी, और हंस रही थी। दो बालिकाएं नदी-किनारे चांदी-सी चमकती बालू में खेल रही थीं। अकस्मात् एक तीर सनसनाता हुआ आया। और बालू में खेलती एक बालिका की अंतड़ियों को चीरता हुआ चला गया। बालिका के मुख से एक अस्फुट ध्वनि निकली, और वह रेत में कुछ देर छटपटाकर ठंडी हो गई।

नदी-किनारे खड़ी भील बालाओं ने आश्चर्य और रोष-भरी दृष्टि से नदी के दूसरे तट की ओर देखा। दो मुगल खड़े हंस रहे थे। एक युवती चिल्लाती हुई दौड़कर पेड़ों के झुरमुट में गायब हो गई। गांव में एक बूढ़ा रोगी भील था, जो इस समय राणा के रण-निमंत्रण पर न जा सका था। उसका नाम शेरा था। वह अपने विशाल धनुष और तीन-चार बाणों के साथ बाहर आया। उसने पेड़ की आड़ में खड़े होकर दूसरे तट पर खड़े एक मुगल को लक्ष्य करके तीर फेंका। वह तीर वज्रपात की भांति मुगल सैनिक के हलक को चीरता हुआ कंठ में अटक रहा। सैनिक चीत्कार करके धरती पर गिर पड़ा। नदी-तट की सब स्त्रियां अपने घड़े वहीं छोड़कर गांव में भाग आईं।

दो युवतियां ज़ोर-ज़ोर से ढोल बजा रही थीं। शेरा एक वृक्ष की आड़ से

बाणों की वर्षा कर रहा था। पांच सौ मुगलों ने गांव घेर रखा था। दो-तीन-किशोर वयस्क बालक दौड़-दौड़कर तीर चला रहे थे। स्त्रियां बाणों के ढेर शेरा के निकट रख देती थीं। शेरा का बाण अव्यर्थ था। वह चीरता हुआ आर-पार जा रहा था। शेरा के चारों तरफ बाणों का मेंह बरस रहा था।

शेरा ने देखा, मुगल सैनिकों को रोकना कठिन है। दो-चार सिपाही गांव में आग लगाने का आयोजन कर रहे हैं। उसने स्त्रियों को एकत्र कर, बच्चों सहित उन्हें पीछे करके हटाना शुरू किया। एक तीर उसकी भुजा में लगा। उसने उसे खींचकर फेंक दिया। गेरू का झरना जैसे नील पर्वत से झरता है, रक्त झरने लगा।

शेरा ने चिल्लाकर कहा—सब कोई दूसरे जंगल में चले जाओ। गांव की झोपड़ियां धायं-धायं जलने लगीं। शेरा कौशल से बाण मारे जा रहा था और पीछे हट रहा था। उसकी वीरता, साहस और धीरज आश्चर्यचकित करनेवाले थे।

एक वलिष्ठ भील बाला तीर की भांति अरावली की उपत्यकाओं की ओर भागी जा रही थी उसने एक ऊंचे पेड़ पर चढ़कर अपनी लाल साड़ी को हाथ की लाठी पर ऊंचा किया। कुछ ही क्षण बाद चींटियों के दल की तरह भीलगण धनुष और बाण आगे किए पर्वत-शृंग से उतर रहे थे। स्त्री वृक्ष से उतरकर अपने रक्त वस्त्र को हवा में फहराती आगे-आगे दौड़ रही थी, पीछे-पीछे भीलों की चंचल पंक्तियां थीं।

गांव में आकर देखा, गांव की झोपड़ियां धायं-धायं जल रही हैं। भील सरदार ने हाथ ऊंचा करके बाघ की तरह चीत्कार किया। चारों तरफ भील वीर बिखर गए। बाणों की वर्षा होने लगी। मुगल सैन्य में आर्तनाद मच गया। उनके पैर उखड़ गए। सैकड़ों ने घोड़े पानी में डाल दिए। उनके रक्त से नदी का जल लाल हो गया। सैकड़ों मुगल वहीं खेत रहे। युद्ध में भील वीर विजयी हुए। युद्ध से निवृत्त होकर सरदार ने शेरा को तलाश किया। वह सैकड़ों तीरों से छिदा हुआ एक झोपड़ी की आड़ में निर्जीव पड़ा था।

आज भी उस वीर वृद्ध शेरा के गीत भील बालाएं जब जल भरने आती हैं, गाती हैं।

मास्टर साहब

एक कर्कशा नारी के हृदय-परिवर्तन की मार्मिक कहानी।

भामा भरी बैठी थी। मास्टर साहब ने ज्योंही घर में कदम रखा, उसने विष-दृष्टि से पति को देखकर तीखे स्वर में कहा—यह अब तुम्हारे आने का समय हुआ है ? इतना कह दिया था कि आज मेरा जन्मदिन है, चार मिलनेवालियां आएंगी, बहुत-कुछ बन्दोबस्त करना है, ज़रा जल्दी आना। सो, उल्टे आज शाम ही कर-ली।

'पर लाचारी थी प्रभा की मां, देर हो ही गई।'

'कैसे हो गई ? मैं कहती हूं, तुम मुझसे इतना जलते क्यों हो ? इस तरह मन में आंठ-गांठ रखने से फायदा ? साफ क्यों नहीं कह देते कि तुम्हें मैं फूटी आंखों भी नहीं सुहाती ?'

'यह बात नहीं है प्रभा की मां, तनखाह मिलने में देर हो गई। एक तो आज इन्स्पेक्टर स्कूल में आ गए, दूसरे आज फीस का हिसाब चुकाना था। तीसरे कुछ आफिस का काम भी हेडमास्टर साहब ने बता दिया। करना पड़ा। फिर आज तनखाह मिलने का दिन नहीं था—कहने-सुनने से हेडमास्टर ने बन्दोबस्त किया।'

'सो उन्होंने बड़ा अहसान किया। बात करनी भी तुमसे आफत है। मैं पूछती हूं, देर क्यों कर दी—आप लगे आल्हा गाने। देखूं रुपये कहां हैं।'

मास्टर साहब ने कोट अभी-अभी खूंटी पर टांगा ही था, उसकी जेब से पर्स निकालकर आंगन में उलट दिया। दस-दस रुपये के चार नोट ज़मीन पर फैल गए। उन्हें एक-एक गिनकर भामा ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—चालीस ही हैं, बस ?

'चालीस ही पाता हूं, ज़्यादा कहां से मिलते ?'

'अब इन चालीस में क्या करूं ? ओढ़ूं या बिछाऊं ? कहती हूं, छोड़ दो इस मास्टरी की नौकरी को, छदाम की भी तो ऊपर की आमदनी नहीं है ! तुम्हारे ही मिलनेवाले तो हैं वे बाबू दाताराम—रेल में बाबू हो गए हैं। हर वक्त घर भरा-

पूरा रहता है। घी में घी, चीनी में चीनी; कपड़ा-लत्ता, और दफ्तर के दस कुली-चपरासी हाज़िरी भुगताते हैं वह जुदा। वे क्या तुमसे ज़्यादा पढ़े हैं? क्यों नहीं रेल-बाबू हो जाते?'

'वे सब तो गोदाम से माल चुराकर लाते हैं प्रभा की मां! मुझसे तो चोरी हो नहीं सकती। तनखाह जो मिलती है, उसीमें गुज़र-बसर करना होगा।'

'करना होगा, तुमने तो कह दिया। पर इस महंगाई के ज़माने में कैसे?'

'इससे भी कम में गुज़र करते हैं लोग, प्रभा की मां!'

'वे होंगे कमीन, नीच। मैं ऐसे छोटे घर की बेटी नहीं हूं।'

'पर अपनी औकात के मुताविक ही तो सबको अपनी गुज़र-बसर करनी चाहिए। इसमें छोटे-बड़े घर की क्या बात है? अमीर आदमी ही बड़े आदमी नहीं होते प्रभा की मां!'

'ना, बड़े आदमी तो तुम हो, जो अपनी जोरू को रोटी-कपड़ा भी नहीं जुटा सकते। फिर तुम्हें ऐसी ही किसी कहारिन-महरिन से ब्याह करना चाहिए था। तुम्हारे घर का धन्धा भी करती, इधर-उधर चौका-बरतन करके कुछ कमा भी लाती।'

मास्टर साहब चुप हो गए। वे पत्नी से विवाद करना नहीं चाहते थे। कुछ ठहरकर उन्होंने कहा—जाने दो प्रभा की मां, आज झगड़ा मत करो।—वे थकित भाव से उठे, अपने हाथ से एक गिलास पानी उंडेला और पीकर चुपचाप कोट पहनने लगे। वे जानते थे कि आज अब चाय नहीं मिलेगी। उन्हें ट्यूशन पर जाना था।

भामा ने कहा—जल्दी आना, और ट्यूशन के रुपये भी लेते आना।

मास्टरजी ने विवाद नहीं बढ़ाया। उन्होंने धीरे से कहा—अच्छा।—और घर से बाहर हो गए।

बहुत रात बीते जब वे घर लौटे तो घर में खूब चुहल हो रही थी। भामा की सखी-सहेलियां सजी-धजी गा-बजा रही थीं। अभी उनका खाना-पीना नहीं हुआ था। भामा ने बहुत-सा सामान बाज़ार से मंगा लिया था। पूड़ियां तली जा रही थीं और घी की सौंधी महक घर में फैल रही थी।

पति के लौट आने पर भामा ने ध्यान नहीं दिया। वह अपनी सहेलियों की आवभगत में लगी रही। मास्टर साहब बहुत देर तक अपने कमरे में पलंग पर लेटे भामा के आने और भोजन कराने की प्रतीक्षा करते रहे, और न जाने कब सो

गए।

'रात को भूखे ही सो रहे तुम, खाना नहीं खाया ?'

'कहां, तुम काम में लगी थीं, मुझे पड़ते ही नींद आई तो फिर आंख ही नहीं खुली।'

'मैं तो पहले ही जानती थी कि बिना इस दासी के लाए तुम खा नहीं सकते। रोज़ ही तो चाकरी बजाती हूं; एक दिन मैं तनिक अपनी मिलनेवालियों में फंस गई, सो रूठकर भूखे ही सो रहे। सो एक बार नहीं सौ बार सो रहो, यहां किसी-की धौंस नहीं सहनेवाले हैं।'

'लेकिन प्रभा की मां, इसमें धौंस की क्या बात है ? मुझे नींद आ ही गई।'

'आ गई तो अच्छा हुआ, अब महीने के खर्च का क्या होगा ?'

'ट्यूशन ही के बीस रुपये जेब में पड़े हैं, उन्हींमें काम चलाना होगा।'

'ट्यूशन के बीस रुपये ? वे तो रात काम में आ गए। मैंने ले लिए थे।'

'वे भी खर्च कर दिए ?'

'बड़ा कसूर किया, अब फांसी चढ़ा दो।'

'नहीं, नहीं, प्रभा की मां, मेरा खयाल था चालीस रुपये में तुम काम चला लोगी, बीस बच रहेंगे। इनसे दब-भींचकर महीना कट जाएगा।'

'यह तो रोज़ का रोना है। तकदीर की बात है, यह घर मेरी ही फूटी तक-दीर में लिखा था। पर क्या किया जाए, अपनी लाज तो ढकनी ही पड़ती है। लाख भूखे-नंगे हों, परायों के सामने तो नहीं रह सकते। वे सब बड़े घर की बहू-बेटियां थीं, कोई खटीक-चमारिन तो थीं ही नहीं। फिर साठ-पचास रुपये की औकात ही क्या है ?'

मास्टर साहब चिन्ता से सिर खुजाने लगे। उन्हें कोई जवाब नहीं सूझा। महीने का खर्च चलेगा कैसे, यही चिन्ता उन्हें सता रही थी। अभी दूधवाला आएगा, धोबी आएगा। वे इस माह में जूता पहनना चाहते थे—बिलकुल काम लायक न रह गया था। परन्तु अब जूता तो एक ओर रहा, और आवश्यक खर्च की ही चिन्ता सवार हो गई।

पति को चुप देखकर भामा झटका देकर उठी। उसने कहा—अब इस बार तो कसूर हो गया भई, पर अब किसीको नहीं बुलाऊंगी। इस अभागे घर में तो

पेट के झोले को भर लिया जाए, तो ही बहुत है।

उसने रात का बासी भोजन लाकर पति के सामने रख दिया। मास्टर साहब चुपचाप खाकर स्कूल को चले गए।

भामा ने कहा—बिना कहे तो रहा नहीं जाता, अब तेली, तम्बोली, दूधवाला आकर मेरी जान खाएंगे। क्या कहूं उनसे, बोलो तो? तुम्हें तो अपनी इज़्ज़त का खयाल ही नहीं, पर मुझसे तो इन नीचों के तकाज़े नहीं सहे जाते।

मास्टरजी ने धीमे स्वर में नीची नज़र करके कहा—करूंगा प्रबन्ध, जाता हूं।

'लेकिन, क्यों सहती हो बहिन, इन पुरुषों की प्रभुता का जुआ हमें अपने कंधे पर से उतार फेंकना होगा, हमें स्वतन्त्र होना होगा, हम भी मनुष्य हैं—पुरुषों ही की भांति। कोई कारण नहीं जो हम उनके लिए घर-गिरस्थी करें, उनके लिए बच्चे पैदा करें और जीवन-भर उनकी गुलामी करती हुई मर जाएं।'

भामा की आंखें चमकने लगीं। उसने कहा—यही तो मैं भी सोचती हूं श्रीमतीजी! आप ही कहिए, चालीस रुपये की नौकरी, फिर दूध-धोए भी बने रहना चाहते हैं। आप ही कहिए, दुनिया के एक कोने में एक से एक बढ़कर भोग हैं, क्या मनुष्य का दिल उन्हें भोगना न चाहेगा?

'क्यों नहीं, फिर वे भोग बने किसके लिए हैं? मनुष्य ही तो उन्हें भोगने का अधिकार रखता है।'

'यही तो, पर पुरुष ही उन्हें भोग पाते हैं। वे ही शायद मनुष्य हैं, हम स्त्रियां जैसे मनुष्यता से हीन हैं।'

'हमें लड़ना होगा, हमें संघर्ष करना होगा। हमें पुरुषों की बराबरी की ही होकर जीना होगा। इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिए हमने यह आज़ाद महिला-संघ खोला है। तुम्हें चाहिए कि तुम इसमें सम्मिलित हो जाओ। इसमें हम न केवल स्वतन्त्रता की-पाठ पढ़ाते हैं, बल्कि स्त्रियों को स्वावलम्बी रहने के योग्य भी बनाते हैं। हमारा एक स्कूल भी है, जिसमें सिलाई, कसीदा और भांति-भांति की दस्तकारी सिखाई जाती है। गायन-नृत्य के सीखने का भी प्रबन्ध है। हम जीवन चाहती हैं, सो हमारे संघ में तुम्हें भरपूर जीवन मिलेगा।'

'तो मैं श्रीमतीजी, आपके संघ और स्कूल दोनों ही की सदस्य होती हूं। जब वे स्कूल चले जाते हैं, मैं दिन-भर घर में पड़ी उनके आने का इन्तज़ार करती

रहती हूं। सो भी इस अवस्था में नहीं कि वे मेरे लिए कुछ उपहार लेकर आते होंगे या मेरे पास बैठकर दो बोल हंस-बोल लेंगे। ईश्वर जाने कैसी ठण्डी तबियत पाई है। चुपचाप आते हैं, थके हुए, परेशान-से, और पूरे सुस्ता भी नहीं पाते कि ट्यूशन। प्रभा है, उनकी लड़की, उसीसे रात को हंसते-बोलते हैं। कहिए, यह कोई जीवन है? नरक, नरक; सिर्फ मैं हूं जो यह सब सहती हूं।'

'मत सहो, मत सहो, बहिन, अपने आत्मसम्मान और स्वाधीनता की रक्षा करो।'

'यही करूंगी श्रीमतीजी, यही करूंगी।'

'तो कल आना। हमारा वार्षिकोत्सव है. बहुत-सी बड़ी-बड़ी देवियां आएंगी—उनके भाषण होंगे, भजन होंगे, नृत्य होगा, गायन होगा, नाटक होगा, प्रस्ताव होंगे और फिर प्रीतिभोज होगा। कहो, आओगी न?'

'अवश्य आऊंगी, अब जाती हूं।'

'अब जाओ फिर। तुम्हें देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। याद रखो, तुम्हारी जैसी ही देवियों के पैरों पड़ी परतन्त्रता की बेड़ियां काटने के लिए हमने यह उद्योग किया है।'

'आप धन्य हैं श्रीमतीजी, नमस्ते।'

'नमस्ते।'

भामा ने बड़ी उत्सुकता से वह रात काटी और वह अपनी समझ में पूरी तैयारी के साथ सज-धजकर जब उस जलसे में गई तो हद दरजे चमत्कृत और लज्जित होकर लौटी। चमत्कृत हुई वहां के वातावरण से, व्याख्यानों से, कविताओं और नृत्य से, मनोरंजन-प्रकारों से। उसने देखा, समझा—अहा, यही तो सच्चा जीवन है, कैसा आनन्द है, कैसा उल्लास है, कैसा विनोद है! परन्तु जब उसने अपनी हीनावस्था का वहां आनेवाली प्रत्येक महिला से मुकाबला किया तो लज्जित हुई। उसने दरिद्र, निरीह पति से लेकर घर की प्रत्येक वस्तु को अत्यन्त नगण्य, अत्यन्त क्षुद्र, अत्यन्त दयनीय समझा, और वह अपने ही जीवन के प्रति एक असहनीय विद्रोह और असन्तोष-भावना लिए बहुत रात गए घर लौटी।

मास्टर साहब उसकी प्रतीक्षा में जागे बैठे थे। प्रभा पिता की कहानियां सुनते-सुनते थककर सो गई थी। भोजन तैयार कर, आप खा और प्रभा को खिला,

पत्नी के लिए उन्होंने रख छोड़ा था।

भामा ने आते ही एक तिरस्कार-भरी दृष्टि पति और उस शयनागार पर डाली, जो उसके कुछ क्षण पूर्व देखे हुए दृश्यों से चकाचौंध हो गई थी। उसे सब-कुछ बड़ा ही अशुभ, असहनीय प्रतीत हुआ। वह बिना ही भोजन किए, बिना ही पति से एक शब्द बोले, बिना ही सोती हुई फूल-सी प्रभा पर एक दृष्टि डाले चुपचाप जाकर सो गई।

मास्टर साहब ने कहा—और खाना ?

'नहीं खाऊंगी।'

'कहां खाया ?'

'खा लिया।'

और प्रश्न नहीं किया। मास्टर साहब भी सो गए।

भामा प्रायः नित्य ही महिला-संघ में जाने लगी। उन्मुक्त वायु में स्वच्छन्द सांस लेने लगी ; पढ़ी-लिखी, उन्नतिशील कहानेवाली लेडियों-महिलाओं के संपर्क में आई; जितना पढ़ सकती थी, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने लगी। उसने सुना—उन महामहिम महिलाओं में, जो सभाओं और जलसों में ठाटदार साड़ी धारण करके सभानेत्रियों के आसन को सुशोभित करती हैं, चारों ओर स्त्री-पुरुष जिनका आदर करते है, जिन्हें प्रणाम करते, हंस-हंसकर झुककर जिनका सम्मान करते हैं, उनमें कोई घर को त्याग चुकी है, कोई पति को त्याग चुकी है ; उनका गृहस्थ-जीवन नष्ट हो चुका है, वे स्वच्छन्द हैं, उन्मुक्त हैं, वे बाधाहीन हैं, वे कुछ घंटों ही के लिए नहीं, प्रत्युत महीनों तक चाहे जहां रह और चाहे जहां जा सकती हैं, उन्हें कोई रोकनेवाला, उनकी इच्छा में बाधा डालनेवाला नहीं है। उसे लगा, यही तो स्त्री का सच्चा जीवन है। वे गुलामी की बेड़ियों को तोड़ चुकी हैं, वे नारियां धन्य हैं।

एक दिन सभा में जब सभानेत्री महोदया, तालियों की प्रचण्ड गड़गड़ाहट में ऊंची कुर्सी पर बैठीं (उपस्थित प्रमुख पुरुषों और महिलाओं ने उन्हें सादर मोटर से उतारकर फूलमालाओं से लाद दिया था) तो भामा के पास बैठी एक महिला ने मुंह बिचकाकर कहा—लानत है इसपर ; यहां ये ठाट हैं, वहां खसम ने पीटकर घर से निकाल दिया है। अब मुकदमेबाज़ी चल रही है।

दूसरी देवी ने कुतूहल से पूछा—क्यों ? ऐसा क्यों है ?

'कौन अपनी औरत का रात-दिन पराये मर्दों के साथ घूमते रहना, हंस-हंस-कर बातें करना पसन्द करेगा भला ? घर-गिरस्ती देखना नहीं, देशोद्धार करना या महिलोद्धार करना। और घर-बाहर अवारा फिरना।'

'तो फिर बीबी, बिना त्याग किए यों देश-सेवा हो भी नहीं सकती।'

'खाक देश-सेवा। जो अपने पति और बाल-बच्चों की सेवा नहीं कर सकती, अपनी घर-गिरस्ती को नहीं संभाल सकती, वह देश-सेवा क्या करेगी ? देश के शांत जीवन में अशांति की आग अवश्य लगाएगी।'

भामा को ये बातें चुभ रही थीं। उससे न रहा गया, उसने तीखी होकर कहा—क्या चकचक लगाए हो बहिन, घर-गिरस्ती जाकर संभालो न, यहां वक्त बरबाद करने क्यों आई हो ?

महिला चुप तो हो गई पर उसने तिरस्कार और अवज्ञा की दृष्टि से एक बार भामा को और एक बार सभानेत्री को देखा।

भामा सिर्फ स्त्रियों ही के जलसों में नहीं आती-जाती थी, वह उन जलसों में भी भाग लेने लगी, जिनमें पुरुष भी होते। बहुधा वह स्वयं-सेविका बनती, और ऐसे कार्यों में तत्परता दिखाकर वाहवाही लूटती। उसकी लगन, तत्परता, स्त्री-स्वातन्त्र्य की तीव्र भावना के कारण इस जाग्रत स्त्री-जगत् में उसका परिचय काफी बढ़ गया। वह अधिक विख्यात हो गई। लीडर-स्त्रियों ने उसे अपने काम की समझा, उसका आदर बढ़ा। भामा इससे और भी प्रभावित होकर इस सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ती गई और अब उसकी वह क्षुद्र-दरिद्र गिरस्ती, छोटी-सी पुत्री और समाज में अतिसाधारण-सा अध्यापक उसका पति, सब कुछ हेय हो गया।

वह बहुत कम घर आती। बहुधा मास्टर साहब को खाना स्वयं बनाना पड़ता, चाय बनाना तो उनका नित्य-कर्म हो गया। पुत्री प्रभा की सार-संभार भी उन्हें करनी पड़ने लगी। वे स्कूल जाएं, ट्यूशन करें, बच्ची को संभालें, भोजन बनाएं और घर को भी संभालें। यह सब नित्य-नित्य सम्भव नहीं रहा।

घर में अव्यवस्था और अभाव बढ़ गया। भामा और भी तीखी और निडर हो गई। वह पति पर इतना भार डालकर, उनकी यत्किंचित् भी सहायता न करके, उनकी सारी सम्पत्ति को अधिकृत करके भी निरन्तर उनसे क्रुद्ध और

असंतुष्ट रहने लगी। पति की क्षुद्र आय का अब सबसे बड़ा भाग उसकी साड़ियों में, चन्दों में, तांगे के भाड़े में और मित्र-मित्राणिओं के चाय-पानी में खर्च होने लगा। मास्टर साहब को मित्रों से ऋण लेना पड़ा। ऋण मास-मास बढ़ने लगा और फिर भी खर्च की व्यवस्था बनी नहीं। दूध आना बन्द हो गया, घी की मात्रा कम हो गई, साग-सब्ज़ी में किफायत होने लगी। मास्टरजी के कपड़े फट गए, उन्होंने और एक ट्यूशन कर ली। वे रात-दिन पिसने लगे। छोटी-सी बच्ची चुपचाप अकेली घर में बैठी पिता और माता के आगमन की प्रतीक्षा करने की अभ्यस्त हो गई। बहुधा वह बहुत रात तक, सन्नाटे के आलम में, अकेली घर में डरी हुई, सहमी हुई, बैठी रहती—कभी रोती, कभी रोती-रोती सो जाती; बहुधा भूखी-प्यासी।

एक दिन जब मास्टर साहब स्कूल की तैयारी में थे, भामा ने कहा—सुनते हो, मुझे एक नई खद्दर की साड़ी चाहिए, और कुछ रुपये। महिला-संघ का जलसा है, मैंने स्वयंसेविकाओं में नाम लिखाया है।

'किन्तु रुपये तो अभी नहीं हैं, साड़ी भी आना मुश्किल है, अगले महीने में...।'

भामा गरज पड़ी—अगले महीने में या अगले साल में। आखिर क्या मैं भिखारिन हूं? मैं भी इस घर की मालकिन हूं। ब्याही आई हूं, बांदी नहीं।

'सो तो ठीक है प्रभा की मां, परन्तु रुपया तो नहीं है न। इधर बहुत-सा कर्ज़ा भी तो हो गया है, तुम तो जानती ही हो...।'

'मुझे तुम्हारे कर्ज़ों से क्या मतलब? कमाना मर्दों का काम है या औरतों का? कहो तो मैं कमाई करूं जाकर?'

'नहीं, नहीं, यह मेरा मतलब नहीं। पर अपनी जितनी आमदनी है उतनी...।'

'भाड़ में जाए तुम्हारी आमदनी। मुझे साड़ी चाहिए, और दस रुपये।'

'तो बन्दोबस्त करूंगा।' मास्टर साहब और नहीं बोले, छाता संभालकर चुपचाप चल दिए।

जलसे में भामा एक सप्ताह व्यस्त रही। वह घर न आ सकी। आठ दिन बाद जब वह आई तो उसके रंग-ढंग ही बदले हुए थे। उसमें लीडरी की बू आ गई थी। अब वह एक बच्ची की मां, एक पति की पत्नी, एक घर की गृहिणी नहीं—एक आधुनिकतम महिला-उद्धारक स्त्री थी। पुरुषों से, गृहस्थी की रूढ़ियों से, दरिद्र

जीवन से सम्पूर्ण विद्रोह करनेवाली। वह बात-बात पर पति से झगड़ा करने लगी, प्रभा को अकारण ही पीटने लगी। तनिक-सी भी बात मन के विपरीत होने पर तिनककर घर से चली जाती और दो-दो दिन गायब रहती। उसकी बहुत-सी सखी-सहेलियां हो गई थीं, बहुत-से अड्डे बन गए थे, जिनमें स्कूलों की मास्टरनियां, अध्यापिकाएं, विधवाएं, प्रौढ़ाएं और स्वतन्त्र जीवन का रस लेनेवाली अन्य अनेक प्रकार की स्त्रियां थीं। उनमें से प्रायः सबोंने स्त्रियों के उद्धार का व्रत ले रखा था।

इन सब बातों से अन्ततः एक दिन मास्टर साहब का समुद्र-सा गम्भीर हृदय भी विचलित हो गया। पत्नी के प्रति उत्पन्न रोष को वे यत्न करके भी न दबा सके। प्रभा दो दिन से ज्वर में बेहोश थी, और भामा दो दिन से गायब थी—किसी कार्यवश नहीं, क्रुद्ध होकर। प्रभा ने अम्मा-अम्मा की रट लगा रखी थी। उसके होंठ सूख रहे थे, बदन तप रहा था। मास्टर साहब स्कूल नहीं जा सके थे। ट्यूशन भी नहीं, खाना भी नहीं, वे पुत्री के पास बैठे पानी से उसके होंठों को तर करते, 'अम्मा आ रही हैं' कहकर धीरज देते, फिर एक गहरी सांस के साथ हृदय के दुःख को बाहर फेंकते और अपने दांतों से होंठ दबा लेते और भामा के प्रति उत्पन्न क्रोध को दबाने की चेष्टा करते।

भामा आई तो उसने न रुग्ण पुत्री की ओर देखा, न भूख-प्यास से जर्जर चिंतित पति को। वह भरी हुई जाकर अपनी कोठरी में द्वार बन्द करके पड़ गई।

अन्त में मास्टर साहब ने कोठरी के द्वार पर जाकर कहा—प्रभा को बहुत तेज़ ज्वर है प्रभा की मां, तनिक आओ तो।

'मैं क्या वैद्य-डाक्टर हूं ?' भीतर से भामा ने कहा।

'नहीं, वह तुम्हें बहुत याद कर रही है, तनिक उसके पास बैठो।'

'तुम बैठे तो हो।'

'वह तुम्हें पुकार रही है, आओ।'

'मैं थक रही हूं, मेरी जान मत खाओ।'

'कैसी बात कहती हो प्रभा की मां, वह तुम्हारी बेटी है।'

'तुम्हारी भी तो है।'

'बच्चों की देखभाल तो मां ही कर सकती है, प्रभा की मां ?'

'पर बच्चे मां के नहीं, बाप के हैं। उन्हें ही उनकी संभाल करनी चाहिए।'

'पर तुम ज़रा बच्ची के पास तो जाओ।'

'भाड़ में जाए बच्ची, मुझे ज़रा सोने दो, मेरी तबियत ठीक नहीं है।'

'यह तुम क्या कह रही हो प्रभा की मां!'

'तुम उसे नहीं समझ सकोगे। स्कूल की किताबों में वह बात नहीं लिखी।'

मास्टर साहब के शरीर का सम्पूर्ण रक्त उनके मस्तिष्क में भर गया। जीवन में पहली बार असह्य क्रोध की लहर आई। उन्होंने आपे से बाहर होकर किन्तु धीमे स्वर में कहा—तुम ऐसी हृदयहीन हो, प्रभा की मां!—उन्होंने थूक सटका और चले गए।

सुबह बड़ी देर तक भी जब भामा अपनी कोठरी से बाहर नहीं आई तब मास्टर साहब, रात-भर की जागी हुई, फूली हुई, सुर्ख आंखों की कोर में वेदना और उदासी भरे, प्रभात की वेला में झपकी लेती, क्लांत बच्ची को चुपके से छोड़कर फिर पत्नी की कोठरी में गए। रात के गुस्से को भूलकर उन्होंने पुकारा—प्रभा की मां, उठो तो तनिक, दिन बहुत चढ़ गया है।

पर दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा, कोठरी का द्वार खुला है और भामा वहां नहीं है, कोठरी सूनी है, बिछौना खाली है। भीतर जाकर देखा, एक पुर्ज़ा लिखा रखा था। उसमें लिखा था :

'मेरी आंखें खुल गई हैं, मैं अपने अधिकार को जान गई हूं। मैं भी आदमी हूं, जैसे तुम मर्द लोग हो, और मुझे भी मर्दों ही की भांति स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। मैं तुम्हारे लिए गृहस्थी की गुलामी करने से इन्कार करती हूं। तुम्हारे लिए बच्चे पैदा करने, उनके मल-मूत्र उठाने, तुम्हारे सामने हाथ पसारने से इन्कार करती हूं। मैं जाती हूं और कहे जाती हूं कि तुम्हें मुझे बलपूर्वक अपने दुर्भाग्य से बांध रखने का कोई अधिकार नहीं। तुम्हारी चालीस रुपये की हैसियत में मैं अपने को भागीदार नहीं बना सकती।'

मास्टर साहब की आंखें फट गईं, मुंह फैला रह गया। वे वहीं चारपाई पर बैठकर दो-तीन बार उस पत्र को पढ़ गए। और सब बातों को भूलकर वे यही सोचने लगे—आखिर भामा यह सब लिख कैसे सकी? बिलकुल ग्रामोफोन की सी भाषा है, व्याख्यान के नपे-तुले शब्द, साफ़-तीखी युक्ति, सुगठित भाषा। ऐसा तो वे भी नहीं लिख सकते। भामा यह सब कहां से सीख गई? क्या उसने सत्य ही उन सब गम्भीर बातों पर, स्त्री-स्वातन्त्र्य पर, सामाजिक जीवन के इस असा-

धारण स्त्री-विद्रोह पर पूरा-पूरा विचार कर लिया है? क्या वह जानती है कि इस मार्ग पर जाने से उसपर क्या-क्या ज़िम्मेदारियां आएंगी? मैं तो उसे जानता हूं, वह कमज़ोर दिमाग की स्त्री है, एक असहनशील पत्नी है, एक निर्मम मां है। वह इन सब बातों को समझ ही नहीं सकती। परन्तु वह यह खत लिख कैसे सकी? घर त्यागने का साहस उसमें हो सकता है, यह उसकी दिमागी कमज़ोरी और असहनशीलतापूर्ण हृदय का परिणाम है; परन्तु उसके कारण इतने उच्च, इतने विशाल, इतने क्रांतिमय हैं, यह भामा समझ नहीं सकती। वह सिर्फ भरी गई है, भुलावे में आई है। ईश्वर करे, उसे सुबुद्धि प्राप्त हो, वह लौट आए—मेरे पास नहीं, मैं जानता हूं, मैं अच्छा पति नहीं, मैं उसकी अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं कर सकता। मेरी क्षुद्र आमदनी उसके लिए काफी नहीं है। फिर भी प्रभा के लिए लौट ही आना चाहिए उसे। पता नहीं कहां गई, पर उसे तलाश करना होगा। उसके गुस्से को इतना सहा है, और भी सहना होगा। और उसने समझा हो या न समझा हो, उसका यह कहना तो सही है ही कि मुझे उसे बलपूर्वक अपने दुर्भाग्य से बांध रखने का कोई अधिकार ही नहीं है।

क्षण-भर के लिए मास्टर स्तब्ध बैठे रहे। उनकी तनखाह के गोल-गोल चालीस रुपये झल-झल करके उनके कानों में चालीस की गिनती कर गुम-गुम होने लगे और उनकी दरिद्रता, असहाय गृहस्थी विद्रूप कर ही-ही करके उनका उपहास करने लगी।

'मैं आज उस गुलामी की बेड़ियों को तोड़ आई हूं श्रीमतीजी।'

'शाबाश, तुम्हारे साहस की जितनी तारीफ की जाए, थोड़ी है। मैं समझती हूं कि अब तुम अधिक आज़ादी से अपनी बहिनों और अपने देश की सेवा कर सकती हो।'

'आप जो कहें, वही मैं करूंगी।'

'मैं चाहती हूं, अभी तुम हमारे स्कूल में काम करो। सिर्फ सब सामान की फेहरिस्त रखना, चीज़ों को संभालना और तैयार माल को बाज़ार में बेचना—यही काम तुम्हें करना होगा।'

'और सब तो ठीक है, पर बाज़ार में बेचना, यह मुझसे कैसे होगा? मैं तो कभी बाज़ार जाती नहीं, लोगों से बात करती नहीं।'

'तो क्या मैं समझूं, यह भीरुता, यह कमज़ोरी तुममें अभी बनी ही रहेगी ?'

'पर श्रीमतीजी…'

'पर-वर कुछ नहीं। हरिया तुम्हारे साथ रहेगा। वह तुम्हारे कामों में खूब चंट है। सिर्फ हथलपक है, जो माल बेचता है या खरीदता है, अपनी मुट्ठी भी गर्म करता है। अब तुम्हारी निगरानी में वह ऐसा नहीं कर सकेगा।'

'पर मैं काम कुछ जानती नहीं हूं श्रीमतीजी ! कहीं कोई भूल-चूक हो गई तो…'

'तो क्या हुआ, भूल-चूक भी इंसान से ही होती है। फिर सब काम करने ही से तो आते हैं, कोई पेट से तो सब सीखकर पैदा नहीं होता।'

'तब ठीक है श्रीमतीजी, अब मेरे खाने-पीने का क्या होगा ?'

'तुम्हें बीस रुपया माहवार मिलेगा। रहने को मकान स्कूल ही में मिलेगा। काम सीख लेने पर और कुछ, और पढ़-लिख जाने पर और अधिक तनखाह मिलेगी।'

भामा जब अपने नये घर में आई, तो उसका मन बैठ रहा था। उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ रहा था। बीस रुपये की नौकरी, दिन-भर की गुलामी, फिर बाज़ार में माल बेचना। छी, छी ! मैं कैसे उन लोगों से पार पाऊंगी ?

घर को उसने देखा—उसके अपने घर की एक कोठरी से भी बदतर। एक साधारण-सी कठोरी, गन्दी और सूनी। बराबर की कोठरी में चपरासी हरिया रहता था। उसकी पीकर फेंकी हुई अधजली बीड़ियां बिखरी पड़ी थीं। झाड़ू महीनों से नहीं लगी थी। एक टूटी खाट और पुराना घड़ा पानी से भरा, एक कोने में रखा था।

यह सब देखकर उसे अपना घर, गरीब पर साफ-सुथरा, छोटी-सी बिटिया प्रभा और सदा शान्त-शिष्ट रहनेवाले पति की याद आने लगी। पर उसने दृढ़ता-पूर्वक आगे कदम बढ़ाने की ठान ली। कोठरी उसने झाड़-बुहारकर ठीक कर ली। हरिया से उसने कहा :

'लेकिन चारपाई, बिछौना, सामान ? मेरे पास तो कुछ नहीं है।'

'आज-भर मेरी चारपाई ले लो, पैसे हों तो दो, मैं सामान ला दूं। कल बन्दोबस्त कर लेना।'

'लेकिन मेरे पास पैसे भी तो नहीं हैं।'

'तो तुमने बड़ी बीवी से मांगा क्यों नहीं ?'

भामा को उस नीच चपरासी का 'तुम, तुम' करके बातें करना बहुत बुरा लगा। उसकी चारपाई मंगनी लेना, उसीकी बगल की सूनी कोठरी में अकेली रहना, और बिना साज-सामान गृहस्थी बसाना—उसे यह सब एक असह्य, अन-होनी-सी बात लगने लगी।

उसने सोचा—चलो, घर लौट चलूं, पर मन फिर मचल गया। उसने 'तुम' कहकर उससे बात करनेवाले हरिया से 'तू' कहकर बात की। कहा—चल ज़रा मेरे साथ बीबीजी के घर, मैं उनसे ज़रूरी सामान का बंदोबस्त करने को कहूं।

हरिया को यह तू-तड़ाक पसन्द नहीं आई। उसने धृष्टता से कहा—मैं स्कूल का नौकर हूं, तुम्हारा नहीं, और रात-दिन की नौकरी भी नहीं करता। मैं इस समय कहीं नहीं आ-जा सकता।—वह भीतर अपनी कोठरी में चला गया।

मानिनी भामा तमाम रात भूखी-प्यासी, ठिठुरती उस कोठरी के कोने में भीतर से द्वार बन्द करके बैठी रही। एक-एक करके उसके सामने पति के प्यार, सहिष्णुता, अधीनता के चित्र खिचने लगे। उसे ख्याल हुआ—उनकी यह दरिद्रता उनकी अकर्मण्यता से नहीं है, देश के वातावरण से, लाचारी से और परम्परा से ही है। उसे रह-रहकर अपनी बच्ची की याद आने लगी, जो ज्वर में अपने सूखे होंठों से अम्मा को पुकार रही थी। उसे पति का अभ्यस्त मधुरतम सम्बोधन 'प्रभा की मां' की याद आ रही थी। झर-झर उसकी आंखों से आंसू बहते रहे, वह रोती रही। भूख-प्यास से थकित, शिथिल, गन्दी-अन्धेरी कोठरी में बैठी, वह मन ही मन कहने लगी—यही हमारी, हम स्त्रियों की स्वाधीनता का पथ है !

दूसरी कोठरी में हरिया और उसके यार-दोस्त चण्डू में दम लगा रहे थे। गन्दी बातें बक रहे थे, और बीच-बीच में भामा को लेकर बहुत-सी उचित-अनुचित बातें कह रहे थे।

'किन्तु श्रीमतीजी, भामा मेरी पत्नी है।'

'कह तो दिया, आप नहीं मिल सकते।'

'मगर मिलना बहुत ज़रूरी है। श्रीमतीजी, उसकी बच्ची बहुत बीमार है।'

'महाशय, वह आपसे मिलना नहीं चाहती, आपसे कोई सरोकार रखना नहीं

चाहती। ऐसी हालत में आप उससे ज़बरदस्ती नहीं मिल सकते।'

'ज़बरदस्ती नहीं, श्रीमतीजी, मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूं।'

'आप नाहक हमारा सिर खाते हैं।'

'लेकिन उसने उचित नहीं किया है, उसे सोचना होगा और आपको भी उसे समझाना चाहिए। सोचिए तो सही, वह एक पति की पत्नी ही नहीं, एक बच्ची की मां भी है।'

'वह अपना हानि-लाभ सोच सकती है, उसे आपकी शिक्षा की आवश्यकता नहीं।'

'है, श्रीमतीजी है, उसे मेरी शिक्षा की सहायता की बहुत ज़रूरत है। वह अपना हानि-लाभ नहीं सोच सकती।'

'तो आप चाहते क्या हैं ?'

'ज़रा उसे यहां बुलाइए, मैं उससे बात करना चाहता हूं।'

'परन्तु मैंने कहा, वह आपसे बात करना नहीं चाहती।'

'नहीं, नहीं, बात करने में हानि नहीं है।'

'ओफ, आपने तो सिर खा डाला। मैं कहती हूं, आप चले जाइए।'

'मैं उसे ले जाने के लिए आया हूं।'

'उसे आप ज़बरदस्ती नहीं ले जा सकते।'

'मैं उसे समझाना चाहता हूं।'

'वह आपसे मिलने को तैयार नहीं।'

'मैं उसका पति हूं श्रीमतीजी, वह मेरी पत्नी है, मेरा उसपर पूरा अधिकार है।'

'तो आप अदालत में जाइए, अपने अधिकार का दावा कीजिए।'

'छी, छी ! श्रीमतीजी, आप महिलाओं की हितैषिणी हैं, आप यह कभी पसन्द नहीं करेंगी।'

'जी, मैं यह भी तो पसन्द नहीं करती कि पुरुष स्त्रियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध अपनी आवश्यकताओं का गुलाम बनाएं।'

'कहां, हम तो उन्हें अपने घर-बार की मालकिन बनाकर, अपनी इज़्ज़त, प्रतिष्ठा, सब-कुछ उन्हें सौंपकर निश्चिन्त रहते हैं। जो कमाते हैं, उन्हींके हाथ पर धरते हैं, फिर प्रत्येक वस्तु और कार्य के लिए उन्हींकी सहायता के भिखारी

रहते हैं।'

'विचित्र प्रकृति के व्यक्ति हैं आप, अब मुझीसे उलझ रहे हैं। आप यह व्याख्यान किसी पत्र में छपवा दीजिएगा। आपकी युक्तियों का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है।'

'किन्तु श्रीमतीजी, आप एक पति और उसकी पत्नी के बीच इस प्रकार व्यवधान मत बनिए।'

'अच्छा तो आप मुझे धमकाना चाहते हैं?'

'मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, विनय करता हूं। आप भद्र महिला हैं। एक माता को उसकी रुग्णा पुत्री से, उसके निरीह पति से पृथक् मत कीजिए। आप बड़े घर की महिलाएं, और आपके पतिगण, यह सब विच्छेद सहन करने की शक्ति रखते हैं, हम बेचारे गरीब अध्यापक नहीं। हमारी छोटी-सी गरीब दुनिया है, शान्त छोटा-सा घर है, एक छोटे-से घोंसले के समान। हमलोग न ऊधो के लेने में और न माधो के देने में। दिन-भर मेहनत करते हैं—घर में पत्नी और बाहर पति, और रात को अपनी नींद सोते हैं। आप बड़े-बड़े आदमियों का शिकारी जीवन है, उसमें संघर्ष हैं, आकांक्षाएं हैं, प्रतिक्रिया है, और प्रतिस्पर्धा है। इन सबके बीच आप लोगों का व्यक्तिगत जीवन एक गौण वस्तु बन जाता है। पर हम लोग इन सब झंझटों से पाक-साफ हैं। कृपया हम जैसे निरीह प्राणियों को अपनी इस जीवन की घुड़दौड़ में न घसीटिएगा। दया कीजिए। मेरी पत्नी मेरे साथ कर दीजिए, मैं उसे समझा लूंगा, उससे निपट लूंगा।'

'अच्छा तो आप चाहते हैं कि मैं चपरासी को बुलाऊं? या पुलिस को फोन करूं?'

'जी नहीं, मैं चाहता हूं कि आप भामादेवी को यहां बुला दें। मैं उन्हें अपने घर ले जाऊं।'

'यह नहीं हो सकता।'

'यह बड़ा अन्याय है, श्रीमतीजी!'

'आप जाते हैं, या चपरासी बुलाया जाए?···

'चपरासी···ओ चपरासी!'

देवीजी ने उच्च स्वर से पुकारा। अपनी टेढ़ी और घिनौनी मूंछों में हंसता हुआ हरिया आ खड़ा हुआ। अर्ध उद्दण्डता से बोला:

'क्या करना होगा मेम साहब ?'

मेम साहब के कुछ कहने से प्रथम ही मास्टर साहब 'कुछ नहीं भाई, कुछ नहीं' कहते हुए अपना छाता उठा आफिस से बाहर हो गए। चलती बार वे श्रीमतीजी को नमस्ते करना भूले नहीं।

'सुना तुमने, वह खूसट आया था, दफ्तर में।'

'कौन ?'

'अरे वही बागड़बिल्ला मास्टर, तुम्हारा पति।'

'लेकिन तू तमीज़ से बातें कर।'

'चे खुश, तुमसे, तुम क्या मेरी अफसर हो ?'

'तो तूने समझा क्या है ?'

'तुम बीस पाती हो, मैं भी बीस पाता हूं, तुमसे कम नहीं।'

'तो इसीसे तू मेरी बराबरी करेगा ?'

'कल इतना काम कर दिया, सारा सामान बाजार से ढोकर लाया, और अब 'तू-तू' करके बातें करती हो ? ऐसी ही शाहज़ादी थीं, तो बीस रुपल्ली पर नौकरी करने और इस कोठरी में दिन काटने क्यों आई थीं ?'

'देख हरिया, ज़्यादा बदतमीज़ी करेगा तो अच्छा नहीं होगा।'

'क्या करोगी, मारोगी ?'

'मैं कहती हूं, तू अपनी हैसियत में रह।'

'और तुम भी अपनी हैसियत में रहो। बहुत सहा, कल मैं मेम साहब से साफ कह दूंगा कि जिस-तिसकी गुलामी करना मेरा काम नहीं है। ऐसी तीन सौ साठ नौकरी मिल सकती हैं। कुछ तुम्हारी तरह घर छोड़कर भगोड़ा नहीं हूं। इज़्ज़त रखता हूं।'

भामा का सारा ही मान बिखर गया। ओह, अभी सिर्फ दो ही दिन तो बीते हैं। इसी बीच में इतना कष्ट, इतना अपमान, इतनी वेदना, इतना सूनापन ! हे ईश्वर, क्या अभी भी मैं अपने घर लौट नहीं सकती ? क्या वे मुझे माफ नहीं कर सकते ? अरे, मैं कितना उनसे तीखी रहती थी, कभी सीधे मुंह बात भी नहीं की, सेवा तो एक ओर रही। आज दो-दो कौड़ी के नीच आदमी मेरे मुंह लगते हैं। मैं एक गरीब मास्टर की बीवी ही सही, फिर भी एक इज़्ज़तदार औरत तो हूं। किसी-

का दिया तो नहीं खाती।

वे स्वयं लेने आए थे। कितना घबड़ा रहे होंगे! प्रभा की क्या हालत होगी? हाय, मैं उसे, पेट की बच्ची को बुखार में तड़पती छोड़ आई! एक बार उसकी ओर देखा तक भी नहीं। सच तो यह है कि मैंने न कभी अपने पति का खयाल किया, न सन्तान का। मैं सदा अपने में असन्तुष्ट रही। अपने को देखा नहीं, सपने ही देखती रही।

वह उस नीच-कमीने नौकर से मुंहज़ोरी करना रोक अपनी कोठरी में घुस गई। द्वार भीतर से बन्द कर लिए, और फूट-फूटकर रोने लगी।

दिन बीते, रातें बीतीं, सप्ताह बीते।

महीने और साल बीते। तीन साल बीत गए। एक दिन, दिवाली की रात को, मास्टर साहब अपने घर में दीये जला, प्रभा को खिला-पिला बहुत-सी वेदना, बहुत-सी व्यथा, हृदय में भरे बैठे थे। बालिका कह रही थी—बाबूजी! अम्मां कब आएगी?

'आएगी बेटी, आएगी!'

'तुम तो रोज यही कहते हो। तुम झूठ बोलते हो बाबूजी।'

'झूठ नहीं बेटी, आएगी।'

'तो वह मुझे छोड़कर चली क्यों गईं?'

'......'

'आज दिवाली है बाबूजी?'

'हां बेटी।'

'तुमने कितनी चीज़ें बनाई थीं—पूरी, कचौरी, रायता, हलुआ...'

'हां हां, बेटी, तुझे सब अच्छा लगा?'

'हां, बाबूजी, तुम कितनी खील लाए हो, खिलौने लाए हो—मैंने सब वहां सजाए हैं।'

'बड़ी अच्छी है तू रानी बिटिया।'

'यह सब मैं अम्मा को दिखाऊंगी।'

'दिखाना।'

'देखकर वे हंसेंगी।'

'खूब हंसेंगी।'

'फिर मैं रूठ जाऊंगी।'

'नहीं, नहीं, रानी बिटिया नहीं रूठा करती।'

'तो वह मुझे छोड़कर चली क्यों गई ?'

मास्टरजी ने टप से एक बूंद आंसू गिराया, और पुत्री की दृष्टि बचाकर दूसरा पोंछ डाला। तभी बाहर खिड़की के पास किसीके धम्म से गिरने की आवाज़ आई।

मास्टरजी ने चौंककर देखा, गुनगुनाकर कहा—क्या गिरा ? क्या हुआ ?

वे उठकर बाहर गए, सड़क पर दूर खम्भे पर टिमटिमाती लालटेन के प्रकाश में देखा, कोई काली-काली चीज़ खिड़की के पास पड़ी है। पास जाकर देखा, कोई स्त्री है। निकट से देखा, बेहोश है। मुंह पर लालटेन का प्रकाश डाला, मालूम हुआ भामा है।

मास्टर साहब एकदम व्यस्त हो उठे। उन्होंने सहायता के लिए इधर-उधर देखा, कोई न था, सन्नाटा था। उन्होंने दोनों बांहों में भामा को उठाया और घर के भीतर ले आए। उसे चरपाई पर लिटा दिया।

बालिका ने भय-मिश्रित दृष्टि से मूर्छिता माता को देखा—कुछ समझ न सकी। उसने पिता की तरफ देखा।

'तेरी अम्मा आ गई बिटिया, बीमार है यह।' फिर भामा की नाक पर हाथ रखकर देखा, और कहा—उस कोने में दूध रखा है। ला तो ज़रा।

दूध के दो-चार चम्मच कण्ठ में उतरने पर भामा ने आंखें खोलीं। एक बार उसने आंखें फाड़कर घर को देखा, पति को देखा, पुत्री को देखा, और वह चीख मारकर फिर बेहोश हो गई।

मास्टरजी ने नब्ज़ देखी, कम्बल उसके ऊपर डाला। ध्यान से देखा, शरीर सूखकर कांटा हो गया है, चेहरे पर लाल-काले बड़े-बड़े दाग हैं, आंखें गढ़े में धंस गई हैं। सामने के दो दांत टूट गए हैं, आधे बाल सफेद हो गए हैं। कपड़े गन्दे, चिथड़े। पैर कीचड़ और गन्दगी में लथपथ और···और···और वे दोनों हाथों से माथा पकड़कर बैठ गए।

प्रभा ने भयभीत होकर कहा—क्या हुआ बाबूजी ?

'कुछ नहीं बिटिया!' उन्होंने एक गहरी सांस ली। भामा को अच्छी तरह कम्बल उढ़ा दिया।

इसी बीच भामा ने फिर आंखें खोलीं। होश में आते ही वह उठने लगी। मास्टरजी ने बाधा देकर कहा—उठो मत, प्रभा की मां, बहुत कमज़ोर हो। क्या थोड़ा दूध दूं ?

भामा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। रोते-रोते हिचकियां बंध गईं।

मास्टरजी ने घबराकर कहा—यह क्या नादानी है, सब ठीक हो जाएगा। सब ठीक···।

'पर मैं जाऊंगी, ठहर नहीं सकती।'

'भला यह भी कोई बात है, तुम्हारी हालत क्या है यह तो देखो।'

भामा ने दोनों हाथों से मुंह ढक लिया। उसने कहा—तुम क्या मेरा एक उपकार कर दोगे ? थोड़ा ज़हर मुझे दे दोगे ? मैं वहां सड़क पर जाकर खा लूंगी।

'यह क्या बात करती हो प्रभा की मां ! हौसला रखो, सब ठीक हो जाएगा।'

'हाय मैं कैसे कहूं ?'

'आखिर बात क्या है ?'

'यह पापिन एक बच्चे की मां होनेवाली है, तुम नहीं जानते।'

'जान गया प्रभा की मां, पर घबराओ मत, सब ठीक हो जाएगा।'

'हाय मेरा घर !'

'अब इन बातों की इस समय चर्चा मत करो।'

'तुम क्या मुझे क्षमा कर दोगे ?'

'दुनिया में सब-कुछ सहना पड़ता है, सब-कुछ देखना पड़ता है।'

'अरे देवता, मैंने तुम्हें कभी नहीं पहचाना।'

'कुछ बात नहीं, कुछ बात नहीं, एक नींद तुम सो लो, प्रभा की मां।'

'आह मरी, आह पीर।'

'अच्छा, अच्छा ! प्रभा बिटिया, तू ज़रा मां के पास बैठ, मैं अभी आता हूं बेटी। प्रभा की मां, घबराना नहीं, पास ही एक दाई रहती है, दस मिनट लगेंगे। हौसला रखना।' और वह कर्तव्यनिष्ठ मास्टर साहब, जल्दी-जल्दी घर से निकलकर, दिवाली की जलती हुई अनगिनत दीप-पंक्तियों को लगभग अनदेखा कर, तेज़ी से एक अंधेरी गली की ओर दौड़ चले।

'चरण-रज दो मालिक।'

'वाहियात बात है, प्रभा की मां।'

'अरे देवता, चरण-रज दो, ओ पतितपावन, ओ अशरण-शरण, ओ दीनदयाल चरण-रज दो।'

'तुम पागल हो गई हो, प्रभा की मां।'

'पागल हो जाऊंगी। तीन साल में दुनिया देख ली, दुनिया समझ डाली; पर इस अन्धी ने तुम्हें न देखा, तुम्हें न समझा।'

'यह तुम फालतू बकबक करती रहोगी तो फिर ज्वर हो जाने का भय है। बिटिया प्रभा, अपनी मां को थोड़ा दूध तो दे।'

'मैं भैया को देखूंगी, बाबूजी।'

भामा ने पुत्री को छाती से लगाकर कहा, 'मेरी बच्ची, तू अपने बाप की बेटी है—इस पतिता मां को छू दे जिससे वह पाप-मुक्त हो जाए।'

'नाहक बिटिया को परेशान मत करो, प्रभा की मां।'

'हाय, पर मैं तुम्हें मुंह कैसे दिखाऊंगी?'

'प्रभा की मां, दुनिया में सब-कुछ होता है। तुमने इतना कष्ट पाया है, अब समझ गई हो। उन सब बातों को याद करने से क्या होगा? जो होना था हुआ, अब आगे की सुध लो। हां, अब मुझे तनखा साठ रुपये मिल रही है, प्रभा की मां। और ट्यूशन से भी तीस-चालीस पीट लाता हूं। और एक चीज़ देखो, प्रभा ने खुद पसन्द करके अपनी अम्मा के लिए खरीदी थी, उस दिवाली को।'

वे एक नवयुवक की भांति उत्साहित हो उठे, बक्स से एक रेशमी साड़ी निकाली और भामा के हाथ में देकर कहा—तनिक देखो तो।

भामा ने हाथ बढ़ाकर पति के चरण छुए। उसने रोते-रोते कहा—मुझे साड़ी नहीं, गहना नहीं, सुख नहीं, सिर्फ तुम्हारी शुभदृष्टि चाहिए। नारी-जीवन का तथ्य मैं समझ गई हूं; किन्तु अपना नारीत्व खोकर। वह घर की सम्राज्ञी है, और उसे खूब सावधानी से अपने घर को चारों ओर से बन्द करके अपने साम्राज्य का स्वच्छन्द उपभोग करना चाहिए, जिससे बाहर की वायु उसमें प्रविष्ट न हो, फिर वह साम्राज्य चाहे भी जैसा—लघु, तुच्छ, विपन्न, असहाय क्यों न हो।

मास्टर साहब ने कहा—प्रभा की मां, तुम तो मुझसे भी ज़्यादा पण्डिता हो गईं। कैसी-कैसी बातें सीख लीं तुमने प्रभा की मां!—वे ही-ही करके हंसने लगे।

उनकी आंखों में अमल-धवल उज्ज्वल अश्रु-बिन्दु झलक रहे थे।

सुलह

कई बार वैमनस्य की ग्रन्थियां भोले-भाले बालकों की तुतलाती सहृदय वाणी के मार्मिक आघात पाकर सहज ही खुल जाती हैं। 'सुलह' ऐसी ही एक कहानी है।

काश्मीरी दरवाज़ा पुरानी दिल्ली का चांदनी चौक के बाद सबसे गुलज़ार बाज़ार है। कचहरी और हिंदू कालेज के कारण उसका दिल्ली के इतिहास में सांस्कृतिक महत्त्व भी बहुत है। हिंदू कालेज अब युनिवर्सिटी क्षेत्र में चला गया है, और हिन्दू कालेज की उस बिल्डिंग में अब कचहरी का अमल है। परन्तु वह भव्य ऐतिहासिक इमारत अब भी हिंदू कालेज के ही नाम से प्रसिद्ध है। हिंदू कालेज के कारण नगर के शिक्षित तरुण, और कचहरी के कारण भले-बुरे सभी नागरिक काश्मीरी दरवाज़े जाते-आते ही रहते हैं। इसीसे नगर का यह भाग सदा चहल-पहल से भरा रहता है। इसमें पुरानी दिल्ली की रंगीनी भी है, और नई दिल्ली की शान भी। इसके अतिरिक्त, काश्मीरी दरवाज़े के बाहर सत्तावन के विद्रोह के अमिट चिह्न भी हैं। दूर तक शहर-पनाह की दीवारों पर अंग्रेज़ों के बरसाए हुए गोले-गोलियों से शहर-पनाह और दरवाज़ा छलनी हुआ पड़ा है। जैसे चेचक का प्रकोप मुंह पर अपने अशुभ दाग छोड़ जाता है, वैसे ही अंग्रेज़ भी काश्मीरी दरवाज़े पर अपने गोले-गोलियों के घाव छोड़ गए हैं। जब तक अंग्रेज़ों की अमलदारी थी, प्रत्येक अंग्रेज़ उन निशानों को गर्व से देखता था, और प्रत्येक भारतीय लाज से अपना सिर नीचा कर लेता था। पर आज वही निशान संग्राम के स्मृति-चिह्न बन गए हैं।

हिन्दू कालेज के प्रति मेरा प्रिय भाव भी बहुत था। बहुधा, मैं छात्रों के बीच भाषण दे आया हूं। बहुत बार छात्रों और अध्यापकों ने मुझे चाय-पान का आनंद प्रदान किया है। वहां के गुंजान फुलवारियों से भरे प्रांगण में ज्ञान-पिपासु तरुण छात्र-छात्राओं के हंसते मुंह देखने के प्रलोभन से मैं चाहे जब, बिना काम, और बिना बुलाए ही वहां जा पहुंचता था। अब जो सुना, कि वहां कचहरियां आ

बसी हैं, मैं वहां का वातावरण देखने एक दिन जा पहुंचा। इस इमारत का एक ऐतिहासिक महत्त्व भी है, जिसे बहुत कम आदमी जानते हैं। वह यह कि सत्तावन के विद्रोह के बाद जब दिल्ली को अंग्रेज़ों ने दखल किया, तो उनकी पहली सरकार इसी इमारत में स्थापित हुई थी। यहीं किसी कमरे में बैठकर हडसन साहब ने नवावों और शाही खानदान के सैकड़ो आदमियों को फांसी पर चढ़ाने के आज्ञा-पत्र जारी किए थे। खयाल कीजिए, जब 'फव्वारे' पर, दूर तक फांसियों पर लोग लटक रहे थे, तब, इस इमारत के भीतर क्या हो रहा है, यह जानने को लोग कितनी भयपूर्ण कल्पनाएं करते होंगे। अब न रहे वे दिन, और न वे अंग्रेज़। अब तो ठेठ स्वदेशी राज्य है। फिर कचहरी, जहां भीतर-बाहर हर जगह जाने का सभी को अधिकार है, वहां पहुंच गई। क्या समय का फेर है! मनुष्य की भांति, स्थान के भी भाग्य होते हैं! सो मैं, एक दिन, इस ऐतिहासिक इमारत के भाग्य-परिवर्तन को देखने वहां जा पहुंचा।

फाटक में घुसते ही ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे शांत वातावरण में आंधी आ गई हो। भोले-भाले स्वस्थ छात्रों के प्यार-भरे चेहरों के स्थान पर, उठाईगीर जैसी मतलब-भरी आंखें लिए सूटो में लिपटे हुए वकील अपने शिकार की तलाश में इधर-उधर घूम रहे थे। बढ़िया सूटों में से झांकते हुए उनके वीरान और मनहूस चेहरे मतलब और मक्कारी की हंसी हंस रहे थे। उस हंसी का मतलब यह था, लड़ो भाइयो, हम तुम्हारी मदद करेंगे। तुम अपनी जेब की जमाजथा हमारे हवाले कर दो।—सब किस्म के आदमी, आबाल-वृद्ध, परेशान-से इधर से उधर घूम रहे थे। जैसे इनकी गांठ का सब कुछ यहीं खो गया है। देखता-भालता मैं पीछे के कक्ष में जा पहुंचा। बहुत बार, भावुक तरुणों ने मेरा वहां सत्कार किया था। साहित्य-चर्चा हुई थी, चाय-रसगुल्ले खाए थे। बूढ़ों और तरुणों ने मिलकर शुभ हास्य बखेरा था। परन्तु आज का वातावरण तो कुछ और ही था। एक जजसाहब ऐसी रूखी और उदासीन मुख-मुद्रा बनाए ऊंची कुर्सी पर बैठे थे, जैसे उनके चारों ओर खड़े मनुष्यों से उनका कोई सम्पर्क ही नहीं है; और, जैसे वे सब कीड़े-मकोड़े हैं; केवल एक ही महाशय भलेमानुस हैं।

कोर्ट में एक दिलचस्प मुकदमा पेश था। मुकदमा पति-पत्नी के बीच था। दम्पति शायद ईसाई थे—दोनों तरुण। पत्नी की आयु कोई पचीस वर्ष की होगी।

छरहरी, लम्बी और सुन्दर श्यामल वर्ण। गोद में कोई ढाई-तीन साल का बच्चा। स्वस्थ, और सुन्दर! परिधान साधारण साड़ी। अति स्वच्छ बच्चे को कन्धे पर लिए चुपचाप खड़ी थी। मुद्रा क्रोध-भरी थी। उसकी बगल में एक सूखा, चिड़ी-सा दुबला-पतला, लम्बा-बेतुका-सा वकील अपनी मनहूस नज़रों को काले चश्मे में छिपाए, नकली गम्भीर मुद्रा में खड़ा था। उसकी बगल में ही तरुणी का पति कुछ बेचैन-सा खड़ा था। गहरी उदासी की छाया ने उसके वीरान चेहरे को एकदम उजाड़ दिया था। उसकी भूखी और खोई-सी नज़र रह-रहकर, तरुणी पर पड़ रही थी। परन्तु तरुणी एकदम भावहीन पत्थर की मूर्ति की भांति, निष्ठुर, निर्मम मुद्रा में खड़ी थी। मामला शायद छोड़-छुट्टी और गुज़ारे का था। मुद्दइया वही तरुणी थी। पति के भी बगल में एक ठिगने, गोल-मटोल गुदगुदे वकील साहब खड़े, रह-रहकर अपनी पतलून की जेब में बार-बार हाथ निकाल और डाल रहे थे। दोनों वकीलों से उनके मुवक्किल, थोड़ी-थोड़ी देर में, घुसफुस-घुसफुस बात कर लेते थे, जैसे अब इस स्थान पर वही परस्पर गहरे सगे-सम्बन्धी हों।

मुकदमा आरम्भ हुआ और जज ने तरुणी के पति से कुछ प्रश्न किए। ज्योंही युवक के मुंह से बात फूटी, तरुणी की गोद में सोया हुआ बच्चा, चौकन्ना होकर इधर-उधर देखने लगा। पिता पर दृष्टि पड़ते ही वह ज़ोर से 'पापा, पापा' कहकर, और दोनों हाथ फैलाकर पिता की गोद में जाने के लिए वावेला मचाने लगा। और तरुणी उसे अपनी गोद में जकड़े रखने के लिए भरपूर ज़ोर लगाकर, उसे चुप करने का असफल प्रयत्न करने लगी। परन्तु बालक ने 'पापा, पापा' का ऐसा शोर मचाया, और इस कदर रोना शुरू किया, कि अदालत का कामकाज एकबारगी बन्द हो गया; और जज तथा वकील परेशान होकर उस नन्हे प्राणी को देखने लगे। वह प्रकृति के एक ऐसे सत्य को पुकार-पुकारकर अदालत से कह रहा था, कि मेरे दावे के सामने तुम्हारा सारा ही कानून बघारना व्यर्थ है।

जज और वकीलों ने बहुत समझाया कि थोड़ी देर के लिए वह स्त्री बच्चे को पति की गोद में दे दे। यहां तक, कि जज ने कहा, कि बच्चे पर पति ही का अधिक हक है। पर, वह स्त्री, कसकर बच्चे को छाती से लगाए, बज़िद उसे किसी तरह पति को देने पर आमादा न हुई। लेकिन बच्चा बड़े ज़ोर से 'पापा' कहकर करुण क्रंदन कर रहा था। उसके दोनों नन्हे-नन्हे हाथ हवा में उठे हुए थे, और उसका

वह अभागा पिता, जिसने कभी हंस-हंसकर गोद में खिलाया था, आंखों में आंसू भरे, दोनों हाथ फैलाए, अपनी पत्नी के आगे करुणा की भीख मांग रहा था। कानून चुप था। जज चुप था। वकील चुप थे। पिता और पुत्र हाथ फैलाए एक-दूसरे की छाती से लगने को छटपटा रहे थे। स्त्री अदालत में अपने अधिकारों के लिए लड़ने को आमादा थी। पत्नी आत्मसम्मान की आग से दहक रही थी, पर मां विगलित हो रही थी। उस कानूनी वातावरण के भरे कमरे में, उस एक स्त्री के शरीर में जो यह त्रिवेणी-संगम हो रहा था, उसे देखनेवाला कोई न था। मां की आत्मा ने स्त्री और पत्नी की मूर्ति को परास्त कर दिया। उसने छिपी नज़र से पति की ओर देखा। ऐसी करुणा की मूर्ति उसने पहले नहीं देखी थी। उसकी आंखों की ज्वाला बुझ गई। पत्नी की आत्मा ने प्यार बखेरना आरम्भ कर दिया। उसकी आंखों में मोती सज गए। और देखते-देखते ही वे झर-झर झरने लगे। गोद की पकड़ उसकी ढीली पड़ गई। और जैसे चुम्बक से खिंचकर लोहा चिपक जाता है, उसी प्रकार वह शिशु पिता की गोद में जाकर चिपट गया।

बालक ने कहा—पापा !

पिता ने कहा—बेटा !

'तुम कहां चले गए थे पापा।'

'बेटा, मैं काम से गया था।'

'अब मुझे छोड़कर मत जाना पापा।'

'नहीं जाऊंगा बेटा।'

'ममी रो रही हैं पापा। उन्हें प्यार करो।'

'बेटा, ममी मुझसे गुस्सा हो गई है।'

'तुम ममी को प्यार करो पापा, वे हंस पड़ेंगी।'

बालक ने माता की ओर अपने नन्हे हाथ पसार दिए। पिता ने एक कदम बढ़ाया; और वह मां के पास आ खड़ा हुआ। बालक ने एक हाथ मां के गले में डाला और दूसरा पिता के गले में। उसने मां का मुख चूम लिया, और कहा—पापा ! तुम ममी को प्यार करो।

डरते-डरते पति ने पत्नी का चुम्बन किया, और बालक खिलखिलाकर हंस पड़ा। पत्नी ने भरी हुई आंखों से पति की ओर ताका, उनकी आंखों में अनुनय और प्यार छलछला रहा था। पत्नी के होंठों में मुस्कान फैल गई। और तभी

साहस करके पति ने पत्नी का हाथ पकड़ लिया। पत्नी, नववधू की लज्जा आंखों में सजाकर चुपचाप अदालत से बाहर चली गई। अदालत ने वकीलों की ओर देखा। पर वकील, 'मेरी फीस', 'मेरी फीस' कहते मुवक्किलों के पीछे भागे। जज ने हंसकर मिसिल एक ओर फेंककर कहा—दूसरा मुकदमा पेश करो।

रानी रासमणि

जिसकी चरण-रज ने ब्राह्मणों के ललाट को भी पावन किया, उसी 'शूद्रा' रानी रासमणि की पनीत और रोमांचक गाथा।

सन् १८५७ की बात है। उन दिनों कलकत्ता के दक्षिण अंचल में जानबाज़ार की एक बस्ती थी। जानबाज़ार में महारानी रासमणि दासी रहती थीं। रानी रासमणि बड़ी धनी और धर्मात्मा प्रसिद्ध थीं। उनकी दानशीलता की बड़ी धूम थी। उनके श्वसुर वारेन हेस्टिंग्स के दाहिने हाथ थे। राजा नन्दकुमार को फांसी दिलाने में उनका बड़ा हाथ था। वारेन हेस्टिंग्स की कृपा से उन्होंने बहुत धन-सम्पत्ति एकत्र कर ली थी तथा उन्हें महाराज का खिताब भी मिल गया था। उनकी मृत्यु पर उनके पुत्र महाराज रामचन्द्र बसु ने कम्पनी सरकार की अथक सेवा करके बहुत सम्पत्ति एकत्र की थी। उनकी मृत्यु को भी अब चार साल बीत चुके थे। इस समय रानी रासमणि दासी ही पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी थीं। इस समय उनकी अवस्था चालीस बरस की थी। उनकी संतति में चार कन्याएं थीं। तीन कन्याओं का विवाह हो चुका था, किन्तु तीसरी बेटी का प्रसव वेदना में देहान्त हो गया था, रानी ने सोचा कि अब उनके एकमात्र आधार दामाद मथुरानाथ कदाचित् उनसे नाता तोड़कर अपने घर को चले जाएं, इसलिए उन्होंने अपनी कनिष्ठा कन्या जगदम्बा का विवाह उनके साथ कर दिया था।

रानी जाति की केवट थीं। अंग्रेज़ों की कृपा से बहुत केवट, ग्वाले, बाग्दी आदि उन दिनों राजाबहादुर और महाराज हो गए थे। परन्तु बंगाल में ब्राह्मणों का श्रेष्ठत्व और जात-पांत का अहंकार अभी भी बहुत था। रानी रासमणि को देवी का इष्ट था। उनकी ज़मींदारी के कागज़ों पर उनकी जो मुहर लगाई जाती थी, उसमें—'कालीपद अभिलाषी श्रीमती रासमणि दासी' अंकित रहता था। रानी की बड़ी अभिलाषा थी कि वह काशी जाकर श्री विश्वनाथ का दर्शन करें। इसके लिए उन्होंने भारी रकम पृथक् रख छोड़ी थी। परन्तु उस समय बंगाल का

कोई निष्ठावान ब्राह्मण उनके साथ जाकर उन्हें विश्वनाथजी के दर्शन कराने को राज़ी नहीं हुआ। इससे हताश होकर उन्होंने कलकत्ता ही में गंगा तट पर विश्वनाथ बाबा की प्रतिष्ठा करके भोग-पूजा के बन्दोबस्त करने का इरादा किया। रानी ने गंगा के पश्चिम तट को वाराणसी तुल्य समझ मन्दिर के लिए ज़मीन की तलाश की और उत्तरपाड़ा के गांवों में स्थान ढुंढ़वाया। वे उचित से अधिक मूल्य भी देने को राज़ी हो गईं। परन्तु वहां के ज़मींदारों ने यह कहकर ज़मीन बेचने से इन्कार कर दिया कि हम लोग अपने इलाके में केवट के धन से बने घाट पर पैर नहीं रखेंगे। तब लाचार हो रानी को दूसरे किनारे पर दक्षिणेश्वर में ही ज़मीन लेनी पड़ी। ज़मीन पर भव्य मन्दिर बनने लगा, बगीचा भी लगने लगा। कई साल तक काम चला। अभी वहुत काम शेष था कि रानी ने अपने जीवन की क्षणभंगुरता पर विचार करके प्रथम देवता की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया। परन्तु वे जाति की केवट थीं, इसलिए प्रतिष्ठा और पूजा के लिए कोई ब्राह्मण नहीं मिला। रानी मन्दिर में देवता की प्रतिष्ठा करा सकती हैं, इसकी किसी भी पण्डित ने व्यवस्था नहीं की। बड़ी दौड़-धूप और मिन्नत-चिरौरी करने से झामापुकुर की पाठशाला के पण्डितजी ने यह व्यवस्था दी कि रानी यदि प्रतिष्ठा से पहले ही देवालय और सम्पत्ति किसी ब्राह्मण को दान में दे, दें, फिर वह ब्राह्मण मन्दिर की प्रतिष्ठा कराके भोग-राग की व्यवस्था करे तो शास्त्र की मर्यादा भी रह जाएगी और मन्दिर में ब्राह्मण आदि उच्चवर्ण के लोगों को प्रसाद ग्रहण करने में कुछ दोष भी न लगेगा।

निरुपाय रानी ने अपने कुलगुरु को वह मन्दिर और सम्पत्ति दान कर दी, और उनकी अनुमति से उनकी कर्मचारी की हैसियत से मन्दिर-निर्माण तथा प्रतिष्ठा का प्रबन्ध करने लगी। परन्तु इतने पर भी बंगाल के पण्डितों का विरोध कम न हुआ। उन्होंने कहा—शास्त्र-विरुद्धता की कठिनाई तो दूर हो गई, परन्तु फिर भी कोई ब्राह्मण यहां न आएगा। निदान कोई ब्राह्मण शूद्र द्वारा प्रतिष्ठित देवी-देवता को हाथ जोड़ने तथा पूजा करने को राज़ी नहीं हुआ। रानी के गुरुवंशों को भी दूसरे ब्राह्मण एक प्रकार से शूद्र ही मानते थे। इसके अतिरिक्त उस वंश में कोई ऐसा विद्वान ब्राह्मण न था जो प्रतिष्ठा और पूजा का कार्य सम्पन्न करा सके। रानी ने अधिक वेतन और बहुत-सा पारितोषिक देना स्वीकार करके पुजारी और भण्डारी के पद के लिए ब्राह्मण की तलाश की। परन्तु कोई कुलीन

ब्राह्मण राज़ी न हुआ। बड़ी कठिनाई से अपनी पदवृद्धि की आशा से रानी की कचहरी के कारकुन महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने बड़े भाई क्षेत्रनाथ को राधा-गोविन्द की मूर्ति का पुजारी नियत किया, किन्तु काली की पूजा करने के लिए पुजारी नहीं मिला। परन्तु अब ब्राह्मणों की भर्ती का मार्ग खुल गया था। झामा-पुकुर की पाठशाला के अध्यापक रामकुमार भट्टाचार्य महेशचन्द्र के परिचित थे, उनमें परस्पर कुछ गांव का रिश्ता भी था। भट्टाचार्य शाक्त थे, और उन्होंने कभी-कभी चोरी-छिपे कलकत्ता के कायस्थों के यहां पुजारी का काम किया भी था। परन्तु भरोसा न था कि वह शूद्रारानी के यहां आकर भी काम स्वीकार कर लेंगे। फिर भी महेशचन्द्र के कहने से रानी ने बड़ी दीनता से रामकुमार के पास पत्र द्वारा प्रार्थना की कि—जगन्माता की प्रतिष्ठा का कार्य आपकी ही दी हुई व्यवस्था के अनुसार हो रहा है, सारी तैयारी हो चुकी है। राधागोविन्द की पूजा के लिए पुजारी मिल चुका है परन्तु काली की पूजा के लिए ब्राह्मण नहीं मिल रहा है। इसलिए आप इस कार्य में सहायता करें।

महेशचन्द्र ने रानी का पत्र रामकुमार को देकर और समझा-बुझाकर तथा लोभ-लालच से वश करके अन्त में उन्हें इस बात पर राज़ी कर लिया कि जब तक दूसरा उपयुक्त ब्राह्मण न मिले, तब तक काली के पुजारी-पद का भार वे ही ग्रहण करें। अन्ततः राज़ी होकर वे दक्षिणेश्वर चले आए। रामकुमार भट्टाचार्य की असम्भावित कृपा से रानी को बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर बड़ी धूम-धाम से जगदम्बा काली की प्रतिष्ठा की गई। बड़े भारी दान, भोज का आयोजन हुआ। कन्नौज, काशी, सिलहट, उड़ीसा आदि दूर-दूर से पण्डित लोग उस उत्सव में निमन्त्रित हुए। उन सबको रेशमी धोती, दुपट्टा और एक-एक मोहर बिदाई में मिली। अनगिनत अतिथि-अभ्यागत और दीन-दुखी जनों को रानी ने मुक्तहस्त दान दिया। मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठा कराने में रानी ने ६ लाख रुपया खर्च किया और दो लाख छब्बीस हज़ार में त्रैलोक्यनाथ ठाकुर से उनका दीनाज-पुर ज़िले का इलाका खरीदकर राग-भोग के लिए मन्दिर को दे दिया।

मन्दिर की प्रतिष्ठा होने से प्रथम ही रानी विधि से कठोर तपस्या करने लग गई थीं। वे तीन बार स्नान करतीं, हविष्य भोजन करतीं, भूमि पर सोतीं, और हर समय जप-पूजन करती रहती थीं। परन्तु कैसी अद्भुत बात थी कि इस धर्म-भीरु, चरित्रवती रानी का शूद्रत्व तनिक भी कम न होता था। शूद्रा थीं, अछूत

थीं। उनके प्रतिष्ठित देवता भी ब्राह्मणों के लिए अस्पृश्य थे। उन दिनों बंगाल में छुआछूत और जात-पांत का ऐसा ही असाध्य रोग चल रहा था।

दक्षिणेश्वर के बगीचे में उत्तर की ओर गंगा-किनारे एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ है। इसका तना और प्रशाखाएं कोई बीघे-भर भूमि में फैली हुई हैं। बीच-बीच में जो बरोहें लटककर ज़मीन में आ लगी हैं वे उसके लिए थूनी का काम देती हैं। इसके दक्षिण में एक छोटी-सी फूस की कुटिया थी, अब उसकी जगह पक्का ईंटों का घर बन गया है। उसी कुटिया के आगे एक ब्राह्मण चुपचाप कहीं से आकर बैठ गया था। तेजस्वी और गम्भीर था, वह न किसीसे कुछ बोलता था, न किसी ओर देखता था। वह शान्त मुद्रा में चुपचाप बैठा मन्दिर की प्रतिष्ठा के समारोह की धूमधाम देख रहा था। हज़ारों नर-नारियों की भीड़ उस समय मन्दिर में भरी थी। ब्रह्मभोज हो रहा था। भांति-भांति के पकवान ढेर के ढेर तैयार होते और भण्डार से बाहर आते जा रहे थे। बड़े-बड़े चोटीवाले ब्राह्मण भोजन करके पेट पर हाथ फेरते और मुहर दक्षिणा में लेते जा रहे थे। परन्तु यह ब्राह्मण चुपचाप सबको देख रहा था। उसने यहां भोजन भी ग्रहण नहीं किया था।

एक और बारह बरस का बालक उस दिन बड़ी दौड़-धूप कर रहा था। उसका निवास इसी कुटिया में था। वह बारम्बार वहां आता और तेज़ी से चला जाता। उस बालक की आकृति और रूप-रंग तो साधारण था—पर उसके व्यवहार में बड़ा आकर्षण था। जब-जब वह बालक उधर से गुज़रता या कुटिया में आता-जाता तो यह ब्राह्मण बड़े ध्यान से उसको देखता, पर बालक इतना व्यस्त था और उसकी चेतना कुछ ऐसी तल्लीन थी कि उसका इस बात पर ध्यान ही नहीं गया कि कोई आगन्तुक यहां बैठा है। ब्राह्मण ने भी उसे टोका नहीं। पर वह बड़े ध्यान से उसे देख रहा था।

दोपहर ढल गई और अतिथियों की भीड़-भाड़ छंट गई। बालक की व्यस्तता कुछ कम हुई तो कुटी की ओर आते हुए उसका ध्यान इस ब्राह्मण पर गया। बालक ने ब्राह्मण के पास आकर कहा :

'आप कौन हैं?'

'एक अभ्यागत अतिथि।'

'क्या आप ब्राह्मण हैं?'

'जन्म तो ब्राह्मण के घर ही हुआ था, पर उसका मुझे अभिमान नहीं है।'

'भोजन हुआ ?'

'न।'

'क्यों ? सब ब्राह्मण तो भोजन कर गए।'

'तो इससे मुझे क्या ?'

'आप भी भोजन कीजिए, दक्षिणा लीजिए, रानी मोहर दक्षिणा दे रही हैं।'

'मैं भिक्षुक ब्राह्मण नहीं हूं। भोजन और दक्षिणा के लिए यहां नहीं आया।'

'तो किसलिए आए हैं ?'

'दर्शन करने के लिए।'

'तो चलिए—देवदर्शन कीजिए।'

'मैं देवीदर्शन करने आया हूं।'

'उधर कालीमाई का दर्शन है। चलकर उन्हींके दर्शन कीजिए।'

'काली मां के दर्शन की मुझे उत्सुकता नहीं है। मैं बड़ी मां के दर्शन करना चाहता हूं।'

'बड़ी मां कौन ?'

'जिनके पुण्य-प्रताप का यह सुफल दीख रहा रहा है। जिनके हृदय की उदारता, पवित्रता, सौजन्य तथा साधुता का सौरभ इस भूमि में व्याप्त हो रहा है। मैं उन्हीं धर्मात्मा रानी माता के दर्शन करना चाहता हूं।'

'रानी मां पूजा में हैं। तीन दिन से वे निराहार हैं। जब तक सब ब्राह्मण भोजन नहीं कर लेंगे वे जल भी ग्रहण नहीं करेंगी। अतः अभी उनका दर्शन नहीं हो सकता।'

'तो जब हो सकता है, तभी सही।'

'क्या आप उनसे कुछ मांगना चाहते हैं ?'

'मैं उन्हें कुछ भेंट अर्पण किया चाहता हूं।'

'कैसी भेंट ?'

'यह उन्हींको बताई जा सकती है।'

'अच्छी बात है, मैं अवसर पाते ही उनसे कहूंगा। किन्तु अभ भोजन तो कीजिए।'

'उनके दर्शन के बाद भोजन भी हो जाएगा।' बालक जाने लगा तो ब्राह्मण

ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है भैया ?

'मैं रामकृष्ण हूं। और यहां दक्षिणेश्वर में राधामाधव के शृंगार करने के कार्य पर नियुक्त हूं।'

'तुम्हारे भीतर तो भैया कोई महान आत्मा बास कर रही है। क्या तुमने भोजन किया ?'

'नहीं,' कहकर बालक तेज़ी से भाग गया।

सूर्यास्त से कुछ पहले ही वह बालक रानी रासमणि को लेकर ब्राह्मण के पास आया। रानी ने दोनों हाथ जोड़कर ब्राह्मण को प्रणाम किया। पर इससे प्रथम ही ब्राह्मण ने धरती में लोटकर रानी को साष्टांग प्रणाम किया।

रानी ने दोनों कानों पर हाथ धरकर कहा :

'यह आपने क्या किया देवता ? मैं शूद्रा हूं, अस्पृश्या हूं। आपने मुझे प्रणाम किया, मुझपर पातक चढ़ाया।'

'आप दिव्यरूपा हैं, सर्व मनुष्यों में श्रेष्ठ और पूज्या हैं। आपके दर्शन से मनुष्य की मुक्ति हो सकती है। मैं प्रातःकाल ही से आपके दर्शन करने की अभिलाषा से यहां बैठा हूं।'

'आपने भोजन नहीं किया ?'

'नहीं।'

'तो भोजन कीजिए।'

'आप अपने हाथ से रांधकर भात दें तो भोजन कर सकता हूं।'

'किन्तु यह कैसे हो सकता है ? मैं जाति की केवट हूं।'

'तो इससे क्या ? मैं ब्राह्मण हूं। परन्तु जो आत्मा मेरे अन्तर में वास करती है वही आपके अन्तर में भी है। भेद इतना ही है कि आप धर्मात्मा और पवित्र हैं, और मैं अधम हूं।'

'शिव ! शिव !! यह आप कैसी बात कहते हैं ? आप ब्राह्मण हैं !'

'ब्राह्मण तो सदा सत्य बोलता है। मैंने भी सत्य कहा है। मैंने आपके सम्बन्ध में सब बातें सुनीं। ब्राह्मणों ने आपका कितना तिरस्कार किया, यह भी सुना। जाति-अभिमान में ये मूढ़ अच्छे-बुरे और धर्माधर्म का विचार भी खो बैठे हैं। फिरंगी लोग इनके सिर पर पैर रखकर जो शासन चला रहे हैं वहां इन ब्राह्मणों की चाल नहीं चलती। उन्हें माई-बाप बनाते इनको लज्जा नहीं आती। जिस

दिन नैष्ठिक ब्राह्मण नन्दकुमार को कलकत्ता में फांसी दी गई, तब ये ब्राह्मण और इनके शास्त्र कहां चले गए थे ? इन्होंने शाप देकर अंग्रेजों को क्यों नहीं भस्म कर दिया ? ये ढोंगी, पाखण्डी, मूर्ख, घमण्डी ब्राह्मण एक धर्मात्मा रानी का ही नहीं—देवता का भी तिरस्कार करने में नहीं शर्माये। आप जाति से शूद्र हैं, इसलिए आपके द्वारा प्रतिष्ठित देवता का पूजन-नमन भी ये नहीं करेंगे ? मैं चाहता हूं कि इन सब ब्राह्मणों को गोली से उड़ा दूं, और हिन्दू-धर्म को इनकी दासता से मुक्त कर दूं।'

रानी ने हाथ जोड़कर कहा—आप तेजस्वी ब्राह्मण हैं। जो चाहे कहें पर मैं स्त्री हूं, शूद्र हूं, असहाय हूं, मैं कुछ नहीं कह सकती। मैं तो यही समझती हूं कि मेरा पुण्य सफल हो गया। देवता की प्रतिष्ठा हो गई, और मेरा धन सत्कर्म में लग गया। अब मैं प्रसन्न हूं।

'आप शरीर से ही शूद्रा नहीं हैं, आपका मन भी इन ब्राह्मणों की दासता में फंसा है। आप आत्म-सम्मान खो चुकी हैं। नहीं तो इतना अपमान करनेवाले इन ब्राह्मणों का तो आपको मुंह भी न देखना चाहिए था।'

'ऐसा मत कहिए। ब्राह्मण पृथ्वी का स्वामी हैं। वह भूसुर हैं।'

'पर वह ब्राह्मण हो भी तो ? जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में करके वासना से मुक्ति पा ली हो, और जो सब बन्धनों से मुक्त वीतराग-शान्त महात्मा हो—वही तो ब्राह्मण है। ये दक्षिणा के लोभ में निमन्त्रण खानेवाले पेटू ब्राह्मण के रूप में बैल हैं।'

'आप समर्थ हैं जो चाहे कहिए, परन्तु कृपाकर भोजन कर लीजिए। आप भोजन कर लें तो मैं भी ठाकुर का चरणामृत लूं।'

'कह तो चुका, अपने हाथों से भात रांधकर देंगी तो ही भोजन करूंगा, नहीं तो नहीं।'

'मैं ब्राह्मण को अपने हाथ का भात कैसे खिला सकती हूं ?'

'विश्वास रखिए महारानी, आपका भात खाकर भी मैं ऐसा ही ब्राह्मण रहूंगा। मैं कच्चा ब्राह्मण नहीं हूं। मेरा ब्राह्मणत्व खूब पक्का है।'

'परन्तु ब्राह्मण सुनेंगे तो आपको जातिच्युत कर देंगे।'

'मैं तो प्रथम ही इन सब भोजन-भट्टों को जातिच्युत कर चुका हूं। वे अब मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'

'मैं ब्राह्मण के हाथ से पृथक् भोजन आपके लिए बनवा देती हूं।'

'ब्राह्मण के हाथ का भात तो मैं खाऊंगा नहीं। आप ही के हाथ का भात खाऊंगा। आप मातृरूपा हैं। जगद्धात्री का स्वरूप हैं। तन-मन से शुद्ध हैं। आपके हाथ का भात खाकर मैं उन सब ब्राह्मणों के कुकृत्य का परिशोध करूंगा, जिन्होंने शूद्र कहकर अपका अपमान किया है।'

'तो फिर मेरे महल में पधारिए।'

'न, न, यहीं भात रांधिए। यहीं सब ब्राह्मणों के सामने खाऊंगा।'

रानी ने फिर आग्रह नहीं किया। उसने बालक से कहा—रामकृष्ण भैया, तू इसी वटवृक्ष के नीचे सब सामग्री जुटा दे। मैं अभी गंगा-स्नान करके आती हूं।

बालक ने आनन्दातिरेक से ताली पीटकर कहा—मां, मैं भी तुम्हारा भात खाऊंगा।

रानी ने जवाब नहीं दिया। वह आंचल से आंखें पोंछती हुई घाट की ओर चली गई। बालक भी तेज़ी से भण्डार की ओर चला। ब्राह्मण पत्थर की मूर्ति की भांति बैठा रहा।

आग की भांति सर्वत्र दक्षिणेश्वर में यह खबर फैल गई कि एक ब्राह्मण शूद्रा रानी के हाथ का भात खाएगा। रानी उसके लिए भात रांध रही है। नैष्ठिक ब्राह्मण भीत-चकित होकर एक-दूसरे को देखने लगे। उनका अभिप्राय यह था कि घोर कलियुग आ गया है; अब धर्म नहीं बच सकता।

बहुत ब्राह्मण वटवृक्ष के नीचे जमा हो गए, जहां रानी भात रांध रही थी और वह ब्राह्मण पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चल बैठा था। एक ब्राह्मण ने कहा:

'तुम ब्राह्मण हो कि चमार?'

'मैं ब्राह्मण हूं।'

'कौन ब्राह्मण हो?'

'पाण्डे हूं। बीस विश्वे का।'

'नाम क्या है तुम्हारा?'

'गोपाल पाण्डे मेरा नाम है।'

'काम क्या करते हो?'

'पाखण्ड और अत्याचार का विरोध करता हूं।'

'रहते कहां हो ?'

'बारह बरस से देश-भर में घूम रहा हूं।'

'तो तुम शूद्रा के हाथ का भात क्यों खाते हो ?'

'मैं साक्षात् जगद्धात्री अन्नपूर्णा के हाथ का भात ग्रहण कर रहा हूं, इससे मेरा और सब ब्राह्मणों का भी कल्याण होगा।'

'तुम चमार हो !'

'चमार तो वे हैं जो चमड़े की परख कर जाति का पता लगाते हैं।'

'और तुम ?'

'मैं ब्रह्मज्ञानी हूं। मैं ब्रह्म की एकता को जानता हूं।'

विवाद होता रहा, और ब्राह्मण शान्त भाव से उन सभी का उत्तर देता रहा। उसने राम और शिव के उदाहरण दिए। धर्मशास्त्र और महाभारत के प्रमाण दिए, और जात-पांत की कट्टरता का पूरा विरोध किया।

अन्त में केले के पत्ते पर रानी ने भात परसा। ब्राह्मणों के देखते ही देखते वह बालक भी भात खाने आ बैठा। राधामाधव के शृंगारकर्त्ता को रानी के हाथ का भात खाते देखकर ब्राह्मण बौखला गए। वे बड़ी देर तक गर्जन-तर्जन करते रहे, और फिर चले गए।

ब्राह्मण ने भोजन करके कहा—बस मां, अब मैं जाऊंगा। आपसे एक अनुरोध करता हूं, आप मानेंगी ?

'आप जो कहेंगे वही मैं करूंगी।'

'तो सुनिए। बारकपुर की छावनी में जो बड़े साहब हैं कमांडिंग जनरल, उनकी स्त्री का नाम शुभदा देवी है। वह ब्राह्मण कन्या है। वह आप ही की भांति निष्ठावाली स्त्री है। भारत में शीघ्र ही एक महा उत्पात उठेगा। एक ज्वालामुखी का विस्फोट होगा, जिनमें सब अंग्रेज़ फिरंगी भस्म हो जाएंगे। मेरा आपसे अनुरोध है, कि आप उनसे जाकर मिलें। उन्हें अपनी सखी और मित्र बनाएं, और विपत्ति के समय उन्हें अपने यहां रक्षण दें। मैंने उसे सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दिया है। मेरे इस आशीर्वाद को आप सफल कीजिए। सम्भव है मैं समय पर उन तक न पहुंच सकूं इसीसे यह भार आपको सौंपता हूं।'

इतना कहकर वह ब्राह्मण तेज़ी से वहां से चल दिया। उसने मुंह फेरकर भी नहीं देखा। रानी एक मुहूर्त तक उसी ओर देखती रही जिस ओर वह अद्भुत

ब्राह्मण गया था।

जानबाज़ार की रानी रासमणि मुलाकात के लिए आई हैं, यह सूचना पाते ही शुभदा एकबारगी ही व्यस्त हो उठीं और बंगले के बाहर चली आईं। बाहर आकर देखा—बहुमूल्य कमखाब से ढकी एक पालकी सहन में लगी थी, और लकदक सुनहरी पोशाक पहने आठ कहार उसकी बगल में खड़े थे। उनके पीछे पन्द्रह-बीस सवार बन्दूकें लिए लाल और हरी बानात के अंगे पहने, साफे बांधकर खड़े थे। सहन से बाहर मैदान में एक हाथी सुनहरी झूल से सुसज्जित सूंड हिला रहा था। फाटक से सटकर रानी के दीवान महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय मूल्यवान रेशमी चादर कन्धे पर डाले खड़े थे। उनके पीछे आठ बहेंगी रखी थीं, उनपर बहुत-से थाल, झाबे और सन्दूक थे। थालों और झाबों में मिठाइयां, पकवान और बक्सों में कीमती वस्त्र भरे थे।

शुभदा देवी को देखते ही रानी रासमणि पालकी से निकल आईं, उन्होंने शुभदा की चरणरज ली। शुभदा देवी ने उन्हें रोककर कहा—हैं, हैं, यह आप क्या कर रही हैं?

रानी ने हंसते हुए कहा—आप उम्र में मेरी बेटी के बराबर हैं, पर आप ब्राह्मण की बेटी हैं, मैं शूद्र हूं। आपकी चरण-रज लेना मेरा धर्म है। मैं जानबाज़ार की रानी रासमणि हूं। आपके पिता का गांव मेरी ही ज़मींदारी में है। आपके पिता मेरे पति के विद्यागुरु थे। आपके सम्बन्ध में बहुत दिन हुए मैंने सुना था। पर आप यहां हैं, यह नहीं जानती थी। अब जाना तो दर्शन करने चली आई।

'मेरा बड़ा भाग्य जो आपने दर्शन दिए। बड़ी कृपा की आपने। आपका शुभ नाम और धवल यश मैं सुन चुकी हूं—आप तो पुण्य-दर्शना हैं। दक्षिणेश्वर भी मैं देख आई हूं—बड़ा सुन्दर देवधाम बनाया है आपने। किन्तु आप मुझे बेटी कहती हैं, फिर भी 'आप' कहकर क्यों बोलती हैं तथा दर्शन करने आई हैं, यह क्यों? दर्शन देने आई हैं, यह क्यों नहीं कहतीं?'

रानी ने हंसकर शुभदा देवी की ठोड़ी उंगली से छूकर उंगलियों की पोर चूमकर कहा—अच्छा, बेटी, तुम कहती ही हो तो 'आप' नहीं कहूंगी। पर तुम ब्राह्मण हो, ब्राह्मण की बेटी हो, हमारी पूज्य हो।

'ब्राह्मण हूं, ब्राह्मण की बेटी हूं, पर यह सब ऊंच-नीच के और जात-पांत के

ढकोसले मैं नहीं मानती। आप तो जानती हैं कि मैं एक क्रिस्तान अंग्रेज़ अफसर की पत्नी हूं। आइए, भीतर आइए।'

रानी ने भीतर आकर बैठते हुए कहा :

'अब तो आ ही गई हूं, बेटी। परन्तु अनुमति दो—बिटिया के लिए जो ही कुछ थोड़ा फल-मूल ले आई हूं, उन्हें यहां मंगा लूं।' उन्होंने महेशचन्द्र को संकेत किया। महेशचन्द्र बहेंगियों को लिए हुए दालान तक चले आए। इतनी सामग्री देख शुभदा देवी हक्का-बक्का रह गईं। उनके दिल में सन्देह हुआ कि जैसी भारतीयों की आदत है, रानी इतनी भारी डाली लेकर किसी मतलब से तो यहां नहीं आई हैं ? उन्होंने कहा—यह सब आप क्यों ले आई हैं। मेरे पति तो यह स्वीकार नहीं करेंगे ?

'दूसरी बात क्यों सोचती हो बेटी, मैं तुम्हारे पति से बात कर लूंगी। वे भला बेटी और मां के बीच क्या बोल सकते हैं ? कहां हैं तुम्हारे पति बेटी ?'

'छावनी में बहुत गड़बड़ी हो गई है। एक सिपाही ने मस्तिष्क का सन्तुलन खो दिया है, उसने अपने अफसरों को मार डाला है और स्वयं भी गोली मारकर आत्मघात करने की केष्टा की—पर वह मरा नहीं। आज उसका कोर्ट मार्शल है। मेरे पति वहीं गए हैं।'

'वह सिपाही कौन है ?'

'एक ब्राह्मण है, बनारस की ओर का पाण्डे है।'

'तो बेटी, ब्राह्मण की प्राण-रक्षा अवश्य होनी चाहिए। तुम्हारे पति भी क्या उसके विरुद्ध हैं ?'

'नहीं, वे भरसक उसके जीवन की रक्षा का उपाय करेंगे। परन्तु सेना की दशा बहुत खराब है। ये अपढ़ मूढ़ सिपाही झूठी-सच्ची बातों पर विश्वास करके व्यर्थ ही उत्तेजित हो रहे हैं। सब लोग कहते हैं कि देश में एक ऐसा आन्दोलन चल रहा है कि सब अंग्रेज़ों को मार डाला जाएगा। कारतूस की बात तो आपने सुनी ही होगी ?'

'कारतूस की बात कैसी ?'

'कि नये कारतूसों में सुअर और गाय की चरबी लगी है। इस बात की झूठ-सच की जांच किए बिना ही सिपाही उत्तेजित हो रहे हैं।'

'कुछ और भी तो कारण हो सकता है बेटी। खैर, मैं तो तुमसे इसी मामले

में बातें करने आई हूं।'

'क्या आप मेरे पति से कोई अनुरोध करेंगी?'

'नहीं बेटी, मैं तो तुम्हींसे बात करूंगी।'

'तो कहिए, क्या आज्ञा है?'

रानी ने ब्राह्मण पण्डित का हवाला देते हुए शुभदा की सुहाग-रक्षा के अपने उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में उसे बता दिया।

'बड़ी विचित्र बात है! क्या आप उसकी बात पर विश्वास करती हैं?' शुभदा ने पूछा।

'विश्वास करके ही यहां आई हूं बेटी। मेरा तो वैसे भी तन-मन ब्राह्मण ही की सेवा-चाकरी के लिए है। तो मैं तुमसे और तुम्हारे पति से यह अनुरोध करने आई हूं कि यदि भगवान न करे कभी ऐसा दुर्दिन आए तो तुम जानबाज़ार के महल को अपना ही समझना। मेरे महल में दो सौ सिपाही हैं। और भी आदमी हैं। वहां कोई तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकेगा। तुम अपने पति और इष्ट-मित्रों सहित वहीं आ जाना।'

'आपका आश्वासन और कृपा असाधारण है। मैं अपनी ओर से तथा अपने पति की ओर से आपको धन्यवाद देती हूं।'

'बेटी होकर मां को धन्यवाद देती हो? कलियुगी बेटी हो तुम बिटिया," रानी यह कहकर हंस दी। फिर उसने कहा—इस समय तुम्हारे पति से भेंट न हो सकी, पर मेरा सन्देश तुम उनसे कह देना। अथवा यह अधिक ठीक होगा कि एक बार तुम उन्हें लेकर जानबाज़ार आ ही जाओ, तो आवश्यकता होने पर क्या-क्या प्रबन्ध-व्यवस्था करनी होगी, इसका ठीक-ठिकाना कर लिया जाए।'

'मैं ज़रूर उनसे कहूंगी।'

'मुझे पत्र लिखोगी या मैं चट्टोपाध्याय महाशय को तुम्हारे पास भेजूं?'

'मैं ही आदमी भेजूंगी।'

'तो बेटी, भूल न करना। कहीं ऐसा न हो ब्राह्मण की आज्ञापालन में मुझसे चूक हो जाए और मेरा धर्म-कर्म सब नष्ट हो जाए।'

'नहीं, महारानी, ऐसा नहीं होगा। किन्तु आप क्या इस भ्रष्ट ब्राह्मणी के यहां कुछ भी खाएं-पिएंगी नहीं?'

'नहीं बेटी। नाराज़ मत होना। मैं तीसरे प्रहर गंगा-जल से स्नान करके

केवल एक जून हविष्यान्न भोजन करती हूं तथा केवल गंगाजल को छोड़ और कुछ ग्रहण नहीं करती, शूद्रा हूं बेटी, गत ग्यारह वरस से मेरा यही नियम चल रहा है। स्वार्थवश ही यह कर रही हूं। इससे कदाचित् मेरा शूद्र योनि से उद्धार हो जाए।' यह कहकर रानी आसन छोड़ उठ खड़ी हुई।

शुभदा ने कहा—मां, आप दिव्यरूपिणी हैं। कौन आपको शूद्र कहता है? जहां आप जैसी साध्वी की चरणरज पड़ेगी वह भूमि तो एक योजन तक पवित्र हो जाएगी।—इतना कहकर हठात् शुभदादेवी ने गले में आंचल डालकर भू-पतित हो, रानी के चरणों में मस्तक टेक दिया।

'यह क्या किया, यह क्या किया बेटी—गोविन्द, गोविन्द, तुमने जो मुझे पातक लगा दिया। ब्राह्मण की कन्या होकर मेरे पैरों में सिर दे दिया! छी, छी!!'

'मां, अपने सारे जीवन में आज मुझसे एक पुण्य कार्य हुआ। मेरा जीवन धन्य हुआ।'

शुभदा की आंखों से आंसू बह चले। रानी ने फिर उसकी ठोड़ी छूकर अपनी उंगलियां चूमी, और आकर पालकी में बैठ गई।

आंके-बांके राजपूत

दोस्ती, दुश्मनी और बांकपन की अमर कहानी।

भारतीय इतिहास के राजपूत वीरों के बीते हुए आंके-बांके जीवन कुछ ऐसे अटपटे हैं कि आज की सभ्य समझ में नहीं आ सकते। उनके जीवन का दर्शन ही दूसरा था, उनके आदर्श ही दूसरे होते थे। मरने-जीने के भय-निर्भयता के नमूने आज भी सामने आते हैं, पर, आदर्शों और भावनाओं में बहुत अन्तर है। प्राचीन राजपूती जीवन में एक शौर्यपूर्ण शालीनता, एक दबंग शिष्टाचार और एक प्राणवान आदर्श था। तत्कालीन मुगल शासकों ने अपने शासन-काल में राजपूती जीवन को हत-ओज कर दिया था, अंग्रेज़ों ने उसे नपुंसक किया और अब वर्तमान युग-परिवर्तन ने तो उसकी अंत्येष्टि ही कर डाली। अब तो रह गई उनकी वे उन दिनों की अलबेली कहानियां, जिन्हें भाट-चारण गांव-गांव और घर-घर जाकर सुनाया करते थे। गांव के बड़े-बूढ़े सर्दियों की रात में अलाव सुलगाकर गांव के सब तरुणों को आग के आसपास बैठाकर पकते हुए गुड़ की सोंधी सुगन्ध से भरे हुए वातावरण में भीगती रातों में वे कहानियां सुनाते थे, जिनसे पुराने राजपूती जीवन के किसी पहलू का परदा उठकर राजपूती चरित्र के दर्शन हो जाते थे।

सर्दियों की भीगती रात, पकते हुए गुड़ की सोंधी सुगन्ध से भरा वातावरण, गांव का किनारा, अलाव के चारों ओर बैठे तरुण ताप रहे थे। निश्चिन्त होकर बाजरे की रोटियां भर-पेट खाकर आकाश के टिमटिमाते तारे वे देख रहे थे। बूढ़े चारण का आज उनके गांव में आगमन हुआ था। आज उनकी खाट भी इसी अलाव के पास बिछी थी। अलाव से उठती हुई लाल-पीली आग की लपटों से वृद्ध चारण की लम्बी सफेद डाढ़ी कुछ अद्भुत-सी चमक रही थी। तरुणों का आग्रह था—बाबाजी, कोई कहानी सुनाइए।—और चारण प्रसन्नमन यों कहानी सुनाने लगे :

जैसलमेर के सीढ़ों में कोटेचे राजपूतों का घर बहुत प्रसिद्ध था। उसकी बड़ी बेटी को ब्याहने मोहिल पड़िहार आए थे। ब्याह राजी-खुशी, धूम-धाम से हो

गया। बारात ब्याह करके लौटी। राह में पड़ाव पड़ा। गोठ हुई। गोठ में सोलह बकरे काटे गए। उनकी मूंड़ियां चरवे में भरकर इस अभिप्राय से रख दी गईं कि दूसरे दिन नाश्ते के काम आएंगी।

वहां से कूच हुआ। रातोंरात बारात चली। भोर होते ही एक तालाब पर मुकाम हुआ। साथ के बाराती राजपूत नित्य-कर्म, स्नान-सेवा में लगे। दुलहिन का सुखपाल भी एक वृक्ष की छांह में उतारा गया। दासी झारी भर लाई। दुलहिन ने दातन किया, मुखमार्जन किया, स्नान किया और सिरावण (नाश्ता) मांगा।

दासी ने कहा—बाईजी, यहां और तो कुछ नहीं है, चरवे में बकरों की मूंड़ियां हैं।

'वही ले आ!'

दासी चरवा उठा लाई। दासी परोसती गई और स्वस्थ दुलहिन मूंड़ियां चट करती गई।

जब साथ के ठाकुरों ने जलपान की तैयारी की और नाश्ता मांगा, तब दासी से कहा गया—वह चरू उठा ला।

दासी ने हाथ बांधकर कहा—चरू क्या करोगे अन्नदाता, उसमें की चीज़ तो सब चट हो चुकी।

ठाकुरों ने सुना, तो सन्नाटे में आ गए। सब एक-दूसरे की ओर देखने लगे। पर, सबने चुप साध ली और वहां से डेरा उठाकर आगे चले। पड़िहार आए।...

इतनी कहानी सुनकर एक-दो तरुण हंसने लगे। किसीने कहा—बाबाजी, बहू का मुंह कितना बड़ा था?

चारण ने कहा—जब तुम्हारी बहू आए, तब उसका मुंह देख लेना कितना बड़ा है। अभी कहानी सुनो।—बाबाजी ने फिर कहानी आगे बढ़ाई :

घर आकर ठाकुरों की पंचायत जुड़ी। बहुत बहस-हुज्जत के बाद यह बात करार पाई कि इस बहू का भार हमसे न सहा जाएगा। बस, दुलहिन के पिता को पत्र लिख दिया गया कि तुम्हारी बेटी का निभाव हमारे यहां मुश्किल है, अपनी बेटी को ले जाओ। ठाकुर की बेटी ने भी बाप को सब हकीकत लिख दी। तब कोटेचे ठाकुर ने अपनी बेटी वापस बुला ली।...

इसपर एक तरुण ने कहा—बाबाजी, क्या पड़िहारों के यहां बकरों की बहुत कमी थी?

पर, चारण ने डाढ़ी पर हाथ फेरकर कहा—कहानी सुनो ! यह बात महोबे के राठौर राव मालाजी ने सुनी, तो उन्होंने कहा—उस राजपूत ने खाने के बदले बहू त्याग दी, बड़ा खराब काम किया। ऐसी राजपूतानी के बच्चे तो बड़े वीर, बवंडर योद्धा हो सकते हैं। शेरों के भी कल्ले चीर डालेंगे। रावल मालाजी के यहां उस समय बहेलवे का राणा ईंदा उगमसी चाकरी करता था। उसने रावल के मुंह से यह बात सुनकर आदमी भेजकर कोटेचे को कहला भेजा कि तुम अपनी बेटी मुझे दे दो। कोटेच ने स्वीकार किया। उसने ईंदा उगमसी को बेटी दे दी। नई रानी के साथ ईंदा मज़े में रहने लगा। उससे कोटेचे रानी के सात बेटे हुए।···

एक तरुण ने फिर हंसकर कहा—बापजी, उन सातों बेटों के नाम क्या थे ?

'अरे बेटों के बाप, कहानी सुन ! जिनकी बात आगे आएगी, उनका नाम भी सुन लेना।' उन्होंने कहानी आगे बढ़ाई :

उन सात बेटों में एक था ऊदा। जब वह सयाना हुआ तब रावल मालाजी की चाकरी में महोबे में रहने लगा। उन दिनों एक बाघ गोपाल की पहाड़ी पर बड़ा उत्पात मचाता था। राजपूत बारी-बारी से उस पहाड़ी की चौकी पर भेजे जाते थे। एक दिन ऊदा की भी बारी आई। उसने जाकर पहाड़ी को घेरकर बाघ को पकड़ लिया और बांधकर ले आया तथा रावलजी को भेंट कर दिया। रावलजी ने प्रसन्न होकर बाघ उसे ही दे दिया। उसने बाघ के गले में एक घंटी बांधकर छोड़ दिया और ऊदा ने सबसे कह दिया कि उसे कोई न मारे। जो कोई मारेगा, उससे मेरी शत्रुता होगी। बाघ स्वतंत्रता से फिरने और नुकसान करने लगा। एक बार घूमता-घूमता वह भादराजण जा निकला। वहा सिंहल राजपूतों ने उसे मार डाला। इससे ईंदों और सिघलों में बैर बंध गया। दोनों परिवारों में युद्ध हुआ। पचीस सिंघल मारे गए। भादराजण और चौरासी का मार्ग चलना बंद हो गया। ऊदा का विवाह ईहड़ सोलंकी की बेटी से हुआ था। वह सिंघलों की चाकरी करता था। ऊदा की पत्नी भी ब्याह के बाद सात बरस तक पति के घर न आई, क्योंकि, मार्ग बन्द था। यदि किसी पक्ष का कोई व्यक्ति उस मार्ग पर चलता पाया जाता, तो दूसरे पक्षवाले उसे मार डालते।

एक दिन सिखरा के बालसीसर पर गोठ हुई। सब ईंदे वहां जमा हुए, बकरे काटे गए, खूब नाशा-पत्ता जमा। वहां किसीने हंसी में पूछा—ऊदाजी, कभी भादराजण भी जाओगे ?

ऊदा बोला—आज ही रात को जाऊंगा।

घर आकर उसने अपनी काठण घोड़ी को उड़दाना (गुड़-आटा मिलाकर) दिया। तब उसके भाई सिखरा ने पूछा—आज घोड़ी को उड़दाना क्यों देता है?

उसने कहा—भादराजण जाऊंगा।

सिखरा उसका बड़ा भाई था। उसने कहा—जहां ऐसा वैर है कि पग-पग पर आदमी मारे जाते हैं, तू वहां क्यों जाता है?—ऊदा ने उसे कसम खिलाकर कहा कि मुझे मत रोके।

सांझ होते ही ऊदा चल खड़ा हुआ और आधी रात को ससुराल जा पहुंचा। सुसराल का द्वार खुलवाकर भीतर गया। सरगरे (डोम) ने जाकर ईदणदे (ऊदा की स्त्री) को जगाया। ढोलिया बिछा दिया। ऊदा थका था, उसे नींद आ गई। वह अपनी घोड़ी का कायजा खोलकर उसे बांधना भूल गया था। वह कसी-कसाई बाहर खड़ी थी। इतने में ऊदा का साला जग गया। उसने घोड़ी देखी। वह पहचान गया—ऊदा की है। वह उसे लेकर पायगाह में बांधने चला।

इसी समय ऊदा की आंख खुली। उसने समझा कोई चोर घोड़ी को लिए जा रहा है। भादराजण में चोर बहुत रहते थे। यह समझकर वह लपका और तलवार का एक हाथ खींचकर मारा। साले के दो टुकड़े हो गए। आहट पाकर ऊदा की स्त्री भी आ गई। उसने देखा—भाई मारा गया। उसने कहा—यह तुमने क्या किया?

इसी समय ऊदा की सास भी आ गई। उसने सारी हकीकत सुनकर कहा—जो होना था, वह हुआ। अब यह दूसरा बैर बढ़ा। अच्छा यही है कि अब तुम चुपचाप यहां से चले जाओ। ऊदा ने सब बातों पर विचार किया, सास को प्रणाम किया। एक नज़र पत्नी पर डाली और घोड़ी पर सवार हो गया। अंधेरे में गायब हो गया।...

इस बार सब श्रोतागण सन्नाटे में बैठे रहे। सबके चेहरे पर चिंता और उत्सुकता व्याप्त हो गई। एक ने सहमते-सहमते कहा—उन्होंने उसका पीछा किया? उसे मार डाला?

परन्तु चारण भाव-धारा में डूबे हुए थे। उन्होंने प्रश्नकर्ता की बात सुनी ही नहीं। उन्होंने कहानी आगे बढ़ाई:

भादराजण के पास ही एक गांव में मेला-सेपटा राजपूत रहता था। वह

नामी-गिरामी चोर और डाकू था। उसकी सेवा में एक कुटनी नाइन रहती थी। वह भले घर की बहू-बेटियों के भेद उसे देती, उन्हें बहकाती और पथभ्रष्ट करती थी। एक दिन वह नाइन ईहड़ सोलंकी के घर आई। उसने बहुत प्रेम और अधीनता प्रकट की तथा उबटना लगाकर ऊदा की स्त्री को आग्रहपूर्वक नहलाया। पीछे मेला से जाकर उसने कहा—ईहड़ की बेटी पद्मिनी है। आपके योग्य है। उसे काबू में करो।

'मेला ने जाकर सोलंकियों से कहा कि यदि तुम अपनी बहिन मुझे दे दो, तो मैं ऊदा से तुम्हारा बैर लूं।'

ऊदा के साले अपने भाई की मृत्यु का बैर लेना चाह ही रहे थे। वे राज़ी हो गए। पर जब ऊदा की स्त्री ने यह बात सुनी, तब उसने मेला को कहला भेजा—मेरा पति और जेठ ऐसे नहीं हैं, जिनकी स्त्रियों पर तू नज़र जमाए। यदि कुछ पराक्रम तुझमें हो, तभी इधर पांव रखना।—इसके बाद एक ब्राह्मण के हाथों अपने जेठ के पास भी सब हकीकत भेज दी। यह भी कहला दिया—मेला उधर आएगा—उसकी अच्छी खातिर करना।......

'तो क्या मेला वहां गया?' एक साथ दो-तीन तरुणों ने पूछा। चारण ने कहा :

मेला अपने कच्छी घोड़े पर सवार होकर चला और बालसीसर तालाब पर जा उतरा। वहां बकरियों के चरानेवाले गड़रिए अपनी छागलें (छोटी मशकें) छोड़कर तीर-कमान पृथ्वी पर रखे गप्पें लड़ा रहे थे। मेला ने उनसे पूछा :

'रेबड़ (बकरियों का झुंड) कहां का है?'

'ये बकरे उगमसी ठाकुर के हैं।'

'क्या, इनमें से बकरे बिकते हैं?'

'नहीं, कोई पाहुना आए, तो उसके लिए मारे जाते हैं। बिकते नहीं हैं।'

'तो एक बकरा मुझे दे दो।'

'तुम मेहमान हो तो ले लो।'

'पर, मैं बिना मोल नहीं लूंगा।' इतना कहकर उसने ईकदिरा (दुअन्नियां) निकालकर उन्हें दे दिए। एक बड़ा बकरा छांटकर लिया। उसके काट-कूटकर उसने टुकड़े किए और मांस में बाजरा मिलाकर बजरिया बनाया। उसने सुना था—सिखरा के यहां दो ज़बर्दस्त कुत्ते हैं। कुछ मांस स्वयं खाया, कुछ गड़रियों

को भी दिया। फिर उसने गड़रियों से कहा—मैं बीकमपुर जाता हूं।

रात को वह सिखरा के गांव पहुंचा। कुत्ते दौड़कर पीछे पड़े, तो बकरे की हड्डियां जो वह बांध लाया था, उनके आगे फेंक दीं। कुत्ते उन्हें चबाने लगे। और वह घर में घुसकर जहां ऊदा सोता था, वहां जा पहुंचा। उसने शस्त्रों की वादियां उसके बिछौने के नीचे काटकर रख दीं, और सिखरा की स्त्री की चोटी काटकर वापस लौट गया।

'जब स्त्री जगी, तो उसने देखा—सिर पर चोटी ही गायब! उसने शोर मचाया कि मेला आया और मेरी चोटी काटकर ले गया। सिखरा हड़बड़ाकर उठा, पर, उसने सब शस्त्रों के बन्धन भी कटे पाए। वह बर्छी हाथ में लेकर अक्-लख घोड़े पर सवार होकर दौड़ा।

लौटते हुए मेला ने कुत्तों को काट डाला था। इस भागादौड़ी में उसका अमल का पोता (अफीम की थैली) भी वहीं गिर गया था। सिखरा ने उसे उठा लिया।

ऊदा की घोड़ी की बछेड़ी भी सिखरा के साथ लग ली थी। मेला रात ही रात में चलकर प्रभात होते-होते कोढणों के तालाब पर पहुंचा। अमल-पानी का समय था। पोता संभाला तो नहीं पाया। तब घोड़े से उतरकर घासिया डालकर सो रहा। सिखरा भी आ पहुंचा। उसने घोड़े पर निगाह पड़ते ही पहचान लिया कि सिखरा है। पर, यहां निश्चित सोता क्यों है? पास जाकर कपड़ा खींचकर जगाया—क्या नाम है? कौन हो?

'मेरा नाम मेला-सपेटा है।'

'तो मेलाजी, चौरासी को छेड़ा है। जगह-जगह टोलियां खड़ी हैं। ऊदा जैसे राजपूत को खिझाकर निश्शंक कैसे सोते हो?'

'आपका नाम क्या है?'

'मेरा नाम सिखरा है।'

मेला उठकर बैठ गया। उसने कहा—इस समय मेरा तो अमल उतर रहा है।

'तो उठो अमल लो।'

'मेरा तो अमल का पोता कहीं रास्ते में गिर गया। मैं अपने ही पोते की अमल खाता हूं।'

सिखरा ने वह पोता निकालकर मेला के हाथ में दे दिया। छागुल में जल भर लाया। अमल-पानी कराया और फिर कहा—मेलाजी, अब थोड़ा आराम कर

लो। मैं तुम्हारे पांव दबा दूंगा।

मेला सो गया। सिखरा पांव दबाता रहा। थोड़ी देर में मेला जागा। आंखों पर पानी के छींटे दिए। शस्त्र बांधे।

सिखरा ने पूछा—युद्ध किस तरह करोगे ?

'सवार होकर।'

वह अपने घोड़े पर सवार हुआ। चाबुक फटकारा, तो घोड़ा हवा हो गया। सिखरा देखता ही रह गया।

उसने घोड़ा साध दिया। पर मेले को न पहुंच सका। सिखरे के घोड़े के साथ जो बछेरी आई थी वह भागती-भागती मेला के घोड़े से सौ कदम आगे जाकर पीछे फिरी। तब सिखरा बछेरी को पकड़कर उसपर चढ़ बैठा और मेला को जा लिया।

सामने आकर मेला को ललकारा और बर्छा फेंका। बर्छा उसकी छाती के पार हो गया। मेला वहीं ढेर हो गया।···

चारण यह कहकर अपनी दाढ़ी सहलाने लगे। सुननेवाले सांस रोककर सुन रहे थे। चारण ने एक बार आकाश की ओर दृष्टि की। तरुणों ने कहा—फिर, फिर ?

इतने ही में ऊदा भी वहां आ पहुंचा। मेला को मरा पड़ा देखकर उसने भाई से कहा—भाई, इसका अग्निसंस्कार करना चाहिए। दोनों भाइयों ने दाह किया। दाहकर्म से निवृत्त होकर ऊदा ने भाई को तो घर वापस भेजा और स्वयं मेला की पगड़ी लेकर उसकी कोटड़ी गया और पुकारकर कहा, ठाकरां, मेलोजी काम आए हैं। उनका पाग लो। मेरे बड़े भाई सिखरा ने उन्हें मारा है। दाग दे दिया गया है।

मेला का पुत्र बाहर आया। उसने ऊदा से जुहार किया और कहा—ठाकरां, हमारे-तुम्हारे कोई बैर नहीं है। पिता ने जैसा किया, उसका फल पाया। अब भीतर पधारिए।

ऊदा क्षण-भर घोड़े पर अड़ा खड़ा रहा। फिर उसने कहा—सिखरा की [illegible] हमने मेलोजी के बेटे को दी। देव उठने पर ब्राह्मण के हाथ तिलक भेजेंगे [illegible]ाह करने को शीघ्र पधारना।

उसने सब ठाकुरों को जुहार किया और घोड़े को एड़ लगाई।

यथा समय विवाह हो गया और चिरकाल बाद यह बैर मिटा।

* * *